प्रकाशक—

मंत्री, श्री जवाहर साहित्य समिति
(अन्तर्गत—श्री जवाहर विद्यापीठ)
भीनासर (बीकानेर–राजस्थान)

✕

प्रथम संस्करण—
द्वितीय सस्करण— (दिसम्वर, सन् १६६६)
तृतीय सस्करण—११०० (सितम्बर, सन् १६८०)
चतुर्थ सस्करण—११०० (दिसम्वर, सन् १६६०)

✕

मूल्य—१८)५०

✕

आवरण—अमित भारती, बीकानेर

✕

मुद्रक—
जैन आर्ट प्रेस
(श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)
समता भवन, बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

कथा-कहानियों का जनता में सदैव महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। विश्व के किसी भी समय के साहित्य को देखें तो उसका बहुत बड़ा अंश कथा-कहानियो एवं उदाहरणो से समलंकृत मिलेगा, जिसने ऐतिहासिक तथ्यो को प्रस्तुत करने के साथ-साथ मानव को विकास हेतु प्रेरणा दी है। शिक्षा के क्षेत्र मे भी उनकी उपयोगिता सर्वोपरि है। छोटे-छोटे बच्चे कहानी पढ या सुनकर उससे मिलने वाली शिक्षा को शीघ्रातिशीघ्र हृदयंगम कर लेते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा द्वारा अपने प्रवचनों मे प्रसंगोपात्त उल्लेखित कथाओ रूपको या उदाहरणो का संकलन किया गया है। पूज्य आचार्य श्री अपने प्रवचनो के बीच विविध उदाहरणो और उक्तियो का प्रयोग करके प्रतिपाद्य विषय को सजीव और प्रभावपूर्ण बनाने की कला मे पारंगत थे और उनका उप-संहार ऐसी अनूठी शैली मे करते थे कि श्रोताओं के हृदय पर उसका सीधा प्रभाव पड़े बिना नही रहता था।

प्रस्तुत पुस्तक 'उदाहरणमाला' (द्वितीय भाग) में संकलित उदाहरणो का जवाहर-साहित्य मे अपना अनूठा स्थान है। पूज्य आचार्य श्री जी के विद्वत्तापूर्ण विचारो को पूर्ण-रूपेण आत्मसात करने में असमर्थ पाठको के लिये यह संग्रह बहुत ही उपयोगी है। बालको को भी नीति की शिक्षा देने मे यह अत्यन्त सक्षम होगा।

उदाहरणमाला के द्वितीय भाग के प्रथम और द्वितीय संस्करण श्री जवाहर साहित्य समिति की ओर से श्रीमान् सेठ इन्द्रचन्द जी सा गेलड़ा द्वारा अपनी पुण्यश्लोका माते-

श्वरी श्रीमती गणेशबाई की पुण्य-स्मृति में साहित्य प्रकाशन हेतु दिये गये ६०१०)०० से प्रकाशित हुए थे। इसके तृतीय संस्करण का प्रकाशन धर्मनिष्ठ सुश्राविका बहिन श्रीमती राजकुंवर बाई मालू, बीकानेर द्वारा श्री जवाहर साहित्य समिति भीनासर को सत्साहित्य प्रकाशन के लिये प्रदत्त धनराशि से हुआ है। सत्साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिये बहिन श्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

यह उदाहरणमाला (द्वितीय भाग) कुछ समय से अप्राप्य थी इसलिए पाठको की निरन्तर मांग होने से इसके चतुर्थ संस्करण का प्रकाशन धर्मनिष्ठ श्रावक श्रीमान् बालचन्दजी, ज्ञानमलजी, झूमरमलजी, टीकमचन्दजी व गोरधनदासजी सेठिया भीनासर द्वारा अपने पुण्यश्लोका पिताश्री स्वर्गीय श्रीमान् हजारीमलजी सेठिया की पुण्य स्मृति मे हजारीमल सेठिया चैरिटेबल ट्रस्ट (करीमगंज) भीनासर द्वारा श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर को उदाहरणमाला पौराणिक खण्ड व उदाहरणमाला द्वितीय भाग के प्रकाशन हेतु दिए गए २१०००) की धनराशि से प्रकाशित किया जा रहा है। सत्साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए आप पांचों भाइयों की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी। श्री जवाहर साहित्य समिति इसके लिए आपका हृदय से आभार प्रकट करती है तथा आशा करती है कि भविष्य में भी आपका सहयोग संस्था को इसी प्रकार मिलता रहेगा।

आजकल कागज एवं मुद्रण आदि का व्यय काफी बढ़ जाने से इस संस्करण की कीमत बढ़ाने के लिये हमें बाध्य होना पड़ा है।

प्रकाशन कार्य में श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ और उसके द्वारा सचालित जैन आर्ट प्रेस का समिति को पूर्ण सहयोग रहा है, एतदर्थ समिति उनके प्रति आभार प्रकट करती है।

-सुमतिलाल बांठिया

मन्त्री—श्री जवाहर साहित्य समिति

(अन्तर्गत, श्री जवाहर विद्यापीठ)

भीनासर (बीकानेर) राजस्थान

अनुक्रमणिका

१ : क्षमामूर्ति

राजर्षि नमि की माता मयणरेहा (मदनरेखा) का वृत्तान्त आप जो जानेगे तो आपको विदित होगा कि आप अपने कुटुम्बियो के प्रति सज्जनता का व्यवहार करते है या दुर्जनता का ?

राजर्षि नमि की माता अत्यन्त सुन्दरी थी । जैसा उसका नाम था वैसा ही उसका सौन्दर्य था । मयणरेहा या मदनरेखा उसका नाम था । वह युगबाहु की पत्नी थी । युगबाहु के एक बडे भाई थे । जिनका नाम राजा मणिरथ था । एक दिन मणिरथ ने मदनरेखा को देख लिया और देखते ही वह उस पर मुग्ध हो गया उसके हृदय में पाप–वासना जाग उठी । उसने मदनरेखा को अपनी स्त्री बनाने का निश्चय कर लिया ।

यद्यपि मणिरथ ने अपने कुत्सित मन की सिद्धि के लिये आकाश–पाताल एक कर दिया, पर मदनरेखा के हृदय मे लेश मात्र भी पाप का सचार नही हुआ । वह बचपन से ही धर्म-ध्यान और प्रभु स्मरण मे परायण थी । मदन-रेखा की इस दृढता से मणिरथ कुछ-कुछ निराश हुआ ।

अन्त मे उसने विचार किया कि मदनरेखा जब तक युगवाहु के पास रहेगी, तव तक हाथ न आयेगी । किसी भी प्रकार युगवाहु को उससे अलग करना चाहिये ।

इस प्रकार विचार करके मणिरथ ने दौरे पर जाने का ढोंग रचा । युगवाहु ने भाई से दौरे पर जाने का कारण पूछा तो मणिरथ ने कहा—राज्य की सीमा पर कुछ उपद्रवियो ने उत्पात मचा रखा है । उनका दमन करने के लिये मेरा जाना आवश्यक है । युगवाहु वोला—उपद्रवियों का दमन करने के लिये मेरे रहते आपका जाना ठीक नही है। जव तक मैं जीवित हू, आपको नही जाने दू गा । अतएव कृपा कर मुझे जाने की आज्ञा दीजिए । यदि मैं उसका दमन न कर सका तो फिर भविष्य मे मुझे कौन गिनेगा ?

विल्ली के भाग्य से छीका टूटा । मणिरथ जो चाहता था वही हुआ । फिर भी उसने ऊपरी मन से युगवाहु को घर रहने के लिये कहा और अन्त मे उसे विदा कर दिया

युगवाहु के चले जाने पर मणिरथ ने उत्तमोत्तम वस्त्र-आभूषण, सुगन्ध की वस्तुएं और खाने-पीने के अनेक स्वादिष्ट पदार्थ एक दूती के साथ मदनरेखा के पास भेजे । दूती ने मणिरथ की भेजी हुई सव विलास- सामग्री मदन-रेखा को भेंट की । उस समय मदनरेखा ने कहा—जिस नारी का पति परदेश गया हो, उसे विलास सामग्री की क्या आवश्यकता है ? उसे तो उदास भाव से धर्म की आराधना करते हुए समय-यापन करना चाहिये । मुझे इन वस्तुओ की आवश्यकता नही है । जाओ, इन्हें वापस ले जाओ ।

मित्रो ! अधिकांश स्त्रियो को पतित बनाने वाली ये ही वस्तुए है । स्त्रियां यदि पौद्गलिक शृंगार की लालसा पर विजय प्राप्त कर सके—गहना, कपडा और खान-पान की वस्तुओ पर न ललचावे, इनसे ममत्व हटा ले, तो किस की शक्ति है, जो परस्त्री की ओर बुरी नजर से देख सके।

मदनरेखा ने कहा कि जिसका पति परदेश मे हो, उसे विलास-सामग्री से क्या प्रयोजन है ?

मदनरेखा ने मणिरथ के भेजे हुए वस्त्राभूषण लाने वाली दूती को फटकार बताई और वापस ले जाने को कहा दूती ने घृष्टता के साथ कहा—राजा आपको चाहते है । इन गहनो-कपडो की बात ही क्या है, वे स्वय आपके आधीन होने वाले है । ये वस्त्र और आभूषण तो अपनी हार्दिक-कामना प्रकट करने के लिये ही उन्होने भेजे है ।

दूती की निर्लज्जतापूर्ण बात सुनते ही मदनरेखा का अग-अंग क्रोध से जल उठा । उसने अपनी दासी से अपनी खड्ग मगवाई और दूती को उसकी घृष्टता का मजा चखा देने का विचार किया ।

मदनरेखा की भयकर आकृति देख कर दूती सिर से पैर तक कांप उठी । उसकी प्रचण्ड मुखमुद्रा देख दूती के चेहरे पर हवाइयां उडने लगी । तब मदनरेखा ने उससे कहा—जा, काला मुह कर, अपने राजा से कह देना कि वह सिंहनी पर हाथ डालने की खतरनाक और निष्फल चेष्टा न करे, अन्यथा धन-परिवार समेत उसका समूल नाश हो जायेगा

दूती अपनी जान बचा कर भागी। उसने मणिरथ से आद्योपान्त सारा वृत्तान्त कह सुनाया। मणिरथ ने सोचा—ऐसी वीरागना स्त्री तो मेरे ही योग्य है।

'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।'

एक दिन आधी रात के समय स्वयं मणिरथ, मदनरेखा के महल मे जा पहुचा। वहा पहुच कर उसने द्वार खटखटाया। मदनरेखा सारा रहस्य समझ गई। उसने किवाड खोले विना ही राजा को फटकारा। कहा—'इस समय तेरा यहा क्या प्रयोजन है? जा, इसी समय चला जा यहा से।'

राजा—मदनरेखा, विना प्रयोजन कौन किसके यहां आता है। मैं अपना मन तुम्हे समर्पित कर चुका हूं। यह तन और बचा है, इसी को तुम्हारे चरणो मे अर्पित करने के लिये आया हू। मदनरेखा, मेरी भेंट स्वीकार करो। इस तन के साथ ही यह विशाल राज्य भी तुम्हे सौप दिया जाएगा।

मदनरेखा—राजा, काम की अग्नि को अगर सहन नहीं कर सकते तो चिता की अग्नि को अपना शरीर समर्पित कर दो। अपनी कामाग्नि से सती-साध्वी पतिव्रता नारी के धर्म को आग न लगाओ। उस आग मे नीति को भस्म न करो। अपने भविष्य को नष्ट होने से बचाओ। पतित पुरुष, अपने छोटे भाई की पत्नी पर तू कुत्सित दृष्टि डालता है। मैं नारी होकर तुझे दुत्कारती हूं और तू मेरे पैरो मे पडता है। कहा है तेरा पुरुषत्व? जो काम

के अधीन होकर स्त्री के सामने दीनता दिखलाता है, वह पुरुष नही, हीजडा है । तू स्त्री और नपुंसक से भी गया-बीता है । अपना भला चाहता है तो अभी-इसी क्षण-यहा से चलता बन वर्ना तुझे अपनी करतूत का अभी मजा चखाया जायेगा ।

मदनरेखा ने मणिरथ को जब इस प्रकार फटकार बताई तो वह अपना-सा मुह लेकर लौट आया । फिर भी उसे सद्बुद्धि न आई । उसने सोचा—जब तक युगबाहु जीवित रहेगा, तब तक यह स्त्रीरत्न हाथ न लगेगा । किसी प्रकार इस काटे को निकाल फेंकना चाहिये ।

इस प्रकार मणिरथ का पाप बढता चला गया लेकिन पापी का पाप बढने से ज्ञानीजन घबराते नही हैं । ज्ञानी जन सोचते है कि पाप की वृद्धि होने से ही आत्मीय शक्ति अर्थात् धर्म का बल प्रकाश मे आता है । अधर्म की वृद्धि से धर्मो मे नया जीवन आता रहता है । पाप के बढने से ज्ञानियो की महिमा बढती है । ज्यो-ज्यो मणिरथ का पाप बढने लगा त्यो-त्यो मदनरेखा के जीवन की शुद्धि बढने लगी ।

अगर भारत दुखी न होता तो गाधीजी की महिमा न बढती । अतएव पाप की वृद्धि होने पर घबराना नही चाहिए । पाप के प्रतिकार का प्रकृति मे एक बडा नियम है । इसी नियम के अनुसार मणिरथ पाप के मार्ग पर आगे बढता गया और मदन रेखा पवित्रता की ओर अग्रसर होती गई ।

युगबाहु विद्रोहियो को दबा कर लौट आया । मणि-रथ ने ऊपर से खूब प्रसन्नता प्रकट की । मदनरेखा को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई । उसने सोचा—पति आ गये, अब किसी प्रकार का भय नही रहा । लेकिन मदनरेखा ने दुर्व्य-वहार के विषय मे कुछ न कहा ।

मदनरेखा की यह गम्भीरता प्रशंसनीय हैं । उसकी वीरता ऐसी है कि राजा को बुरी तरह फटकार सकती है और गम्भीरता इतनी है कि ऐसी बडी घटना के विषय मे भी वह अपने पति से एक शब्द नही कहती । कुलीन स्त्रियां जहा तक सभव होता है, भाई-भाई मे विरोध उत्पन्न नहीं होने देती । यही नही, वरन् किसी अन्य कारण से उत्पन हुए विरोध को भी शान्त करने का प्रयत्न करती है । मदन-रेखा प्रथम तो स्वय वीरागना थी, उसे अपनी शक्ति पर भरोसा था । दूसरे उसने सोचा-पति के आ जाने से दुष्ट राजा रास्ते पर स्वय आ जाएगा, अतएव अब पारस्परिक कलह जगाने से क्या लाभ है ? यही सोचकर उसने पिछली घटना के विषय मे युगबाहु से एक शब्द भी न कहा ।

एक बार राजा मणिरथ वसन्तोत्सव मनाने के लिए वन मे गया । युगबाहु भी वसन्तोत्सव के अर्थ वन को चला मदनरेखा ने सोचा—पति अकेले वसन्तोत्सव मनाने जायेंगे तो उन्हे उत्सव फीका लगेगा । उनका साथ छोड़ना उचित नही है, यह सोच कर वह युगबाहु के साथ हो ली । वन मे पहुंच कर युगबाहु ने वह रात्रि वन मे ही व्यतीत करने का निश्चय किया । उसने मदनरेखा से भी अपना निश्चय कह सुनाया । मदनरेखा बोली—'नाथ, मैं आपके आनन्द मे

विघ्न डालना नही चाहती। पर यह कह देना आवश्यक समझती हू कि वन मे अनेक आपत्तियो की आशका रहती है अतएव वन मे रात्रि के समय रहना उचित नही है। युगबाहु ने कहा—अपने साथ रक्षक मौजूद हैं। मैं स्वय कायर नही हू। फिर डर किस बात का है ?

बाग मे ही युगबाहु के डेरे-तम्बू लग गये। युगबाहु और मदनरेखा रात भर वही रहने के विचार से ठहरे। डेरे के आस-पास पहरा लग गया।

मदनरेखा सहित युगबाहु को बाग मे ठहरा देख मणिरथ ने विचार किया—आज अच्छा अवसर है। अगर मैंने आज युगबाहु का काम तमाम कर दिया तो मदनरेखा हाथ लग जायेगी।'

इस प्रकार पाप-सकल्प करके मणिरथ घोडे पर सवार हो कर अकेला ही युगबाहु के डेरे पर आया। युगबाहु के पहरेदारो ने उसे अन्दर घुसने से रोक दिया।

राजा ने कहा—मैं राजा हू। युगबाहु मेरा छोटा भाई है। मुझे अन्दर जाने की मनाही कैसे हो सकती है।

पहरेदार—आप महाराज है, यह ठीक है। आपकी आज्ञा सिर माथे पर। किन्तु युवराज युगबाहु सपत्नीक ठहरे हुए हैं, अत: आपका अन्दर जाना ठीक नही हैं। आखिर एक पहरेदार ने भीतर जाकर युगबाहु से आज्ञा ली और युगबाहु ने कहा—भाई भीतर आना चाहते है, तो आने दो।

मदनरेखा ने कहा—नाथ, सावधान रहिए। भाई की नजर भाई सरीखी न समझिए। वे इस समय आपकी जान के ग्राहक बनकर आ रहे हैं।

यद्यपि मदनरेखा ने युगबाहु को सब बात भली भाति सुझाई पर उसने उपेक्षा के साथ कहा—यह तुम्हारा भ्रम है। जिस भाई ने अपने पुत्र को युवराज न बनाकर मुझे युवराज बनाया, वह मेरे प्राणो का ग्राहक क्यो होगा? अगर उनके हृदय मे पाप होता तो मुझे युवराज क्यो बनाते?

मदनरेखा एक ओर हट गई। मणिरथ डेरे मे आ गये। युगबाहु ने मणिरथ का यथोचित अभिवादन करके पूछा इस समय आपने पधारने का कष्ट क्यो किया है? आज्ञा दीजिए, क्या कर्त्तव्य है?

मणिरथ—तू शत्रुओ को जीतकर आया है, पर तेरे शत्रु अब भी तेरा पीछा कर रहे है। इधर तू किला छोड-कर उद्यान मे आकर रहा हैं। इसी चिन्ता के मारे मुझे नीद नही आई और मैं दौड़ा चला आया।

मणिरथ ने अपने आने के विषय मे जो सफाई पेश की, वह कुछ सगत नही थी। युगबाहु को उसकी बात से कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया। युगबाहु ने तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—आप मुझे इतना कायर समझते हैं? क्या मैं डरपोक हू? यहा तो किला और सेना, सब समीप ही हैं। जहा मैं युद्ध करने गया था, वहा से तो ये सब दूर थे। फिर भी न तो मुझे किसी प्रकार का भय ही हुआ

और न आपको ही मेरी चिन्ता सवार हुई । मुझे शत्रुओ से किसी प्रकार की हानि हो सकती है, यह आपकी भ्रम-पूर्ण सभावना है । ऐसे अवसर पर आपका आना और विशेषत. इस अवस्था मे जव कि मैं सपत्नीक हूं नितान्त अनुचित है । राजा स्वय मर्यादा का भग करेगा तो मर्यादा का पालन कौन कराएगा ?

मणिरथ के चेहरे पर मुर्दनी-सी छागई । वह बोला- 'अच्छा, जाता हू । मगर प्यास के मारे मेरा गला सूख रहा है, थोड़ा पानी तो पिला दे ।'

सामने ही पानी रखा था । युगबाहु भाई को पानी पिलाने से कैसे इन्कार होता ? एक सामान्य अतिथि को पानी पिलाने के लिए मनाही नही की जाती तो मणिरथ वडा और राजा था । उसे पानी पिलाने से युगबाहु कैसे मुकरता ?

युगबाहु पानी पिलाने के लिए तैयार हुआ । उसने जैसे ही पानी की ओर हाथ वढाया, तैसे ही मणिरथ ने उस पर जहर से बुझी हुई तलवार का वार कर दिया । युग-वाहु जमीन पर लोट गया ।

मणिरथ तत्काल घोडे पर चढकर भागने को हुआ, हाथ मे खून से भरी तलवार देख पहरेदारो ने उसे रोक लिया । मणिरथ पहरेदारो से युद्ध करने लगा—आपस में संग्राम छिड गया ।

युगबाहु क्षत्रिय था । क्षत्रिय भाव के अनुसार घायल

अवस्था मे भी उसे बडा क्रोध हुआ। क्रोध के मारे वह इधर-उधर लोटने लगा। उसी समय मदनरेखा आ गई। उसने पति को इस अवस्था मे देखा तो वह क्षण भर के लिए किंकर्त्तव्यविमूढ हो गई। इस समय मदनरेखा का क्या कर्त्तव्य है ? उसे क्या करना चाहिए ?

अरे ओ सज्जनो ! व्हाला ! पियो न प्रेम का प्याला।
धरी प्रभु नामनी माला, करो जीवन सफल आजे ॥

ऐसे प्रसग पर रुदन करके जो अपना और मरने वाले का भविष्य बिगाड़े, उसके विषय मे आप कहेगे कि उसे मरने वाले से वडा प्रेम है। रोना-धोना ही आज प्रेम की कसौटी समझी जाती हैं। लेकिन यह कसौटी भ्रम है—धोखा है—ठगाई है। सच्चा प्रेम क्या है और 'सज्जनता' किसमे है, यह मदनरेखा के चरित्र से सीखना चाहिए।

मदनरेखा के जीवन मे इससे अधिक अनिष्ट क्षण दूसरा कौन सा होगा ? दुष्ट मणिरथ ने उसके निरपराध पति का वध कर डाला, इससे अधिक विपदा मदनरेखा पर और क्या आ सकती है ? इतना ही नही, भविष्य का भय भी उसकी आखो के आगे नाच रहा है। वह गर्भवती है। ऐसे विकट समय मे वह क्या करे।

कायर के लिए यह बडा भयकर समय है। मगर मदनरेखा वीर क्षत्राणी थी। कायरता उससे कोसो दूर थी उसने उसी समय अपना कर्त्तव्य स्थिर कर लिया। सोचा-पतिदेव का जीवन अधिक से अधिक दो घडी का है। इन दो घड़ियो का मूल्य वहुत अधिक है। इतने समय मे ही

मुझे ऐसा करना हैं, जिससे इनकी सहधर्मिणी के नाते मैं अपना कर्त्तव्य निभा सकूं।

बाहर मणिरथ और पहरेदारो मे होने वाले युद्ध के कारण कोलाहल मच रहा था। मदनरेखा दौड कर बाहर आई और द्वार-रक्षको से बोली—तुम किससे युद्ध कर रहे हो ? तुम्हारे स्वामी केवल दो घडी के मेहमान है। इन दो घडियो मे मैं स्वामी को ऐसी कुछ चीज देना चाहती हूं, जो उनके काम आ सके। इसलिए तुम युद्ध बन्द करो, जिससे कोलाहल मिटे और शान्ति हो। अगर तुम राजा को मार डालोगे, तब भी कोई लाभ न होगा। स्वामी जीवित नही हो सकते। तुम अपने स्वामी के हितचिन्तक हो, पर मैं तुमसे भी अधिक उनका हित चाहती हू। राजा को भाग जाने दो। शान्त हो जाओ।

मदनरेखा की बात सुनते ही द्वार-रक्षक शान्तिपूर्वक खड़े हो गये। राजा मणिरथ उस समय सोचने लगा—'अब मदनरेखा मुझे चाहने लगी है। ऐसा न होता तो वह मेरी जान क्यो बचाती ? अपने पति को न रोकर मेरी रक्षा के लिए वह दौड़ी क्यो आती ?

इस प्रकार अपने विचारो से प्रसन्न होता हुआ मणि-रथ घोडे पर सवार होकर वहां से भागा। लेकिन पाप का फल भोगे विना छुटकारा कहा ?

राजा मणिरथ के घोडे का पैर एक साप की पूंछ

'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।'

पर पड़ गया । पूंछ कुचलते ही सांप उछला और उसने मणिरथ को डस लिया । मणिरथ चल बसा और चौथे नरक का अतिथि बना !

इधर मदनरेखा ने देखा—स्वामी वेदना से तडप रहे हैं । उसने घाव पर पट्टी बांधी और उनका सिर अपनी गोद मे रखा उसने कहा—नाथ ! आपकी इहलोक लीला दो घडी मे समाप्त होने जा रही है । कृपा कर मेरी बात पर ध्यान दीजिए ।

युगबाहु ने आख खोलकर कहा—मदनरेखा, मुझे तुम्हारी चिन्ता हो रही है । तुम्हारा क्या होगा ? भाई तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करेगा ?

मदनरेखा ने सोचा—स्वामी का मोह और क्रोध यो दूर न होगा । उसने एक ऐसा मन्त्र पढा, जिससे करोड़ो सांपो का भी विष दूर हो सकता था । करोड़ो सापो का विष दूर होना उतना कठिन नही है, क्रोध का शान्त होना कठिन है । उसने अपने पति से कहा—

प्राणनाथ ! अन्तिम समय मे आप का यह क्या हाल है ? आप मुझ पर राग और भाई पर द्वेष धारण किये हुए हैं । यह विपरीत बात क्यो ? यह खड्ग, जो आपके शरीर मे लगा है, आप के भाई ने नही, वरन् मैंने ही मारा है । आप उन पर अनावश्यक क्रोध क्यो कर रहे हैं ? भाई को तो आप प्रिय ही हैं ? यदि भाई आपसे प्रेम न करते तो अपने बेटे की उपेक्षा करके आपको युवराज क्यो बनाते ? मेरी बात आपकी समझ मे न आती हो तो आप

स्वय विचार कीजिए। अगर आप मेरे पति न होते और अगर मैं आपकी पत्नी न होती, तो आपके भाई आपसे रुष्ट क्यो होते ? मैं आपकी पत्नी हुई और आप मेरे पति हुए इसी कारण उन्होने आपके ऊपर तलवार चलाई हैं। भाई के साथ आपका वैर कराने वाली मैं ही हू। आप मेरे स्वामी रहे, अत· आपको यह अवस्था भोगनी पडी है। मेरे स्वामी बनने का फल इसी जन्म मे आपको यह भुगतना पडा। अगर अन्त समय मे भी आपका मन मुझमें लगा रहा तो परलोक मे आपकी क्या अवस्था होगी ? आप अगर नरक के मेहमान बनेगे तो आपका मेरा फिर सम्मिलन न हो सकेगा। जब यह स्पष्ट है कि आपकी इस दशा का कारण मैं हूं तो फिर आप भाई पर रोष और मुझ पर राग क्यो करते हैं ? आप परिणामो मे समता लाइए ! ऐसा करने से ही आत्मा को शान्ति मिलेगी और अन्त मे शुभ गति का लाभ होगा।

मदनरेखा कहती है—'इस समय आपके लिए सबसे श्रेष्ठ यही खर्ची है कि आप मुझ पर राग न कीजिए और अपने भाई पर द्वेष न कीजिए।'

जब तलवार मारने वाले भाई पर ही द्वेष न रहेगा तो क्या किसी दूसरे पर वह रह सकेगा।

'नही' ?

तो फिर सब मिल कर बोलो :—

खामेमी सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेर मज्झ न केणइ ॥

मदनरेखा कहती है—नाथ ! यह शान्ति का समय है। आप सब जीवो से क्षमा की अभिलाषा कीजिए—क्षमायाचना कीजिए और सर्व प्रथम अपने भाई से ही क्षमा मागिए।

इस प्रकार मदनरेखा के उद्‌बोधन से उसके मरणा-सन्न पति ने राग और द्वेष का त्याग करके अपने हत्यारे भाई को हृदय से क्षमा कर दिया और फिर सब जीवो से क्षमायाचना करके शरीर छोड दिया।

२ : क्षमावीर गजसुकुमार

ससार अवस्था के छहो भाई और इस समय एक ही गुरु के छहो शिष्य दो-दो सघाड़े से देवकी रानी के घर भिक्षा के लिए पधारे। ये छहो मुनिराज अपने गुरु से आज्ञा लेकर बेले-बेले से पारणा किया करते थे। दो दिन के उपवास के बाद पारणा करना और फिर दो दिन उप-वास करना, इसी क्रम से उन मुनियो की तपस्या चल रही थी। फिर भी वे स्वय गोचरी करने जाते थे। संसार-अवस्था में बड़े कुलीन और धनवान थे। प्रत्येक ३२-३२ करोड मोहरो के स्वामी थे। पर उन मोहरो को तृण की तरह तुच्छ समझ कर उन्होने त्याग दिया। जो मनुष्य इतनी

महान् ऋद्धि का त्याग कर सकता है, वह क्या कभी रोटी के टुकडो के लिए लालायित होगा ? कदापि नही है ।

द्वारिका नगरी वहुत लम्बी-चौडी थी । मुनि किसी के भी घर गोचरी करने जा सकते थे । पर गजसुकुमार को घड़ने के लिए एक अदृश्य शक्ति काम कर रही थी । उसी शक्ति की प्रेरणा से छहो मुनि एक देवकी के घर दो-दो के तीन सघाडो मे गये ।

मुनियो का अभिग्रह भिन्न-भिन्न होता था । एक को दूसरे के अभिग्रह का पता तक नही चलता था । वे दो-दो साथ होकर गोचरी के लिए जाते थे । एक युगल कहा—किस घर मे गोचरी के लिए गया सो दूसरे युगल को मालूम नही होता था । उस दिन सयोगवश तीनो युगल देवकी के घर गोचरी करने जा पहुचे ।

जो युगल सबसे पीछे देवकी के यहा गया था, उसके दोनो मुनियो को देखकर देवकी ने उनसे कहा—मुझे एक विचार आ रहा है । अगर आपकी स्वीकृति हो तो वह प्रकट करू । मैं आशा करती हू, आप मेरी बात का उत्तर अवश्य देगें ।

मुनि बोले—'आप जो कहना चाहती है, निःसकोच होकर कहिए ।

देवकी—'इस द्वारिका नगरी मे लाखो आदमी धर्म की सेवा करने वाले और सतो की सेवा करने वाले मौजूद हैं । मेरा कृष्ण भी राज्य करता हुआ धर्म का प्रचार कर रहा है । ऐसा होते हुए भी मुझे आज यह विचार आ रहा

है कि द्वारिकावासी इतने अनुदार और धर्म विमुख क्यो हो गये है ? उनकी धर्मभावना और दानशीलता कहा चली गई है ? अगर ऐसा न होता तो मुनियो को अपने नियम के विरुद्ध एक ही घर वार-वार भिक्षा के लिए क्यो आना पड़ रहा हैं ? मैं अपना अत्यन्त अहोभाग्य मानती हू कि मुनिराज मेरे यहां गोचरी के लिए पधारे, मगर नगर—निवासी जनो मे क्या इतनी भी शक्ति शेष नही रही कि मुनियो को आहार दान दे सके ?

मुनियो को देवकी की वात सुनते ही यह समझने मे विलम्व न लगा कि हमारे चार भाई पहले यहा गोचरी के लिए आ चुके हैं और इसी कारण देवकी के दिल मे यह वात पैदा हुई है। अतएव वे वोले—महारानी के चित्त मे इतनी अधिक धार्मिक भक्ति विद्यमान है, वहां की प्रजा धर्म-विमुख कैसे हो सकती है ? जहा लौकिक धर्म मे भी किसी प्रकार की त्रुटि नही होने पाती, वहा आत्मिक धर्म मे कैसे कमी हो सकती है ? महारानी, नगरनिवासियो मे धर्मप्रेम की कमी नही हुई है और न हम वारम्वार आपके यहां आये है। पहले जो यहा आये होगे, वे हमारे साथी दूसरे मुनि थे। हम दूसरे है। वे हम नही हैं और हम वे नही है।

देवकी—मुनिराज ! आपका स्पष्टीकरण सुनकर मुझे सतोष है। आपका और उनका रूप-रग आदि सव समान हैं। यही देखकर मैंने समझा था कि वही-वही मुनिराज मेरे घर पुन-पुनः आ रहे है। मैं इसके लिए क्षमा की याचना करती हू। आप सव महाभागी मुनियो का एक-सा

रूप-यौवन देखकर मै चकित रह जाती हू ! वह कौन-सी पुण्यशालिनी और सौभाग्यभागिनी माता होगी, जिसने आप सरीखे सुपुत्रो को जन्म दिया है ? आप छहो मुनि भाई-भाई जान पडते है । जब आप सबने मुनि-दीक्षा धारण की होगी तब उस माता के अन्तःकरण की क्या दशा हुई होगी ? आपके वियोग को उसने किस प्रकार सहन किया होगा ? मैने आपको थोडी-सी देर देखा है, फिर भी मेरे हृदय में भक्ति भाव के अतिरिक्त वात्सल्य का भाव उमड रहा है । मैं न जाने किस अनिर्वचनीय अनुभूति का आस्वादन कर रही हू ? तव आपकी जन्म देने वाली माता की क्या अवस्था होगी ? आपके माता-पिता ने किस हृदय से आपको दीक्षा धारण करने की आज्ञा दी होगी ? आपको सयम-पालन की आज्ञा देने वाले वे कैसे होगे ? उनका हृदय न जाने कैसा होगा ? प्रथम तो इस अवस्था मे ही सयमी होना दुष्कर कार्य है, तिस पर इस दिव्यरूप-सम्पत्ति के होते हुए सयम अगीकार करना तो और भी कठिन है ।

आपका रग-रूप कृष्ण से जरूर मिलता है । कृष्ण के अतिरिक्त मुझे तो और कोई दिखाई नही देता, जिसके साथ आपके रूप की सदृशता हो सके । कृपा करके मुझे वतलाए कि आपका जन्म कहा हुआ था ? आपके माता-पिता का क्या नाम था ? और आपके घर की स्थिति क्या थी ? आपने किस तात्कालिक कारण से सयम स्वीकार किया है ?

साधारणतया कोई भी शिष्ट पुरुष आत्म-प्रशसा नहीं करता । फिर मुनिराज अपनी प्रशंसा आप कैसे कर सकते

हैं ? फिर भी जहा परिचय देना आवश्यक हो और उस परिचय मे ही प्रशसा-सी ओतप्रोत हो तो क्या उपाय है ? अतएव मुनि बोले—महारानी, भद्दलपुर नामक नगर मे हमारा जन्म हुआ था। हमारे पिता का नाम गाथापति नाग था और माता का नाम सुलसा था। हम छहो मुनि उन्ही के अंगजात हैं। हमारा जन्म होने पर माता-पिता ने लोकोचित सभी सस्कार—व्यवहार किये। छहो भाइयो को बड़े-बड धनाढ्य सेठो ने अपनी-अपनी कन्याए प्रदान की।

कुछ दिनो के अनन्तर भद्दलपुर मे भगवान अरिष्ट-नेमि पधारे। हमे भगवान् के प्रवचन को श्रवण करने का सौभाग्य मिला। उस प्रवचन के श्रवण से हमारा विवेक जागृत हुआ और ससार से विरक्ति हो गई। तब से ऐसा मालूम होने लगा कि ससार जल के बुलबुले के समान क्षण-भगुर एव निस्सार है। इस विरक्ति भावना से प्रेरित होकर हमने भगवान् अरिष्टनेमि के चरण-शरण मे जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। हम शरीर मे रहते-रहते घबडा उठे है। चाहते है इस सुन्दर शरीर से सिद्ध होने वाले प्रयोजन को साध कर इसका भी त्याग कर दें। अतएव हम छहो ने बेले-बेले पारणा करने का निश्चय किया है। यो तो भग-वान् के अनुग्रह से, स्थविर मुनि की सेवा मे रहकर हमने बारह अ गो का अध्ययन किया है और श्रुतकेवली हुए है, परन्तु पूर्वाजित कर्मो का क्षय करने के लिए हमने इस विशेष तपस्या को अपनाया है।

हम छहो भाई बेले-बेले का पारणा कर रहे हैं।

आज हमारे पारणे का दिन था, अतएव हमने दिन के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर मे ध्यान किया और उसके पश्चात् भगवान की आज्ञा लेकर छहो भाई तीन संघाडो में विभक्त होकर पृथक्-पृथक भिक्षा के अर्थ नगरी मे निकले यद्यपि चलते समय आपके यहा आने का कोई इरादा नही किया था, फिर भी फिरते-फिरते आपके भाग्य से यहां आ पहुचे हैं । द्वारिका में मुनियो के लिए भिक्षा की कोई कमी नही है, और हम लोग दूसरी या तीसरी बार यहा नही आये हैं । देवयोग से ही सब तुम्हारे यहा आ गये है ।'

इतना कहकर मुनि वहां से चल दिये । देवकी विस्मित भाव से उन मुनियो की ओर देखती रही ।

जब मुनि थोड़ी दूर चले गये, तब देवकी सिहासन पर बैठ कर सोचने लगी—

जिन्होने मन, वचन काय से मिथ्या-भाषण का परित्याग कर पूर्ण रूप से निरवद्य सत्य भाषण का व्रत ग्रहण किया है, उन अनगार महात्माओ के मुख से निकली बात भी सत्य ही होगी । छल-कपट से अनभिज्ञ, सरल हृदय बालक भी जो बात कहता है वह झूठ नही हो सकती ।

ऐसा होते हुए भी मेरे मन में एक सन्देह हो रहा है । जब मैं अपने पिता के घर थी, तब मेरे चचेरे भाई, जो मुनि हो गये थे और जिनका नाम अतिमुक्तक था, एक बार गोचरी के लिए पधारे थे । उस समय मेरी भौजाई कस की पत्नी-ने अभिमान दिखलाते हुए कहा था कि 'तुम राजवंश मे उत्पन्न होकर भी भिक्षुक हुए हो ! क्या भीख

माग कर खाना क्षत्रिय का धर्म है ? तुम्हारा यह वेश, देख-देख कर हमे लाज लगती है । इसे छोड़ो, राजोचित वस्त्राभूषण धारण करो ।' भौजाई की यह बात सुनकर उत्तर देते हुए मुनिराज ने मेरे आठ अनुपम पुत्रो के होने की बात कही थी वह बात कैसे मिथ्या ठहर रही है ? मैं अपने आपको भाग्यशालिनी मानती थी, पर नही भाग्यशालिनी माता वह है, जिसने इन छह मुनियो को अपनी कोख से जन्म दिया है । मैं भला काहे की भाग्यशालिनी हू, जिसने अपने पुत्रो को जन्म देकर भी उनका मुख तक देख न पाई ! उस समय मुख देखती भी क्या ! जानती थी, दूसरे क्षण वे यमराज के अतिथि बनने जा रहे है । उस दशा मे भला मुख देखकर क्यो अपने हृदय को जलाती ! हे परमात्मा ! वह समय स्मरण आते ही रोम-रोम थर्रा उठता है ।

इस प्रकार देवकी अपने अभाग्य पर देर तक विचार करती रही और मन ही मन सुलसा के सौभाग्य की सराहना करती रही, जिसने साकार सौन्दर्य के समान सुयोग्य पुत्रों को जन्म दिया !

विचार करते-करते उसे ध्यान आया कि इस समय भगवान् श्री अरिष्टनेमि यही विराजमान है । वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् समस्त सदेहों का निवारण करने मे सर्वथा समर्थ है । मैं सन्देह के जाल मे क्यो फसी रहू, जबकि उसे निवारण करने का सुगम उपाय मौजूद है ।

देवकी ने निश्चय कर लिया कि मैं अपने सशय के विषय मे भगवान् अरिष्टनेमि से अवश्य पूछूंगी । उसने

विलम्ब नहीं लगाया और रथ में बैठ कर भगवान् के समीप पहुची । वहा पहुंचते ही उसने विधि के अनुसार भगवान् को वन्दन-नमस्कार किया ।

भगवान् सर्वज्ञता के धनी थे । उन्होने देवकी के सशय को पहले ही जान लिया था । अतएव उन्होने देवकी से कहा—देवकी आज तुम्हारे यहां छह मुनि तीन वार आहार लेने आये ? उन्हे तुमने आहारदान दिया था ? और तुम्हारे मन मे मुनि अतिमुक्तक के कथन के प्रति सदेह उत्पन्न हुआ था ? तुमने अपने आपको भाग्यहीन और सुलसा को सौभाग्यशालिनी समझा था ?

भगवान् की वात सुनकर देवकी दग रह गई । वह कहने लगी—प्रभो ! आपसे कौनसा रहस्य छिपा है ? आप सभी कुछ जानते है । आपने मेरे मन के विचारो को जान लिया है । मैं आपकी सेवा मे उपस्थित हुई हूं, कृपया मेरे सशय का निवारण कीजिए ।

भगवान् ने कहा—देवकी, तुम निश्चय समझो, ये पुत्र सुलसा के नही, तुम्हारे ही है । तुम और सुलसा एक ही साथ गर्भवती होती थी । दोनो के गर्भ मे साथ साथ ही वालक भी वढते थे । सुलसा को एक निमित्तवेत्ता ने बताया था कि तुम्हारे उदर से मृत वालको का जन्म होगा । निमित्तवेत्ता का वृत्तान्त सुनकर सुलसा को बहुत चिन्ता हुई । वह सोचने लगी, इससे ससार मे मेरा बडा अपयश होगा और मेरे पति सन्तानहीन रहेगे । इससे मुझ पर उनका ऋण रह जायेगा । मैं भी सन्तान के सुख से वचित रहूगी

इस चिन्ता का निवारण करने के लिए सुलसा ने हरण-गमेषी देव की तेला द्वारा आराधना की । सुलसा की तप-स्या के प्रभाव से देव आया और सुलसा ने अपनी चिन्ता का कारण उसे सुनाया । सुलसा की वात सुनकर हरणग-मेषी देव ने कहा—'मृत पुत्रो का जीवित करना मेरी शक्ति से परे है । हा, मैं इतना करूंगा कि तुम्हे ऐसे पुत्र दूगा जैसे त्रिलोक मे भी दुर्लभ है ।

भगवान् ने अपना कथन चालू रखते हुए कहा—देवकी, तुम्हारे और सुलसा के गर्भ के वालक एक ही साथ उत्पन्न होते थे । पुत्र के प्रसव के समय तुम आख मून्द लेती थी । उसी समय हरणगमेषी देव सुलसा का मृत पुत्र लाकर तुम्हारे पास रख देता था और तुम्हारा जीवित पुत्र ले जाकर सुलसा को सौप आता था । तुम उस मृत पुत्र को आखे मून्दे ही मून्दे, कस को सौपने के लिए राजा वसुदेव को दे देती थी और वसुदेव भी विना वालक पर दृष्टि डाले कस के हवाले कर देते थे । वालक को न तो तुम देखती थी, न वसुदेव देखते थे । अतएव तुम्हे यह पता नही चलता था कि वालक जीवित है या मृत है ?

कस उन मृत शिशुओं को देख कर अपने पुण्य के प्रकर्ष पर फूला नही समाता था । वह सोचता था—धन्य है मेरा पुण्य, जिसके प्रताप से मुझे मारने वाले स्वय मरे हुए पैदा होते है ! मैं कितना तेजस्वी हू कि विना हाथ उठाये ही ये वालक अपने आप काल के गले मे समा जाते है ।'

कस के चापलूस सरदार कहा करते थे—'आप के

भय के मारे देवकी पीपल के पत्ते की तरह कापती रहती है। वह सदा भय-विह्वल रहती है और उसी भय के कारण बालक गर्भ में मर जाते है।'

कंस बालको को मरा हुआ देखता था, फिर भी उसे सतोष नही होता था और वह उन बालको को भी पैर-पकड़ कर पछाड़ डालता था।

देवकी इस प्रकार तुम्हारे सब बालक सुलसा के यहा चले गये थे। वे ही ये बालक है। अतिमुक्तक मुनि की बात सत्य है, मिथ्या नही।'

भगवान् का कथन सुनकर देवकी के आनन्द का पार न रहा। भगवान् को उसने वन्दना की और वह वहा, पहुंची जहा वे छह अनगार थे। यद्यपि ये मुनि वे ही थे जो देवकी के घर भिक्षा के लिये गये थे और जिन्हे देवकी ने अपने घर देखा था और देवकी भी वही थी, फिर भी उसकी तब की दृष्टि से अब की दृष्टि मे बड़ा अन्तर था। उस समय सिर्फ भक्ति का भाव था और इस समय वात्सल्य की प्रबलता थी। ज्यो ही मुनियो पर उसकी नजर पड़ी, उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा! आन्तरिक प्रसन्नता के कारण उसका शरीर फूल गया, यहा तक कि उसकी चोली फट गई और उसके स्तनो से दूध की धारा बह निकली। देवकी की बाहे ऐसी फूली कि चूडिया भी छोटी पड़ने लगी। देवकी उस समय बेभान थी। वह भूल गई थी कि मैं साधुओं के सामने हू। पुत्रों के सुख से वञ्चित देवकी को अचानक पुत्र प्राप्त हो गये, और वे भी

असाधारण रूप—सम्पत्ति से समृद्ध । इस कारण वह लोक-व्यवहार की भी परवाह न करती हुई एकटक दृष्टि से मुनियो की ओर देखती रही ।

मित्रो ! देवकी के व्यवहार पर विचार करो तो प्रतीत होता है कि ससार के समस्त सम्बन्ध कल्पना के खेल है । देवकी पहले भी उन मुनियो की माता थी मगर उस समय उसे इस वात की कल्पना नही थी । भगवान के कथन से उसे यह ख्याल आया तो वह स्नेह से पगली हो उठी ! वस्तुतः ससार मे अपना क्या है ? कुछ भी नही। जिसे अपना मान लिया जाता है, वही अपना है और जिसे अपना न समझा, वह पराया है । जो कल तक पराया था, वही आज अपना वन जाता है और जिसे अपना मान कर स्वीकार किया जाता है, वह एक क्षण मे पराया बन जाता है । अतएव अपने—पराये की व्यवस्था केवल कल्पना है । तत्त्वज्ञ पुरुष इस कल्पना का रहस्य समझ कर वैराग्य धारण करते हैं ।

देवकी बहुत समय तक मुनियो की ओर टकटकी लगा कर देखती रही । जव उसके स्नेह का नशा कुछ कम हुआ तो उसने सोचा—अब कहा तक मैं इन्हे देखती रहूगी । आज मेरा सौभाग्य फला-फूला है कि ऐसे सुयोग्य, सुन्दर एव सयम-शील साधुओ की माता बनी हू ! मेरा भाग्य धन्य है, मै कृतार्थ हुई । इन्हे भी धन्य है, जो इस वय मे महान् एवं प्रशस्त कार्य में लगे हुए है ।

इस प्रकार विचार कर देवकी अपने घर लौटी ।

उसके मन में कुछ विषाद, कुछ सन्तोष का विचित्र सम्मिश्रण हो रहा था। दोनो के द्वन्द्व के कारण देवकी का दिल उदास, खिन्न और अशान्त बना हुआ था।

घर आते ही देवकी चिन्ता मे डूब गई। भोजन के अभाव मे भूख सहन करना सरल है पर जब भोजन सामने रखा हो उस समय भूख सह लेना कठिन है। वह सोचने लगी—मेरे सौभाग्य पर दुर्भाग्य की काली छाया पडी हुई है! असाधारण पुत्र-रत्नो को जन्म देकर मेरा सौभाग्य कितना ऊचा है! पर हाय, उन्हे जन्म देना न–देने के ही समान हो गया! सात पुत्रो का मैंने प्रसव किया, मगर एक के साथ भी मैं मातृधर्म का निर्वाह न कर सकी!

मैं शिशुओ की सरल और स्वच्छ स्मित से अपना मातृत्व सार्थक न कर पाई! उनकी अस्फुट तोतली बाते सुनकर अपने श्रुतिपुटो मे अमृत न भर पाई, डगमगाती चाल देखकर नेत्रो को सार्थक न किया।

माता के हृदय मे एक प्रकार की अग्नि जलती रहती है, जो पुत्र वात्सल्य से ही शान्त होती है। वह अग्नि आज भी मेरे हृदय मे धधक रही है। मैंने अपने बालकों को अपने स्तनो का पान भी नही कराया, जिससे कि उनमे मैं अपनी आत्मीयता स्थापित कर पाती।

मैं हतभागिनी हूं। मुझ सी माता इस मही-मण्डल पर दूसरी कौन होगी? मेरे सात पुत्र जन्मे। उनमे से छह तो सुलसा के यहा चले गये और सातवे पुत्र कृष्ण को यशोदा के घर गोकुल मे भेज देना पड़ा। इस प्रकार मैं

अपनी सन्तान के साथ मातृधर्म का जरा भी पालन न कर सकी ।

देवकी की इस चिन्ता मे एक ओर मोह की चेष्टा दिखाई देती है और दूसरी ओर कर्त्तव्यपालन की चेष्टा । माता का पुत्र पर मोह होता अवश्य है, पर वह बालक की जो सेवा करती है वह मोह से प्रेरित होकर नही, किन्तु करुणा की प्रेरणा से । बालक पर करुणा करना, वह अपना कर्त्तव्य समझती है । ज्ञाता सूत्र मे मेघकुमार के अधिकार मे यह बात स्पष्ट की गई है ।

देवकी की चिन्ता में मोह की चेष्टा का अभाव है, यह तो कहा नही जा सकता, लेकिन उससे एक बात स्पष्ट लक्षित होती है । वह यह है कि देवकी सोचती है—या तो पुत्र उत्पन्न ही न करके ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना चाहिए था और जब मैने बालक उत्पन्न किये है—मोह का पाप किया है—तो उसका पालन पोषण करके उन पर दया भी करनी चाहिये थी, जिससे यह मोहजन्य पाप कम हो । माता पुत्र की सेवा करके उसे जन्म देने के पाप को कम करती है । देवकी सोचती है कि मैने जन्म देने का पाप तो किया लेकिन उस पाप के प्रायश्चित के रूप मे उनके पालन पोषण की दया नही की । अतएव मेरा जन्म धिक्कार है । मैं वसुदेव की प्रियतमा रानी और कृष्ण की आदरणीय माता होकर भी हतभागिनी हू—पुण्यहीना हूं !

महापुरुषो की चिन्ता निष्फल नही जाती । देवकी की चिन्ता भी व्यर्थ न हुई । देवकी चिन्तामग्न बैठी ही थी

कि इसी समय कृष्णजी महाराज उन केचरण–वन्दन के लिए आ उपस्थित हुए ।

जब श्री कृष्ण देवकी के समीप आये तो उन्होनें देवकी को उदास पाया । उसे उदास देखकर कृष्णजी-कहने लगे– 'माताजी, मै नित्य आता था, तब तो तुम वडे दुलार से भरी हुई दृष्टि से मुझे देखती थी, मेरे सिर पर हाथ फेरती थी और मुझे आशीर्वाद देती थी मगर आज आपके मुख पर वह प्रफुल्लता नहीं है । वह शान्ति नही दिखाई देती । आप किस कारण से चिन्ता मे डूवी हुई है ? आज आपने मेरी ओर आख उठाकर भी नही देखा, जैसे मेरे आने की आपको खबर ही न पडी हो ! कृपा कर मुझे समझाइए, आपकी चिन्ता का कारण क्या है ?

कृष्णजी की स्नेह और आदर से भरी बात सुनकर देवकी के दिल मे जो दु ख भरा हुआ था वह उबल पड़ा। उसके हृदय मे तूफान–सा जाग उठा । वह रोने लगी ।

श्रीकृष्ण—'माताजी, आज मै यह क्या देख रहा हू ? आपके रोने का क्या कारण है ? कृपा कर मुझे वतलाइये ।'

देवकी—'वत्स, मैं अपने छह पुत्रो को मरा समझती थी परन्तु ऐसी वात नही । आज तुम्हारे वे छहो भाई यहां आये थे । वे भगवान् नेमिनाथ के समीप दीक्षित होकर मुनि वन गये है । भगवान् ने उनके विषय मे मुझे वताया कि वे मरे नही थे वरन् सुलसा के यहा बडे हुए हैं ।' देवकी ने भगवान् नेमिनाथ से प्राप्त हुआ वृत्तान्त आद्योपान्त श्रीकृष्ण

को कह सुनाया ।

'हे कन्हैया ! मैं तुझे क्या बताऊं ! तेरे सोलह वर्ष गोकुल मे बीते । जब मेरा मन नही मानता था, तब त्यौहार का बहाना करके जाती थी और तुझे देख आती थी। यद्यपि तुम्हारे पिता अकसर रोका करते थे कि बार-बार जाने से पुत्र के प्रकट हो जाने की आशंका है, फिर भी मैं उनसे आज्ञा ले ही लेती थी । तुझे देख-देख कर मेरा हृदय तृप्त नही होता था । जब तेरे ऊपर नजर पड़ती तो मैं अपने आपको धिक्कारने लगती थी कि मैंने तुझे जन्म तो दिया है पर तेरे प्रति अपना धर्म पालन नही किया । मातृ-कर्त्तव्य के पालन से मै वचित रही । इस प्रकार तुम्हारा पालन-पोषण तो गोकुल मे हुआ और वे छह पुत्र सुलसा के घर बड़े हुए । यही सोचकर मेरा दुःख उमड़ पडा है कि ससार मे मुझ-सी दुखिनी माता दूसरी कौन होगी ? मेरे दुर्भाग्य की बराबरी कोई नही कर सकता और दैव किसी को ऐसा दुख न देवे ? ओह ! सात पुत्रो मे से किसी को भी खिलाने, खेलाने, नहलाने, धुलाने का अवसर मुझे न प्राप्त हो सका । आज यह चिन्ता विषम रूप से उमड़ पडी है । इसी कारण मेरा मन स्वस्थ नही है ।

कृष्णजी ने कहा—'माताजी, आप इसके लिए चिन्ता क्यो कर रही है ? यह तो बडी प्रसन्नता की बात है कि मेरे छह भाई कस के शिकार न बने और वे सकुशल जीवित है । उन्हे तुम देख आई हो । वे भगवान् नेमिनाथ के चरण कमलो के भ्रमर है । यद्यपि इस परिस्थिति मे, माता के भावुक और कोमल हृदय को कष्ट पहुंचना अस्वाभाविक

नही हैं पर लीजिये मैं आपकी आकांक्षा पूरी करता हूं। मैं छोटा सा बालक बनता हूं, आप अपनी आकांक्षाएं पूर्ण कर लीजिए।'

यह कह कर कृष्णजी बालक बन गये। देवकी को मानो मनमानी मुराद मिल गई। बडी प्रसन्नता के साथ उसने कृष्ण को नहलाया, धुलाया, खिलाया, पिलाया और कपडे पहनाये।

अन्त मे कृष्ण ने सोचा—माता का हृदय बच्चे से कभी तृप्त नही हो सकता। माता के हृदय मे बहने वाला वात्सल्य का अखड झरना कभी नही सूख सकता। वह सदैव प्रवाहित होता रहता है। अग्नि जैसे ईन्धन से कदापि तृप्त नही होती वरन् ईन्धन पाकर वह अधिकाधिक प्रज्ज्वलित होती है, उसी प्रकार माता का प्रेम, सन्तान से कभी तृप्त नही होता। वह सन्तान पाकर निरन्तर बढता ही चला जाता है। माता का प्रेम सदा अतृप्त रहने के लिए है और उसकी अतृप्ति मे ही शायद जगत् की स्थिति है। जिस दिन मातृ-हृदय सन्तान प्रेम से तृप्त हो जायगा, जगत मे प्रलय हो जायगा। मेरा कोई भी प्रयत्न उसे तृप्त नही कर सकता। इसके अतिरिक्त मेरे माथे पर इतनी अधिक जिम्मेदारिया है कि अगर मैं बहुत दिनो तक बालक ही बना रहू तो काम नही चलने का।'

इस प्रकार सोच-विचार कर कृष्ण ने देवकी से कहा-'मैया, दूद (दूध) मैं दूद पिऊंगा।'

देवकी के घर दूध की कमी नही थी। वह मुस्कराती

हुई उठी और दूध ले आई।

तब कृष्ण बोले—दूद मे मीथा (मीठा) नही है। यह तो फीका है। इसमें थोरा-सा मीथा और मिला।'

देवकी ने दूध मे थोडी सी शक्कर और डाल कर कृष्ण को दिया। कृष्ण ने उसे ओठो से लगाया और नाक भौ सिकोड कर बोले—'छि-छि' उसमे तो भोत मीथा हो गया। थोरा-सा मीथा उसमे से निकाल ले।'

देवकी ने कृष्ण को बहुत समझाया–बुझाया कि भैया अब इस दूध में से मीठा नही निकल सकता। मैं दूसरा दूध ला देती हू। मगर कृष्ण कब मानने वाले थे ? उनकी नस-नस मे नटखट-पन भरा था। वे मचल पडे–न दूसरा दूध पीएगे, न इतना अधिक मीठा पडा दूध पीएगे, पर दूध पीए बिना न मानेंगे। उनके हठ के सामने देवकी हैरान थी। कृष्ण ने देवकी को थोडी देर मे इतना परेशान कर दिया कि वह कहने लगी मैं भरपाई, बस माफ करो।

कृष्ण ने फिर अपना असली रूप धारण कर लिया। देवकी ने पूछा—तुम अब तक यहा थे ? और अब वह बालक कृष्ण कहा चला गया ?

कृष्ण ने कहा—वही मैं हू और मैं ही वह था। और मे यही मौजूद हू। मै कही नही गया।

देवकी—तो तुम्हे यह भी नही मालूम कि दूध मे से

फिर शक्कर नही निकल सकती ?

कृष्ण—आप यह जानती है। बेचारा अबोध बालक इसे क्या समझे ? माताजी, जिस प्रकार दूध मे पडी शक्कर निकल नही सकतो और उसे निकालने का प्रयत्न करना निरर्थक है, इसी प्रकार जो बात बीत चुकी है, उसके लिए दुःख मनाना भी निरर्थक है।

देवकी—बेटा कृष्ण, बात तो सही है। पर दिमाग के लिये ही यह सही है, वही इसे मानता है। हृदय मानने को तैयार नही होता। हृदय तो यही चाहता है कि मुझे एक और पुत्र की प्राप्ति हो जिससे मै अपने मातृत्व को चरितार्थ कर सकू ! ऐसा हुए बिना वह अतृप्त रहेगा—अस्वस्थ रहेगा। उसे मनाना मैं अपनी सामर्थ्य के बाहर पाती हू। न जाने निसर्ग ने किन उपादानो से जननी के अन्त करण का निर्माण किया है !

कृष्ण—माताजी, आपकी यह अभिलाषा पूरी होगी। मेरा छोटा भाई अवश्य जन्म लेगा। मै प्रतिज्ञा करता हूं कि यदि मेरे छोटा भाई न हो तो मेरी तपस्या निष्फल है।

कृष्ण की प्रतिज्ञा सुनकर देवकी को पूरा भरोसा हो गया। उसकी चिन्ता दूर हो गई। उसे पूर्ण विश्वास था कि कृष्ण की प्रतिज्ञा कभी अधूरी नही रह सकती। उसकी सामर्थ्य मे शंका नही की जा सकती। उसने प्रतिज्ञा की है तो अवश्य ही मेरा मनोरथ पूर्ण होगा।

कृष्ण प्रतिज्ञा करके देवकी के पास से चले गये।

नवजात शिशु का जन्मोत्सव मनाये जाने के पश्चात् उसका नामकरण किया गया। शिशु गज के तालु के समान सुकुमार था अत. उसका नाम 'गजसुकुमार' रखा गया। गजसुकुमार कृष्ण वलदेव आदि के अन्त पुर का तथा साब, प्रद्युम्न आदि समस्त यादवो की आखो का तारा वन गया। वालक अपनी स्वाभाविक हसी से तथा अन्य वाल—चेष्टाओ से देवकी को अपूर्व आनन्द पहु चाने लगा और यादवकुल में चहलपहल मचाने लगा। गजसुकुमार मानों प्रसन्नता की मूर्ति था, जो औरों को भी प्रसन्नता प्रदान करता था। इस आनन्दोल्लास मे गजसुकुमार का शैशवकाल समाप्त हुआ। शैशव की समाप्ति हो जाने पर उसे समस्त कलाओ का शिक्षण दिया गया।

तदनन्तर जव वे कुमारावस्था से युवावस्था में प्रवेश करने लगे, तव उनके विवाह की तैयारी होने लगी।

इधर विवाह की तैयारी होने लगी, उधर द्वारिका नगरी के वाहर भगवान् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ मानो वे भी गजसुकुमार के लिए एक अलौकिक कन्या लाये हो। कृष्ण, वसुदेव आदि यादव गजसुकुमार का ऐसा विवाह करना चाहते थे, जैसा अव तक किसी भी यादव-कुमार का न हुआ हो। किन्तु गजसुकुमार का यह विवाह नही होना था उसका विवाह तो उस अलौकिक कन्या के साथ होना था, जिसे स्वय भगवान् अरिष्टनेमि लेकर पधारे हैं। जैसे अच्छे वर की वारात सभी अपने-अपने यहा वुलाना चाहते हैं, उसी प्रकार गजसुकुमार की वारात वुलाने के लिए भगवान् नेमि-नाथ भी एक कन्या लाये है—ऐसी ही कुछ उपमा यहां

बनती दिखाई देती है ।

द्वारिका नगरी के बाहर भगवान् का समवसरण है। उसमें भगवान् शान्त—दान्त भाव से विराजमान हैं । आस पास के वातावरण मे पवित्रता है । सर्वत्र सात्विकता का साम्राज्य है । सौम्य वायुमण्डल मे एक प्रकार का आल्हाद है—उत्साह है, फिर भी गम्भीरता है । अनेक भव्यजन आते हैं और भगवान् के मुख-चन्द्र से झरने वाले अमृत का पान करके कृतार्थ होते है ।

भगवान् अरिष्टनेमि के पधारने का वृतान्त जब श्रीकृष्णजी को मालूम हुआ तो उनकी प्रसन्नता का पारा-वार न रहा । भगवान् अरिष्टनेमि का आदर करने तथा उन्हे वन्दना करने के लिए, भक्ति के आवेश मे वे भगवान् के सम्मुख जाने को तैयार हुए । कृष्णजी जाने की तैयारी मे ही थे कि गजसुकुमार भी अचानक वहा पहुचे । गज-सुकुमार ने कृष्णजी को तैयार होते देखकर पूछा—'भैया, आज कहा जाने की तैयारी है ? ये बाजे क्यो बज रहे है ? सेना किसलिए सजाई जा रही है ?

हिरणगमेषी देव ने कृष्णजी को पहिले ही बता दिया था कि गजसुकुमार युवा अवस्था मे पैर धरते ही मुनि हो जाएगे । फिर भी उन्होने भगवान् के आगमन का वृतान्त गजसुकुमार से गुप्त रखना उचित न समझा । उन्होने यह नही सोचा कि कही भगवान् के दर्शन करके यह मुनि न बन जाय, इसलिए इसे भगवान् के आगमन का हाल बताना ठीक नही है ।श्रीकृष्णजी साधुत्व को उत्कृष्ट समझते थे । गीता से

वे सोचने लगे—'अब मुझे क्या करना चाहिये, जिससे मेरा छोटा भाई जन्मे और मेरी प्रतिज्ञा की पूर्ति हो। इस दुष्कर कार्य की सिद्धि के लिए दैवी सहायता की आवश्यकता है और देव तपस्या से प्रसन्न हो सकते है। इस प्रकार विचार कर कृष्ण ने ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए हरिणगमेषी देव का स्मरण करना और तेला की तपस्या करना निश्चित किया।

कृष्णजी पौषधशाला मे गये। अपने हाथ से पौषधशाला का प्रमार्जन करके घास का संस्तारक बिछाकर तेले की तपस्या अंगीकार करके बैठ गये।

कृष्णजी ने देव की आराधना की। देव आया। कृष्णजी ने उससे अपना प्रयोजन कहा। देव ने कहा—'आपके छोटा भाई अवश्य होगा, परन्तु वह युवावस्था मे पैर धरते ही मुनि-दीक्षा अंगीकार करके कल्याण-मार्ग का साधन करेगा।'

देव की बात सुन कर कृष्ण बहुत प्रसन्न हुए। वे मन ही मन सोचने लगे—'मनुष्य-जन्म की सार्थकता स्व-पर कल्याण मे है। स्व-पर का कल्याण निरपेक्ष साधु अवस्था धारण करने से ही होता है। विलासमय जीवन व्यतीत करके विलास की गोद मे ही मरना उस कीट के समान है जो अशुचि मे ही उत्पन्न होकर अन्त मे अशुचि मे ही मरता है। विलासितापूर्ण जीवन आत्मा के लिए अहितकर तो है ही, साथ मे संसार के समक्ष अवांछनीय आदर्श उपस्थित कर जाने से संसार के लिए भी अहितकर है। मेरे लिए

भी अहितकर है । मेरे लिए बडी प्रसन्नता की बात है कि मेरा लघु भ्राता संयमी बन कर जगत् मे एक स्पृहणीय आदर्श उपस्थित कर जाएगा और अपना कल्याण करेगा। वह अपने आपको प्रकाशित करेगा और संसार मे भी प्रकाश की किरणे बिखेर जायेगा ।

कृष्णजी घर लौट आये और माता देवकी से कहने लगे—माताजी, आप विषाद न कीजिए । मेरा छोटा भाई जन्म लेगा और ससार को मोहित करने वाला होगा ।

एक रात को देवकी ने स्वप्न मे सिह देखा । सिंह देख कर उसने गर्भ धारण किया और यथासमय पुत्र का प्रसव किया । नवजात पुत्र अत्यन्त सुकुमार था—ऐसा सुकुमार जैसे गज का तालु हो या जैसे इन्द्रगोप (बीरवधूटी नामक कीडा) सुर्ख कोमल और सुन्दर होता है, उसी प्रकार वह पुत्र भी अनुपम सुन्दर सुकुमार और सुर्ख रंग का था। जो यादव वश उस समय ससार में अद्वितीय था, जिसकी ऋद्धि अपार थी, उस वंश में उत्पन्न होने वाले महाभाग्यशाली पुत्र का जन्मोत्सव खूब खुले दिल से मनाया गया, मानो पहले के समस्त पुत्रो के जन्मोत्सव की कसर इसी समय पूरी की जा रही हो । वास्तव मे गजसुकुमार का जन्मोत्सव जिस आनन्द और उल्लास के साथ मनाया गया वैसा उत्सव यादव वश मे किसी भी कुमार का नही मनाया गया । जन्मोत्सव का वर्णन करने के लिए समय नही है, अतएव सक्षेप मे इतना ही कहना पर्याप्त है कि गजसुकुमार का जन्मोत्सव ससार के उत्सवो मे एक महत्त्वपूर्ण वस्तु थी ।

नवजात शिशु का जन्मोत्सव मनाये जाने के पश्चात् उसका नामकरण किया गया। शिशु गज के तालु के समान सुकुमार था अत. उसका नाम 'गजसुकुमार' रखा गया। गजसुकुमार कृष्ण वलदेव आदि के अन्त पुर का तथा साव, प्रद्युम्न आदि समस्त यादवो की आखो का तारा वन गया। वालक अपनी स्वाभाविक हसी से तथा अन्य वाल—चेष्टाओ से देवकी को अपूर्व आनन्द पहुचाने लगा और यादवकुल में चहलपहल मचाने लगा। गजसुकुमार मानो प्रसन्नता की मूर्ति था, जो औरो को भी प्रसन्नता प्रदान करता था। इस आनन्दोल्लास मे गजसुकुमार का शैशवकाल समाप्त हुआ। शैशव की समाप्ति हो जाने पर उसे समस्त कलाओ का शिक्षण दिया गया।

तदनन्तर जव वे कुमारावस्था से युवावस्था मे प्रवेश करने लगे, तव उनके विवाह की तैयारी होने लगी।

इधर विवाह की तैयारी होने लगी, उधर द्वारिका नगरी के वाहर भगवान् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ मानो वे भी गजसुकुमार के लिए एक अलौकिक कन्या लाये हो। कृष्ण, वसुदेव आदि यादव गजसुकुमार का ऐसा विवाह करना चाहते थे, जैसा अव तक किसी भी यादव-कुमार का न हुआ हो। किन्तु गजसुकुमार का यह विवाह नही होना था उसका विवाह तो उस अलौकिक कन्या के साथ होना था, जिसे स्वय भगवान् अरिष्टनेमि लेकर पधारे है। जैसे अच्छे वर की वारात सभी अपने-अपने यहां वुलाना चाहते हैं, उसी प्रकार गजसुकुमार की वारात वुलाने के लिए भगवान् नेमिनाथ भी एक कन्या लाये है—ऐसी ही कुछ उपमा यहां

वनती दिखाई देती है ।

द्वारिका नगरी के वाहर भगवान् का समवसरण है। उसमे भगवान् शान्त–दान्त भाव से विराजमान हैं। आस पास के वातावरण मे पवित्रता है। सर्वत्र सात्विकता का साम्राज्य है। सौम्य वायुमण्डल मे एक प्रकार का आल्हाद है—उत्साह है, फिर भी गम्भीरता है। अनेक भव्यजन आते हैं और भगवान् के मुख-चन्द्र से झरने वाले अमृत का पान करके कृतार्थ होते है।

भगवान् अरिष्टनेमि के पधारने का वृतान्त जब श्रीकृष्णजी को मालूम हुआ तो उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। भगवान् अरिष्टनेमि का आदर करने तथा उन्हे वन्दना करने के लिए, भक्ति के आवेश मे वे भगवान् के सम्मुख जाने को तैयार हुए। कृष्णजी जाने की तैयारी मे ही थे कि गजसुकुमार भी अचानक वहा पहुचे। गजसुकुमार ने कृष्णजी को तैयार होते देखकर पूछा—'भैया, आज कहा जाने की तैयारी है? ये बाजे क्यो बज रहे है? सेना किसलिए सजाई जा रही है?

हिरणगमेषी देव ने कृष्णजी को पहिले ही बता दिया था कि गजसुकुमार युवा अवस्था मे पैर धरते ही मुनि हो जाएगे। फिर भी उन्होने भगवान् के आगमन का वृतान्त गजसुकुमार से गुप्त रखना उचित न समझा। उन्होने यह नही सोचा कि कही भगवान् के दर्शन करके यह मुनि न बन जाय, इसलिए इसे भगवान् के आगमन का हाल बताना ठीक नही है। श्रीकृष्णजी साधुत्व को उत्कृष्ट समझते थे। गीता से

भी इसका समर्थन होता है। फिर तो जो जिस दृष्टि से किसी ग्रन्थ को देखता है, उसे उसमें वही दिखाई देने लगता है।

गजसुकुमार की बात का उत्तर न देते हुए कृष्ण ने कहा—भाई, नगरी के बाहर भगवान् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ है उन्ही की वन्दना और सेवा के लिए जाने की तैयारी है। आज द्वारिका का सौभाग्य जागा है तो उसका स्वागत करना ही चाहिए।

गजसुकुमार—'मैं समझता था, आप ही ससार मे सर्वश्रेष्ठ है। आप ही सबसे बड़े है, लेकिन आप भी उन्हे वन्दना करते हैं अगर वे भगवान् इतने महान् है तो मैं भी उन्हे वन्दना करने चलूंगा। आप आज्ञा दे तो मैं भी तैयार हो लू।

श्रीकृष्णजी ने कहा—अच्छी बात है, तुम भी चलो।

श्रीकृष्णजी और राजकुमारजी एक ही हाथी पर सवार हुए। दोनो पर चमर ढोरे जाने लगे और छत्र तान दिया गया। इस प्रकार राजोचित्त वैभव के साथ, श्रीकृष्णजी भगवान् के दर्शनार्थ नगरी के बीचो-बीच होकर रवाना हुए।

कृष्णजी गजसुकुमार की युवावस्था का विचार करके उसके विवाह सम्बन्धी मसूबे बाघ रहे थे। नगर के मध्य भाग में उनका हाथी अपनी गभीर गति से चला जा रहा था। इसी समय सोमिल नामक ब्राह्मण की, जिसकी पत्नी का नाम सोमश्री था, कन्या सोमा राजमार्ग पर क्रीडागण में गेंद खेल रही रही थी। सोमा क्या रूप मे, क्या गुण मे

और क्या उम्र मे—इतनी उपयुक्त और उत्कृष्ट कन्या थी कि कृष्णजी की नजर उस पर ठहर गई ।

जिस पर कृष्णजी की नजर ठहर जाय, उसकी सुन्दरता कितनी अधिक होगी ! बडा हीरा वह है, जिसे जौहरी बडा कहे । कोहिनूर हीरे के नाम का अर्थ है—प्रकाश का पहाड़ । यह नाम कोहिनूर ने अपने-आप नही रख लिया है किन्तु परीक्षको ने उसकी परीक्षा करके, गुण की उत्कृष्टता के कारण उसे यह नाम दिया है । श्रीकृष्णजी इस कन्या के सुयोग्य परीक्षक थे । उन्होने इसे सुयोग्य समझा और सोचा यह गजसुकुमार की सहधर्मिणी बनने योग्य है—सभी प्रकार से यह सम्बन्ध उपयुक्त होगा ।

कृष्ण ने अपने एक आदमी को बुलाया और सोमा की ओर सकेत करके कहा—'देखो, यह कन्या किसकी है ? जिसकी कन्या हो, उससे गजसुकुमार के लिए मेरी ओर से इसकी याचना करो । यदि इसके माता-पिता मेरी याचना स्वीकार करें और कन्या दे, तो इसे ले जाकर मेरे कुवारे अन्त पुर मे पहुचा देना ।

कृष्णजी का भेजा हुआ प्रतिनिधि सोमिल के पास पहुचा उसने कृष्णजी की याचना सोमिल के सम्मुख रख दी । सोमिल वहुत प्रसन्न हुआ । भला रत्न के कटोरे मे कौन भीख न देना चाहेगा ? गजसुकुमार जैसा वर और श्रीकृष्ण जैसा याचक मिले तो कौन अभागा ऐसा होगा जो अपनी कन्या देना स्वीकार न करे ! सोमिल ने प्रसन्नता के साथ अपनी कन्या दे दी । वह कृष्ण के आदेशानुसार कृष्ण के कुवारे अन्त.पुर मे भेज दी गई ।

इस ओर महाराज श्रीकृष्ण गजसुकुमार के साथ भगवान् अरिष्टनेमि के पास आये । जब भगवान् का समवसरण सन्निकट आया तो वे हाथी से नीचे उतर पड़े और गजसुकुमार को आगे करके भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुए । यथाविधि वन्दना करके श्रीकृष्णजी नीचे आसन पर बैठे । भगवान के मुखकमल से दिव्य वाणी प्रकट हुई । उसे श्रवण करके श्रीकृष्ण अपना जीवन धन्य और कृतार्थ मानने लगे । उनके आनन्द का ठिकाना न रहा ।

भगवान् का दिव्योपदेश जब समाप्त हो गया और सब श्रोता भगवान् को विनयपूर्वक वन्दना करके चल दिये, तब भी गजसुकुमार वहा बैठे रहे । कृष्णजी भी उठे और अन्यत्र चले गये । उन्होने भी गजसुकुमार से चलने को नही कहा ।

महापुरुष के पास किसी को ले जाना तो उचित है पर ले जाने के बाद उसकी इच्छा के विरुद्ध उठा कर ले आना उचित नही समझा जाता । इसी नियम का ख्याल करके श्रीकृष्णजी ने गजसुकुमार से उठ कर चलने के लिए नही कहा ।

उस समय गजसुकुमार किसी दूसरी दुनिया मे चक्कर लगा रहे थे । वे सोच रहे थे—'भैया श्रीकृष्णजी मेरा विवाह करना चाहते है लेकिन भगवान् नेमिनाथ ने अपना विवाह क्यो नही कराया ? जिस परम प्रयोजन की सिद्धि के लिए भगवान् ने विवाह करना अस्वीकार कर दिया, उसी के लिये मुझे भी विवाह का त्याग क्यो नही कर देना चाहिए ? भगवान् समुद्रविजयजी के पुत्र है और मैं वसुदेव का पुत्र हू

दोनो एक ही कुल मे उत्पन्न हुए हैं । विवाह मे कोई तत्त्व होता तो भगवान क्यों न करते ? भगवान का उपदेश उचित ही है कि यह शरीर विवाह करके भोगोपभोग भोगने के लिए नही है किन्तु ऐसा कल्याण करने के लिए है, जिसमें अकल्याण का अंश मात्र भी न हो और जिसके पश्चात् अकल्याण की भावना तक न हो ।

इस प्रकार मन ही मन सोचकर गजसुकुमार भगवान् के समक्ष खडे होकर कहने लगे—भगवन् ! मैं मात-पिता से आज्ञा लेकर आपसे दीक्षा ग्रहण करूंगा— आपके चरण-शरण मे आऊंगा ।'

भगवान् पूर्ण वीतराग थे । उनके अन्तर में किसी प्रकार स्पृहा शेष नही रही थी । अतएव शिष्य के रूप मे राजकुमार को पा लेने की उन्हे लेशमात्र भी उत्सुकता न थी । उन्होने उसी गम्भीर गिरा से कहा—'देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हे सुख हो, वही करो ।'

ससार मे कई व्यक्ति ऐसे होते है जो दीक्षा लेने वाले को घसीट कर, बलात्कार, से या प्रलोभनो से ससार में ही रखते है ! तो कई ऐसे व्यक्ति भी होते हैं, जो ससार से विमुख करके उत्कृष्ट अवस्था मे पहुंचा देते है ।

गजसुकुमार भगवान् के पास से विदा होकर देवकी के पास आये । महारानी देवकी ने गजसुकुमार को प्रेम-पूर्वक पुचकारते हुए कहा—'बेटा ! आज अब तक कहा रहे ?

गजसुकुमार—'माताजी, मैं भगवान् नेमिनाथ के दर्शन करने गया था ।'

देवकी—'अच्छा किया, जो भगवान् के दर्शन किये । आज तेरे नेत्र सार्थक हो गये ।

गज०—भगवान् का उपदेश सुनकर मुझे वडी प्रसन्नता हुई है । मुझ पर उपदेश का खूव प्रभाव हुआ है । भगवान् से मुझे अनुपम प्रेम हो गया है । मैने भगवान् को प्रणाम क्या किया, मानो अपना सर्वस्व उनके चरणों पर निछावर कर दिया है ।'

देवकी—वत्स ! तू भगवान् का भक्त निकला, अतएव मेरा तुझे जन्म देना, नहलाना-धुलाना और पालन करना सव सार्थक हुआ ।'

महारानी देवकी के इस उत्तर से गजसुकुमार समझ गये कि माता ने अव तक मेरा अभिप्राय नही समझा । तव स्पष्ट कहने के उद्देश्य से गजसुकुमार वोले—'माताजी मेरी इच्छा है कि अगर आप आज्ञा दे तो मैं भगवान् से मुनि-दीक्षा ग्रहण कर ससार का त्याग कर आत्मा का शाश्वत श्रेय साधन करू ।

देवकी, गजसुकुमार का कथन सुनकर गम्भीर विचार मे डूव गई । उन्होने सोचा—'गजसुकुमार ने भगवान् से दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया है तो निश्चय का वदलना सरल नही है । अव यह दीक्षा रुक न सकेगी ।' इस प्रकार विचार करने और पुत्रवियोग की कल्पना से देवकी को

मूर्च्छा आ गई । तदनन्तर जब देवकी होश मे आई तो कहने लगी—'वत्स ! तू मेरा इकलौता पुत्र है । यो तो मैंने तुझ सहित आठ पुत्रो को जन्म दिया है, परन्तु तुझ अकेले को ही पुत्र रूप से लालन-पालन करने का अवसर मुझे मिल सका है । इस दृष्टि से तू ही मेरा एकमात्र पुत्र है । तू ही मेरा प्राणाधार है । मेरे जीवन का तू ही सहारा है मैं यह कैसे सहन कर सकती हूं कि तू चढती जवानी मे साधु बन कर ससार के सुखो से सर्वथा विमुख हो जाय ? बेटा ! जब हम यह पर्याय त्याग कर परलोक की ओर प्रयाण करे तब तू भले ही दीक्षा अंगीकार कर लेना । तब तक तू भुक्तभोगी भी हो जायेगा । मैं इस समय दीक्षित होने की आज्ञा नही दे सकती ।'

गजसुकुमार—'माता ! आपका कथन सत्य है । आपके असाधारण एव लोकोत्तर वात्सल्य का पात्र होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है मगर मेरी एक बात सुन लीजिए । आप वीर माता है, आप कायरो की माता नही है । मैं पूछता हूं—हमारे राज्य पर कोई शत्रु आक्रमण करदे और प्रजा को लूटकर उसकी सुखशान्ति का सहार करने लगे तो उस समय आपका कर्त्तव्य क्या होगा ? उस समय मैं आपकी सम्मति लेने आऊ तो आप क्या सम्मति देगी ? आप कहेगी कि ना बेटा, शत्रु के सामने मत जाना । आप यह आदेश दे सकेगी कि—तू मुझे अत्यन्त इष्ट, प्रिय, कांत है । तू बाहर मत निकलना । राज्य उजडता है तो उजडे तू घर ही मे छिपा रह ! मैं जानता हू आप ऐसा कदापि नही कह सकती । उस समय आपका आदेश यही होगा कि जाओ बेटा ! शत्रु का संहार करो, वीरतापूर्वक राज्य की

रक्षा करो । तुमने मेरे स्तनो का दूध पिया है, उस दूध को लजाना मत । आप यही कहेंगी या चढती जवानी देखकर मुझे अपने अन्त:पुर मे छिपा रखेंगी ? आपका धर्म उस समय क्या होगा ?'

देवकी—वत्स ! तुमने जो प्रश्न किया है उसके उत्तर में तो यही कहना होगा कि ऐसा अवसर उपस्थित हो जाय तो मैं तुम्हे कर्त्तव्य के पालन के लिए, देश का सकट टालने के लिए शूरवीर योद्धा की भाति शत्रु के सम्मुख जाने की और डटकर युद्ध करने की आज्ञा दू गी । ऐसे अवसर पर वीर-प्रसविनी माता कभी कायरता का उपदेश नही दे सकती और न अपने वालक को कायर होने दे सकती है । पर यहा कौनसा शत्रु आ गया है, जिससे युद्ध करने की समस्या उठे ?'

गजसुकुमार—वीर माता का यही धर्म हैं । मैं आपसे इसी उत्तर की आशा रखता था । माताजी, मेरे सम्मुख शत्रु उपस्थित है । वह मुझे पकडने और परास्त करने के लिए सतत प्रयत्न कर रहा हैं । वह चर्म-चक्षु से दिखाई नही देता, परन्तु भगवान् अरिष्टनेमि के वचनो से उसका प्रत्यक्ष हुआ है । अनन्त जन्म-मरण के चक्कर मे डालने वाला वह काल-शत्रु है । वह मुझे पकड़ने के लिए मृत्युरूपी पाश लेकर घूम रहा है ।

मित्रो ! क्या आपसे वडे, आपकी सदृश वय वाले और आपसे छोटी उम्र के लोगो का प्रतिदिन मरण नही हो रहा है ?

'अवश्य-हमेशा मरण होता रहता है।'

गजसुकुमार कहते है—'माताजी, उसके आने का कुछ भरोसा नहीं है न जाने वह कब आ धमकेगा और जीवन को निश्शेष कर जायगा। अगर मैं इसी भांति प्रमत्त दशा मे रहूंगा तो वह किसी भी क्षण आकर मुझे ले जायगा। अतएव मैं ऐसा उपाय करना चाहता हू कि उस शत्रु से खुलकर युद्ध कर सकू और अन्त मे मेरी विजय हो। माता अब तू ही बता, मुझे क्या करना चाहिए ? तेरा निर्णय ही मेरा सकल्प होगा। तेरी आज्ञा के बिना मैं एक डग भी इधर-उधर न करूगा।

देवकी वीर माता थी। क्षणिक मोह के पश्चात उसका विवेक जागृत हो गया। उसने कहा—'वत्स ! तू धन्य है। तूने यदि दृढ सकल्प कर लिया है तो उसमें बाधा डालना उचित नही है। लेकिन मैं यह चाहती हू कि कम से कम एक दिन के लिए भी तुझे राजा के रूप मे देख लेती। बेटा, माता की ममता को माता ही समझ सकती हैं।

देवकी की बात सुनकर गजसुकुमार ने हां तो नहीं भरी पर मौन रह गये। उनके मौन को अर्ध-स्वीकृति का लक्षण समझ कर श्रीकृष्णजी ने गजसुकुमार को द्वारिका का राजा बना दिया।

एक दिन के लिए ही सही, पर राजा बना देने के के अनेक कारण थे। प्रथम तो यह कि कोई यह न सोचे कि गजसुकुमार को राजा बनने की हवस थी, वह पूरी न

हो सकी तो साधु वन गये। दूसरा कारण यह कि इससे उनके वैराग्य की परीक्षा हो गई। कच्चा वैराग्य होता तो राज्य पाते ही कपूर की भाति उड जाता। तीसरा कारण यह है कि ऐसा करने से श्रीकृष्ण का वन्धुवात्सल्य प्रकट हो गया। उनके लिए भाई वड़ा है, राज्य नही। इस प्रकार अनेक कारणो से गजमुकुमार को द्वारिकाधीश पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया।

जिस राज्य-वैभव के लिए भूतल पर अनेकानेक विकराल युद्ध हो चुके और होते रहते हैं, जिसकी प्राप्ति के लिए लोग रक्त की सरिताए वहाते हैं, राज्य-श्री को अपनाने के लिए भाई अपने भाई का गला काटते नही झिझकता उसी विशाल राज्यश्री को तृरग की तरह त्याग देना हसी-खेल नही है। श्रीकृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक राज्य का त्याग करके गजमुकुमार के वैराग्य की परीक्षा ही नही की हैं, वरन् उन्होने अपनी उदारता, अपने भ्रातृस्नेह और अपने कौशल की परीक्षा भी दी है और उसमे वे सफलता के साथ उत्तीर्ण हुए हैं।

गजमुकुमार को राजसिंहासन पर आरूढ करके श्रीकृष्णजी ने कहा—'भाई! अव और क्या इच्छा है, सो स्पष्ट कहो। तत्काल उसकी पूर्ति की जायेगी।

गजसुकुमार वोले—'मुझे और किसी वस्तु की आवश्यकता नही है। सिर्फ ओघा, पात्र मगवा दीजिए और मुण्डन के लिए नाई वुलवा दीजिए।'

गजसुकुमार की वात सुनकर श्रीकृष्ण और देवकी ने भली भांति समझ लिया कि अव इनके हृदय मे से ममता

चली गई है । और समता आ गयी है । राज्य का प्रलोभन कारगार नही हो सकता इस स्थिति मे वही करना उपयुक्त है, जिससे इनका कल्याण हो, इन्हे शान्ति लाभ हो ।

श्रीकृष्ण ने गजसुकुमार की दीक्षा की तैयारी आरम्भ की । जिनके लौकिक विवाह की तैयारी थी, उनके लोकोत्तर विवाह की तैयारी होने लगी ।

गजसुकुमार की दीक्षा का उत्सव मनाया जाने लगा सब चकित होकर घटनाक्रम को देखने लगे ।

राजकुमार जी का वरघोडा द्वारिकानगरी में चला । द्वारिका की प्रजा उनके दर्शन के लिये उलट पडी और सब ने एक स्वर से कहा—धन्य है ! गजसुकुमारजी, जो ऐसी महान् ऋद्धि का त्याग कर मुनिधर्म मे दीक्षित हो रहे है । इनका जीवन सार्थक है—कृतार्थ है !

आखिर गजसुकुमार सबके साथ भगवान् श्री अरिष्टनेमि की सेवा मे उपस्थित हुए । गजसुकुमार को आगे करके वसुदेव और देवकी भगवान् नेमिनाथ के पास गये । देवकी की आखे आंसू टपका रही थी । उसने भगवान् से विनम्र स्वर से कहा—जवानी पूरी नही आई है । हमने न मालूम क्या-क्या आशाएं इससे बांध रखी थी । न जाने कितने मनोरथ इसके सहारे लटक रहे थे । वे सब आज भग हो गये हैं । आपकी दिव्यवाणी के प्रभाव से प्रभावित होकर आज यह मुनिधर्म मे दीक्षित होना चाहता है । अतएव हम आपको पुत्र की भिक्षा देते हैं । आप कृपापूर्वक इसे स्वीकार कीजिए ।

भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना करके देवकी ने गजसुकुमार से कहा—वत्स, यत्न और उद्योग करते रहना। जिस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए उद्यत हुए हो, उसमें आलस्य न करना। यद्यपि तेरे विरह को सहन करना अत्यन्त कठिन है, फिर भी तू जिस परम मगलमय धर्म की आराधना करने के लिये उद्योगशील हो रहा है, उसमे विघ्न डालना भी उचित नही है। अब हम तुझे दीक्षित होने की आज्ञा देते है। मगर साथ ही यह भी कहती हूँ कि ऐसा पुरुषार्थ करना जिससे हमे छोडकर दूसरे माता-पिता न बनाने पड़े। ऐसा मत करना कि कोई दूसरी जननी तुम्हे गर्भ में धारण करे अर्थात् पुनर्जन्म का अवसर न आने देना। इसी भव मे अनन्त अक्षय और अव्याबाध सुखस्वरूप मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा करना।'

देवकी की शिक्षा के उत्तर मे गजसुकुमार ने कहा—'आप का आशीर्वाद मुझे फले। मैं वही प्रयत्न करूंगा, जैसा आपका आदेश है।'

तत्पश्चात् गजसुकुमारजी ने भगवान् से मुनिधर्म की दीक्षा ग्रहण की। सब यादव द्वारिकानगरी को लौट गये।

नवदीक्षित गजसुकुमार को एकान्त मे बैठे-बैठे विचार आया—'क्या मैं इस शरीर मे ही बना रहूंगा? अगर यह शरीर नष्ट होगा ही नही तो क्या मुझे पुनर्जन्म लेकर नया शरीर धारण करना पड़ेगा? मैं वीर यदुवश मे पैदा हुआ हूं। मुझे ऐसा कर्त्तव्य करना चाहिये कि शीघ्र ही मेरा प्रयोजन पूर्ण हो जाय। मुझे जन्म-मरण के चक्र से छूट इसी भव में मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिए।

इस प्रकार विचार कर गजसुकुमार मुनि ने भगवान् के समीप जाकर प्रार्थना की—

हे प्रभो ! मुझे उपाय बतलाइए जिससे जल्दी ही आत्मा का कल्याण हो । अब मुझे एक क्षणभर इस शरीर मे रहना नही सुहाता ।'

गजसुकुमार मुनि की प्रार्थना के उत्तर मे भगवान् अरिष्टनेमि ने भिक्षु की बारहवी प्रतिमा को तत्काल मुक्ति लाभ का उपाय बतला दिया ।

गजसुकुमार मुनि बोले भगवन् ! आप अत्यन्त दयालु है । मैं भिक्षु की इस प्रतिमा की आराधना करना चाहता हू । कृपा कर मुझे आज्ञा दीजिए ।'

'दया होगी !

इसी प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि को गजसुकुमार मुनि के पूर्वभव, भविष्य आदि सभी कुछ का परिपूर्ण ज्ञान था । उन्हे विदित था कि इस मुनि की कितनी आयु शेष है, इसका भविष्य क्या है और उसका फल क्या होगा ? इसी कारण भगवान् ने गजसुकुमार मुनि को श्मशान मे जाकर बारहवी प्रतिमा की आराधना की आज्ञा दे दी । यह भगवान् की निर्दयता नही किन्तु पूर्ण दया ही थी ।

भगवान् की आज्ञा मिलते ही मुनिवर गजसुकुमार श्मशान की ओर चल पड़े । वहा पहुच कर उन्होने अपनी नासिका पर दृष्टि स्थिर की और निश्चय होकर खड़े रहे ।

यद्यपि विशिष्टज्ञानी भगवान् को यह विदित था कि मुनिराज गजसुकुमार पर सोमिल द्वारा उपसर्ग किया जाएगा फिर भी उन्होने उन्हे अकेले भेज दिया । उनके साथ किसी दूसरे मुनि को नही भेजा । इसका एक मात्र कारण यही था कि भगवान् जानते थे कि वह मुनि आज ही मुक्ति प्राप्त करने वाले है ।

सध्या का समय था । सोमिल ब्राह्मण होम के निमित्त लकडी लेने जगल गया था । उसे विदित है कि कन्या सोमा कृष्णजी के कुंवारे अन्त पुर मे पहुंच गई है और उसका गजसुकुमार शीघ्र ही पाणिग्रहण करेंगे । सयोग-वश सोमिल उसी श्मशान मे पहुचा, जहां मुनिराज गज–सुकुमार ध्यानारूढ खड़े थे । गजसुकुमार मुनि को साधु के वेश मे ध्यानावस्थित देख सोमिल के आश्चर्य का पार न रहा । वह सोचने लगा—मैं यह क्या देख रहा हू ! कुमार गजसुकुमार और श्मशान भूमि मे, साधु का वेश धारण किये हुए ! यह कुमार क्या विशाल राज्य त्याग कर साधु वन गया है ? इसकी मूढता का क्या ठिकाना । धिक्कार है इस अप्रार्थ्य–प्रार्थी को, धिक्कार है इस पुण्यहीन को ! इसने मुझे चौपट कर दिया । मेरी कन्या का घोर अपमान किया ! इसे इस अपमान का वदला चखाऊंगा । आज ही इसे परलोक मे न पहुचाया तो मेरा नाम सोमिल नही ।

मित्रो ! कर्म की गति को सावधान होकर देखो । सोमिल के अन्त.करण मे यह प्रेरणा कहां से उत्पन्न हुई ? सोमिल क्यो इस प्रकार के उद्गार निकल रहा है ? उसके

इतने उग्रकोप और भीषण संकल्प का वास्तविक कारण क्या है ?

वास्तव में सोमिल जो कुछ विचार रहा है, उसके मुख से जो उद्गार निकल रहे है, वे सब गजसुकुमार के कल्याण के लिये ही है। वह गजसुकुमार की भलाई का निमित्त बन रहा है। ज्ञानीजन जो वस्तु के वास्तविक स्वरूप के ज्ञाता है, ऐसे व्यक्ति पर क्रोध नही करते। कर्म की प्रबलता का विचार करके साम्यभाव के अवलम्बन से अपने अन्त.करण को स्थिर रखते है।

अगर कोई धोबी स्वय परिश्रम करके, अपनी गाठ का साबुन लगा कर आपसे बदले मे कुछ भी न लेकर आपके वस्त्र स्वच्छ करदे तो आप उस पर प्रसन्न, होगे या क्रोध करेगे ?

'प्रसन्न होगे।'

सोमिल ब्राह्मण, गजसुकुमार मुनिराज का आपकी दृष्टि मे भले ही अनिष्ट कर रहा हो, भगवान् नेमिनाथ की दृष्टि मे उनका मैल धो रहा है। ऐसी अवस्था मे गजसुकुमार मुनि भगवान् नेमिनाथ उस पर क्रोध क्यो करेगे ? वह तो इष्टसिद्धि मे निमित्त बन रहा है।

सोमिल का क्रोध नही दबा। वह प्रचण्ड रूप धारण करता गया। उसने पास के सरोवर से गीली मिट्टी निकाली और गजसुकुमार के माथे पर पाल बांध डाली। इसके बाद श्मशान भूमि से लाल-लाल जलते हुए अगार लाकर मुनि के मस्तक पर रख दिये।

मित्रो ! मुह से कथा कह देना सरल है, पर विचार कीजिये उस समय गजसुकुमार को कैसा अनुभव हुआ होगा ? उनके कोमल मस्तक की क्या दशा हुई होगी ? किन्तु धन्य है मुनिवर गजसुकुमार, जिन्होने उफ तक न किया। यही नही, वे विचारने लगे—'धन्य है भगवान् नेमिनाथ, जिन्होने अनुपम दया करके मुझे आत्महित की साधना का यह सुअवसर दिया।' इस प्रकार विचार कर उन्होने अपने साम्य-भाव रूपी दिव्य जल से जलते हुए अगारो को भी शीतल बना लिया।

यहां यह कहा जा सकता है कि सत्य के प्रभाव से अग्नि शीतल हो जाती है, शस्त्र भौथरे बन जाते है और विष का अमृत के रूप मे परिणमन हो जाता है। यह सत्य गजसुकुमार मुनि के विषय मे चरितार्थ क्यो नही हुआ ? इसका समाधान यह है कि सत्य सदा सत्य ही रहता है। वह कभी असत्य नही बन सकता। अगर गजसुकुमार चाहते तो अग्नि क्षण भर मे शीतल बन जाती मगर उनकी भावना क्या थी, इसका विचार करो। गजसुकुमार मुनि अगर जीवित रहना चाहते तो अग्नि की क्या मजाल थी कि उन्हे जला सके। तप के प्रभाव से अभिभूत होकर यह पानी-पानी बन जाती। किन्तु मुनिवर गजसुकुमार ऐसा नही चाहते थे। उनकी इच्छा शीघ्र से शीघ्र मोक्ष जाने की थी। वे अपावन शरीर मे कैद नही रहना चाहते थे और इसी उद्देश्य से भगवान् की आज्ञा लेकर वहां आये थे।

जिनका मस्तक जल रहा हे तो यह कहते नहीं कि दुनिया से धर्म उठ गया—मेरी कोई सहायता करने नही

आया, अन्यथा क्यो मेरा मस्तक जलता । फिर भी दूसरे लोग बीच मे ही कूद पडते है और कहने लगते हैं—धर्म में कुछ भी सामर्थ्य नही है । यह तो वैसी ही बात है कि राम ने सीता को अग्नि मे प्रवेश करने की आज्ञा दी, द्रौपदी को पाण्डवों ने जुए मे हारा और दमयन्ती को राजा नल ने जगल मे छोड दिया, फिर भी सीता, द्रौपदी और दमयन्ती ने अपने पति के कार्य को श्रेष्ठ समझा और दूसरे लोगों ने उनके कार्य की भरपेट बुराई की ।

गजसुकुमार मुनि की घटना सुनकर हम आश्चर्य करने लगते हैं । हम सोचते है—इतनी भीषण वेदना कोई कैसे सहन कर सकता है । माथे पर अगारा रखे हों और मुनि तपस्या मे लीन हो, यह कैसी भयकर कल्पना है। परन्तु हमारी यह असभावना, निर्बलता को प्रकट करती है । हमने शरीर और आत्मा के प्रति अभेद की भावना स्थिर कर ली है । हमारे अन्त:करण मे देहाध्यास प्रबल रूप में विद्यमान है । हम शरीर को ही आत्मा मान बैठे है । अतएव शरीर की वेदना को आत्मा की वेदना मान कर विकल हो जाते हैं । परन्तु जिन्होने परमहस की वृत्ति स्वीकार करके, स्व–पर भेदविज्ञान का आश्रय लेकर, अपनी आत्मा को शरीर से सर्वथा पृथक कर लिया है—जो शरीर को भिन्न और आत्मा को भिन्न अनुभव करने लगते है, उन्हे इस प्रकार की शारीरिक वेदना तनिक भी विचलित नही कर सकती । वे सोचते हैं—शरीर के भस्म हो जाने पर भी मेरा क्या विगडता है ? मैं चिदानन्दमय हू, मुझे अग्नि का स्पर्श भी नही हो सकता ।

गजसुकुमार मुनि ने शुक्लध्यान की भावना जगाई और उससे उनमे केवल ज्ञानादि लब्धिया प्रकट हो गई। इस प्रकार शुक्लध्यान मे अवस्थित होकर, शैलेशी अवस्था प्राप्त करके पाच लघु अक्षरो (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के उच्चारण मे जितना समय लगता है, उतने समय की आयु भोग कर, सिद्धि को प्राप्त हुए। देवो ने आकर उनका अन्तिम सस्कार किया और अपने मस्तक पर उनकी चरण रज लगा कर कृतार्थता का अनुभव किया।

मित्रों ! मैं आपसे पूछता हूं कि आप किसके पुजारी है ?

'सयम के !'

'संयम, तप, क्षमा आदि सद्गुण धारण करने वालों के तथा जिन्होने ऐसे विकटतर प्रसग उपस्थित होने पर भी अपना तप भग न होने दिया, ऐसे महापुरुषो के आप पुजारी हैं। इनके पुजारी होकर के भी यदि आपका यह विचार हो कि धर्म मागलिक कहलाता है पर सचमुच ही यदि धर्म मगलमय होता तो गजसुकुमार मुनि का घात क्यो होता तो समझना चाहिये कि अभी आपके विश्वास मे कमी हैं। अब तक आपके अन्तःकरण मे परिपूर्ण और जागृत श्रद्धा का आविर्भाव नही हुआ है। वास्तव मे घात वह है, जिसके पश्चात् पुनर्जन्म धारण करना पड़े और पुनः पुनः जन्म-मरण का शिकार होना पडे। गजसुकुमार के माथे की आग ठण्डी हो जाती तो आज उनके नाम से न हम सबका मस्तक झुकता और न इतनी जल्दी उन्हे सिद्धि-लाभ ही होता।

३ : त्याग की शक्ति

भगवान् के जेष्ठ पुत्र भरत ने जब अपने भाइयो से अपनी अधीनता स्वीकार करने को कहा, तब उन्होने उत्तर दिया—पिताजी ने हमे आपका भाई बनाया है, दास नही बनाया । हम लोग आपके भाई बन कर रह सकते हैं, हम दास बन कर नही रह सकते ।

भरत चौदह रत्नो के स्वामी थे उन्हे अपने रत्नों का गर्व हुआ । वे कहने लगे—मैं चक्रवर्ती हू । षटखण्ड भरत क्षेत्र का अद्वितीय अधिपति हू । सम्पूर्ण भरत क्षेत्र में ऐसी कोई भी सत्ता कायम नही रह सकती, जो मेरी अधीनता स्वीकार न करे । जो मेरी आन (आज्ञा) न मानेगा, उसे कुचल दू गा ।

भरत ने अपने भाइयो के पास सदेश भेज दिया—या तो मेरी अधीनता स्वीकार करो या युद्ध करने के लिए उद्यत हो जाओ । यह सदेश जब मिला तो ६८ भाइयो ने मिल कर परामर्श किया—इस स्थिति मे हमे क्या करना चाहिये ? अन्त मे उन्होने निश्चय किया—'अगर हम लोग रहेगे तो स्वतन्त्र होकर ही रहेगे, अन्यथा युद्ध करके अपनी बलि चढ़ा देंगे । हम भगवान् ऋषभदेव के पुत्र गुलाम

होकर जीवित नही रह सकते । हम गुलामी स्वीकार करके भगवान् के उज्ज्वल यश मे कालिमा नही लगने देंगे । गुलामी अन्ततः गुलामी ही है, भले ही वह सगे भाई की ही क्यों न हो । पिताजी ने हमें स्वतन्त्र किया है, अतएव स्वतन्त्र ही रहेंगे । परन्तु हमको तथा भरतजी को पिताजी ने राज्य दिया है, अतएव युद्ध करने से पहले, इस विषय में पिताजी से सम्मति लेना आवश्यक है, पिताजी का निर्णय हमारा अन्तिम निर्णय होगा । अगर उन्होने युद्ध करने की सम्मति दी तो हम लोग अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर युद्ध मे जूझ पडेंगे और उनके अनुग्रह से इन्द्र भी पराजित नही कर सकेगा । कदाचित् उन्होंने भरतजी के अधीन होने की सलाह दी तो फिर सम्पूर्ण भाव से भरतजी की अधीनता स्वीकार कर लेनी होगी । पिताजी के निर्णय को हम लोग विना किसी संकोच के विना ननु नच किये अंगीकार करेंगे ।'

अट्ठानवे भाई इस प्रकार निर्णय करके पिता के पास गये । विशिष्ट ज्ञानी भगवान् पहले से ही सब बातें जानते थे । जैसे ही ये लोग उनके पास पहुचे, भगवान् ने कहा—तुम भरत द्वारा सताये गये हो । वास्तव मे मैंने तुम्हे स्वतन्त्र ही किया है और स्वतन्त्र रहना ही क्षत्रिय का धर्म है मगर सर्वश्रेष्ठ स्वतन्त्रता दूसरी ही वस्तु है । चौदह रत्न और नौ निधिया प्राप्त कर लेने पर भी भरत को सन्तोष नही हुआ है, यह देख कर भी क्या तुम्हारी आंखे नही खुली ? ससार के समस्त पदार्थों की प्राप्ति कदाचित किसी को हो जाय तब भी सन्तोष के विना शान्ति नही मिलती । इससे विपरीत सन्तोषवृत्ति जिसके अन्तःकरण मे व्याप्त हो जाती है, वह अकिंचन होने पर भी सुख का

उपभोग करता है। असन्तोष वह लपलपाती हुई ज्वाला है जिसमे घृत की आहुति देने से निरन्तर वृद्धि ही होती जाती है। अतएव तुम लोग स्थिरचित्त होकर विचार करो।

अपने भाई भरत पर क्रुद्ध होना वृथा है। उस पर दया करके उसे सुधारो। भरत को राज्य के टुकड़े पर अभिमान आ गया है। उसने तुम्हे सताया है, यह अपराध उसका नहीं, वरन् उसमे अहकार उत्पन्न कर देने वाले राज्य का है। यह राज्य ऐसे-ऐसे अनेक अपराधो और अवगुणो को उत्पन्न करता है। अगर तुम्हे इन अपराधो और अव-गुणो से घृणा है तो तुम स्वयं राज्य की लालसा मत करो तुम राज्य को तुच्छ समझो और मेरी शरण मे आओ मेरी-शरण मे आ जाने पर न तो तुम्हे भरत की अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी और न युद्ध ही करना पड़ेगा। इतना ही नहीं तुम, सब प्रकार की परतन्त्रता से मुक्त हो जाओगे। सच्ची स्वाधीनता का यही एक मात्र राजमार्ग है। निस्पृह एवं निरपेक्ष भाव मे ही स्वाधीनता है। जहा पर पदार्थो के साथ सम्बन्ध है, वहा पराधीनता अनिवार्य है। पराधीनता की वेड़ियो को काटने का उपाय है, आत्म-निर्भर बनना। तुम पर-पदार्थों के अधीन रहो—ससार की वस्तुओ को अपने सुख का साधन समझो और फिर पराधीनता से भी वचना चाहो, यह सम्भव नही है। पूर्ण स्वाधीनता पूर्ण स्वावलम्बन से ही आती है। अतएव अपनी मिथ्या धार-णाओ को छोडो और मैं जिस पथ का आचरण द्वारा प्रद-र्शन कर रहा हूं, उस पर चलो।

भगवान् का उपदेश सुन कर ६८ भाई मुनि बन गये। भरत को जब अपने भाइयो के मुनि बन जाने का संवाद मिला तो वह मूर्छित होकर सिहासन से गिर पडा। आंखो से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वह भागा हुआ पिता के पास आया। जव उसने अपने भाइयो को मुनि के वेश मे देखा तो वह काप उठा। उसके सताप और पश्चात्ताप का पार न रहा। उसने कहा—भाइयो, मैं अपराधी हू। मैंने तुम्हारे ऊपर अत्याचार किया है। तुमने मेरे अत्याचार को विचित्र तरीके से सहन किया है। साम्राज्य की सुरा के मद मे मत्त होकर मैंने तुम्हे घोर कष्ट पहुंचाया है। मैं इन चक्र आदि के चक्कर मे फस गया। चौदह रत्नो ने अपने ६८ भाइयो को भुला दिया। मुझे क्षमा का दान दो भाइयो, चक्रवर्ती भरत आज तुम्हारे समक्ष क्षमा का भिखारी बना है।

इस प्रकार भरत का अभिमान चूर-चूर हो गया। उसका गर्व गल गया। भरत के भाइयो ने भरत का गर्व किस प्रकार चकनाचूर कर दिया? इस प्रश्न का एक ही उत्तर है—त्याग से। त्याग मे अनन्त बल है, अमित सामर्थ्य है। जहां ससार के समस्त बल बेकार बन जाते है, अस्त्र-शस्त्र निकम्मे हो जाते हैं, वहां भी त्याग का बल अपनी अद्भुत और अमोघ शक्ति से कारगर होता है।

इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव ने अपने ६८ पुत्रो को जैनेन्द्री दीक्षा से दीक्षित किया। वाद मे वाहुबली और भरत ने भी सयम धारण किया।

❀

४ : विश्वास-बल

भगवती सूत्र में वर्णनाग नतुआ का उदाहरण है। वर्णनाग नतुआ श्रावक था और बेला-बेला पारणा करता था—दो दिन उपवास रख कर एक दिन भोजन करता था। कौणिक और चेड़ा का जो भयानक संग्राम हुआ था, उसमे वर्णनाग नतुआ भी चेड़ा राजा का एक रथी था। यद्यपि वह तपस्वी श्रावक दुनियादारी से दूर-सा रहता हुआ अपना जीवन व्यतीत करता था, फिर भी इतना स्वामी-भक्त था कि चेडा की ओर से युद्ध का निमन्त्रण पहुचने पर उसने 'नही' नही की। उसके मुख से यह नही निकला कि—मैं संसार से अलग-सा रहता हूं, मैं युद्ध मे न जाऊंगा। मुझे युद्ध से क्या प्रयोजन है ?' उसने सोचा—'शान्ति के समय चाहे किसी काम के लिये मनाई कर दू किन्तु लडाई के समय मनाई करना कायरता है। लोग श्रावक को कही कायर न समझ लें।

वर्णनाग नतुआ सदा बेला-बेला पारणा करता था, पर युद्धभूमि मे जाते समय उतने तेला किया। वह रथ में बैठ कर युद्ध के लिये चल दिया। उसने यह प्रण अवश्य कर लिया कि युद्ध मे मैं उसी को मारूंगा जो मुझे मारेगा। जो मुझे न मारेगा, उसे मैं भी नही मारूंगा।

युद्ध मे कोणिक के सैनिक ने वर्णनाग नतुआ को वाण मारा । आघात के वदले प्रतिघात तो इसने भी किया मगर वह बुरी तरह घायल हो गया । वर्णनाग नतुआ ने सोचा—'वस, अव मेरा काम पूर्ण हुआ । अव मेरी गणना कायरो मे नही होगी और न मेरे कारण कोई श्रावको को वदनाम कर सकेगा ।'

यह सोचकर वर्णनाग नतुआ अपना रथ लेकर जंगल मे चला गया ।

इसका वाल-मित्र भी इस युद्ध मे सम्मिलित हुआ था । वह भी घायल हो गया था । उसने देखा, मेरा मित्र वाण से घायल होकर जंगल की ओर जा रहा है । वस वह भी अपना रथ लेकर उसके पीछे-पीछे जंगल की तरफ चल दिया ।

वर्णनाग नतुआ में मित्र से वात करने की शक्ति भी नही रह गई थी । उसके मित्र ने परमात्मा की शरण में आत्मा को लेकर ज्यों ही वाण खीचा, त्यो ही प्राण-पखेरू उड गये ।

वर्णनाग नतुआ ने सोचा—'मेरे मित्र ने जिस विधि से प्राण त्यागे है, वह विधि मैं नही जानता । लेकिन मेरा मित्र सच्चा धर्मात्मा और ईश्वर का भक्त है । वह झूठी विधि हर्गिज काम मे नही ला सकता । इस प्रकार विचार कर सरल भाव से उसने सकल्प किया—'मेरे मित्र के सव नियम-धर्म मुझे भी हो ।' इस प्रकार अज्ञात अपरिचित नियम-

धर्म का आश्रय लेकर उसने भी अपने शरीर से बाण खीचा और वह भी मर गया ।

शास्त्र मे प्रश्न किया गया है कि इन दोनो मित्रो को कौन-कौन सी गति मिली ? एक ने विधिपूर्वक नियम धर्म का अनुष्ठान किया था और दूसरे ने बिना किसी विधि के ही । तव इन दोनों की गति मे क्या अन्तर पड़ा ? शास्त्र मे इस प्रश्न का समाधान यह है कि वर्णनाग नतुआ प्रथम स्वर्ग मे गया है और उसका मित्र महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर मुक्त होगा ।

भावना और विश्वास की प्रचण्ड शक्ति प्रदर्शित करने के लिए यह उदाहरण पर्याप्त है । वास्तव मे सत्य पर सम्पूर्ण श्रद्धा होने और असत्य को आग्रहपूर्वक त्यागने मे ही एकान्त कल्याण है । सब महापुरुषो के जीवन के अन्तस्तत्त्व मे यही तथ्य समाया हुआ है ।

५ : अर्जुन का तपोबल

मित्रो ! जो मूर्ख अमूल्य इत्र गधे को लगा देगा, वह बादशाह की इज्जत कैसे करेगा ? जो मनुष्य अपने अनमोल वीर्य रूपी इत्र को नीचे वेश्याओ को सौंप देगा, वह ससार की पूजा—सेवा—किससे करेगा ? याद रखो,

वीर्य में वडी भारी शक्ति है । इस शक्ति के प्रभाव से इन्द्र आदि वड़े-बड़े देवता भी पीपल के पत्ते की भाति थर-थर कापने लगते हैं ।

महाभारत के एक स्थल पर वर्णन है कि अर्जुन ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ तप कर रहा था । उसकी उग्र तपस्या देख कर इन्द्र को भय हुआ कि कही अर्जुन मेरा राज्य न छीन ले । मैं कही इन्द्र-पद से भ्रष्ट न कर दिया जाऊं । इस प्रकार भयभीत होकर इन्द्र ने बहुत विचार किया । जव उसे कोई उपाय न सूझ पडा, तब उसने रम्भा नामक एक अप्सरा को बुलाकर कहा—'रम्भे, जाओ और अपने छल-कौशल से अर्जुन का ब्रह्मचर्य खण्डित करके उसे तपोभ्रष्ट कर डालो ।

रम्भा सुसज्जित होकर अर्जुन के पास गई । वह अपना हावभाव दिखाकर कर बोली—'हा हा नाथ ! मेरे प्रियतम ! यह नाशकारी मन्त्र आपको किस गुरु ने वतलाया है ? इस मन्त्र के पीछे पड कर मनुष्यत्व से क्यो हाथ वो रहे हो ? मैं आपकी सेवा मे उपस्थित हूं, तपस्या करके भी मुझसे वढिया कौन-सी चीज पा जाओगे ? जव मैं उपस्थित हो गई हू, तव तपस्या करना निष्फल है । इस कायाक्लेश को त्यागिये और मुझे ग्रहण कर मानव-जीवन को सफल वनाइये ।'

अर्जुन अपनी तपस्या मे मग्न था । वह रम्भा को माता के रूप मे देख रहा था ।

रम्भा ने अपना सारा कौशल आजमा लिया । उसने

विविध प्रकार के हाव-भाव दिखाये और अर्जुन को तपस्या से च्युत करने के लिए सभी कुछ कर डाला, पर अर्जुन नही डिगा सो नही डिगा । अर्जुन मानो सोच रहा था— माता अपने बालक को किसी प्रकार मनाना चाहती है ।

रम्भा सब तरह से हार गई । वह अर्जुन का वीर्य न खींच सकी । तब उसने अपना अन्तिम अस्त्र काम मे लिया, क्योंकि वह सिखलाई हुई थी, पुरुष की विषय-वासना की दासी थी । वह नग्न हो गई ।

रम्भा अप्सरा थी । उसका रूप-सौन्दर्य कम नहीं था । तिस पर अर्जुन को तपोभ्रष्ट और ब्रह्मचर्य-भ्रष्ट करने के उद्देश्य से उसने अपने दैवीबल से अद्भुत आकर्षक रूप धारण किया । उसने कामदेव की ऐसी फुलवाडी खिलाई कि न मोहित होने वाला भी मोहित हो जाय । परन्तु वीर अर्जुन तिलमात्र भी न डिगा । उसका मन-मेरु रच मात्र भी विचलित नही हुआ । उसने मुस्कुरा कर कहा—'माता ! अगर अपने इस सुन्दर शरीर से मुझे जन्म दिया होता तो मुझ मे और अधिक तेज आ जाता ।

रम्भा लज्जित हुई । वह अर्जुन से परास्त हुई । उसने अपना रास्ता पकड़ा ।

अर्जुन की प्रतिज्ञा थी कि जो मेरे गाडीव धनुष की निन्दा करेगा, उसका मैं सिर उड़ा दूंगा । मित्रो ! अर्जुन यदि वीर्यशाली न होता तो क्या ऐसी भीषण प्रतिज्ञा कर सकता था ? कदापि नही ! वीर्यबल के सामने शस्त्र का बल तुच्छ है । अर्जुन जब अपने धनुष की निन्दा नहीं सह

सकता था, तब क्या वह अपने वीर्य की निन्दा सहन कर लेता ? नही । क्योंकि वीर्य के विना धनुष काम नहीं आ सकता । अतएव धनुष कम कीमती है और वीर्य अधिक मूल्यवान है ।

६ : माता और संतति

प्राचीनकाल की माताएं वचपन से ही अपने वालक को सदुपदेश दिया करती थी । वे मनचाही सन्तति उत्पन्न कर सकती थी । मार्कण्डेय पुराण मे मदालसा का चरित्र वर्णन किया गया है । उससे विदित होता है कि मदालसा अपने पुत्र को आठ वर्ष की उम्र मे तपस्या करने के लिए भेजना चाहती थी । जब उसके पुत्र उत्पन्न हुआ, तभी से उसने उसे अपने भावो का पाठ पढाना आरम्भ कर दिया यही पाठ उसे पालने मे लोरियो के रूप में सिखाया गया । गर्भ के संस्कारों से तथा शैशव काल मे प्रदत्त सस्कारों के कारण वह पुत्र इतना तेजस्वी और बुद्धिशाली हुआ कि आठ वर्ष की उम्र मे संसार त्याग कर वनवासी हो गया । इस प्रकार मदालसा ने अपने सात पुत्रों को तपस्या करने के लिए जंगल मे भेज दिया । एक वार राजा ने रानी मदालसा से कहा 'मदालसे, तू सव पुत्रों को जंगल में भेज देती है । मेरा राज्य कौन सम्भालेगा ?

हस कर मदालसा ने कहा—नाथ, आप चिन्ता न कीजिये। मैं आपको एक ऐसा पुत्र दूंगी, जो महातेजस्वी महाराज कहला सकेगा।

मदालसा ने ऐसा ही आठवां पुत्र पैदा किया। उसने बडी योग्यता के साथ राजकाज सम्भाला और प्रजा का पालन किया।

भावना क्या नही कर सकती ? 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।' जैसी जिसकी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि मिलती है।

७ : दैवी शक्ति

धर्म के भीतर एक महान तत्त्व है। उस महान् तत्त्व को उपलब्धि सबको नही होने पाती—कोई विरला ही उसे प्राप्त करता है। जिसमे धर्म के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धाभाव और हिमाचल की सी अचलता है, वही उस गूढ़तर तत्त्व को पाता है।

जब प्रह्लाद पर अभियोग लगाया गया, तब हिरण्य कशिपु ने पुरोहितों को आज्ञा दी कि कोई ऐसा अनुष्ठान

करो, जिससे प्रह्लाद का अन्त हो जाय । जिस धर्म का अन्त करने के लिए मैंने जन्म लिया है, प्रह्लाद उसी को फैला रहा है । मेरे ही घर मे जन्म लेकर मेरे शत्रु धर्म को प्रश्रय दे, यह मुझे असह्य है । मैं धर्म को जीवित नही रहने दूंगा । अगर प्रह्लाद उसे जीवित रखने की चेष्टा करेगा तो उसे भी जीवित न रहने दूगा ।

हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को बुलाकर समझाया—अरे इस धर्म को तू छोड दे । मैं ही प्रभु हू, मैं ही ईश्वर हूं । मेरे विपरीत आचरण करने से यह भूलोक ही तेरे लिए पाताल लोक, नरक बन जायगा । मेरा कहना मान । बाल हठ मत कर । धर्म तुझे ले डूबेगा ।

प्रह्लाद ने निर्भय और निश्चित भाव से कहा—तुम और हो, प्रभु कुछ और है । धर्म के अनुकुल आचरण करना मेरे जीवन का उद्देश्य है । धर्म का अनुसरण करने से ही अगर कोई विरोध समझता है तो मेरा क्या दोष है ? आपसे नम्र प्रार्थना करता हूं कि आप अपना दुराग्रह त्याग दें । धर्म अमर है, अविनाशी है । वह किसी का मारा मर नही सकता । वह किसी के नाश किये नष्ट नही हो सकता । जो धर्म का नाश करने की इच्छा करता है, वह अपने ही विनाश को आमन्त्रित करता है । आप अपना अनिष्ट न करें, यही प्रार्थना है ।

प्रह्लाद की नम्रतापूर्ण किन्तु दृढता से व्याप्त वाणी सुन कर हिरण्यकशिपु क्रोध के मारे तिलमिला उठा । उसने अपनी लाल—लाल भयानक आखे कर प्रह्लाद की ओर देखा

मानो अपने क्रोधानल से ही प्रह्लाद को जला देगा। फिर कहा—विद्रोही छोकरे ! अब अपने धर्म को याद करना। देखे तेरा धर्म तेरी क्या सहायता करता है ? अभी तुझे धर्म का मधुर फल चखाता हू ।

इतना कह कर उसने पुरोहितों को आज्ञा दी—'इसे आग में डाल कर जीवित ही जलाकर खाक कर दो !' पुरोहितो ने तत्काल हिरण्यकशिपु के आदेश का पालन करना चाहा। उन्होने धधकती हुई आग मे प्रह्लाद को बिठलाया उस समय की प्रह्लाद की धर्मश्रद्धा एवं सम्भावना से आकृष्ट होकर दैवी शक्ति ने चमत्कार दिखाया। वह अग्नि अपनी भीषण ज्वालाओ से पुरोहितो को ही जलाने लगी। प्रह्लाद के लिए वह जल के समान शीतल बन गई। आग से बचने के लिए प्रह्लाद ने एक श्वास भी प्रार्थना मे नही लगाया। उसने अपने बचाव के लिए परमात्मा से एक शब्द की भी प्रार्थना नही की। 'हे ईश्वर ! मेरी रक्षा करो' इस प्रकार की एक भी कातर उक्ति उसके मुख से नही निकली। वह जानता था–आत्मा जलने योग्य वस्तु नही है। वह अमर है–आत्मा का कोई कुछ बिगाड नही सकता। उसे कोई हानि नहीं पहुचा सकता।

क्षण भर मे पुरोहितो के हाहाकार और चीत्कार से आकाश व्याप्त हो गया।

हिरण्यकशिपु ने अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए प्रह्लाद को उखाड़ना चाहा पर उसकी दैवी शक्ति

इतनी प्रवल थी कि उसके सामने हिरण्यकशिपु की राजकीय शक्ति कातर वन गई ।

८ : कष्टसहिष्णु कर्ण

कर्ण वास्तव मे कुन्ती का पुत्र था किन्तु सयोगवश वह दासरथी का पुत्र कहलाया । वीर पांडव और कर्ण द्रोणाचार्य से शस्त्र-विद्या सीखते थे । द्रोणाचार्य पाण्डवों को मन लगा कर सिखाते, पर कर्ण को नही । कर्ण को यह वात वहुत वुरी लगी । आखिर कर्ण से न रहा गया और उसने आचार्य से इस पक्षपात का कारण पूछा । द्रोणाचार्य ने कहा—'हंस का भोजन कौवों को नही दिया जाता ।'

कर्ण तेजस्वी पुरुष था । उसने यह उत्तर सुना तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा । वह अपना अपमान न सह सकने के कारण वहा से चल दिया । उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की—देखें, शस्त्र-विद्या मे अर्जु न वढकर निकलता है या मैं ?'

उन दिनो परशुराम धनुर्वेद के आचार्य माने जाते थे पर उनका प्रण था—सिवाय व्राह्मण के यह विद्या किसी और को नही सिखाऊंगा ।

कर्ण को परशुराम के प्रण का पता था। वह ब्राह्मण का रूप धारण करके परशुराम के आश्रम मे पहुचा और उनसे धनुर्विद्या सिखाने की प्रार्थना की।

परशुराम ने उसका परिचय पूछा तो उसने अपने को ब्राह्मण बतला दिया! अन्त मे परशुराम ने उसकी प्रार्थना अगीकार कर ली और कर्ण आश्रम में रहने लगा।

कर्ण परशुराम की अनन्य-भाव से सेवा करता था। परशुराम उसकी सेवा पर मुग्ध हो गये और उसे दिल खोल कर सिखाने लगे। कुछ दिनो बाद कर्ण ने और अधिक सेवा करना आरम्भ कर दिया। पर उसका असर उल्टा हुआ। सेवा की अधिकता ने परशुराम के हृदय में शका उत्पन्न कर दी। वे सोचने लगे—ब्राह्मण-कुमार इतनी कठोर सेवा नही कर सकता। कदाचित् यह ब्राह्मणेतर हो।

एक दिन की बात है कि परशुराम कर्ण की गोद मे सिर रखकर सो रहे थे। एक कीड़े ने कर्ण की जांघ पर ऐसा काटा कि खून बहने लगा। जाघ इधर-उधर करने से गुरुजी की निद्रा भग होने का उसे भय था। गुरु-भक्त कर्ण ने अपने कष्ट की परवाह न करते हुए धैर्य रखा और निश्चय बैठा रहा।

जाघ से बहा हुआ खून परशुराम के शरीर को छू गया। खून की तरी से परशुराम चौंक कर उठ बैठे। कर्ण

से खून बहने का कारण पूछा । कर्ण ने कीड़े के काटने का हाल कह सुनाया ।

परशुराम ने क्रोध से कहा—ब्राह्मणकुमार इतना धैर्य नही रख सकता । सच-सच बता, तू कौन है ?

कर्ण ने हाथ जोड कर और मस्तक झुका कर कहा-अपराध क्षमा हो । मैं क्षत्रिय-पुत्र हूं ।

परशुराम—तो मेरे आश्रम में आकर तूने असत्य—भाषण क्यो किया ? असत्य भाषण की सजा तेरे लिए यही है कि इसी समय आश्रम से बाहर हो जा । आज, अभी, तुझे निर्वासित किया गया । दूसरे को इस घोर अपराध की सजा बहुत कठोर दी जाती पर तूने मेरी बहुत सेवा की है । जा, तेरी विद्या असफल होगी ।

९ : सत्यनिष्ठा

महाराज हरिश्चन्द्र का धर्म-मर्यादा का पालन कौन नही जानता ? जिस समय राजा हरिश्चन्द्र, महारानी तारा और कुमार रोहिताश्व राज्य त्याग कर जाते है, उस समय नर-नारिया आंसू बहाते है । स्त्रियां रानी से कहती हैं—

महारानीजी, आप कहां पधारती है ? आप हमारे घर में टिकिये। यह आप ही का घर है।

महारानी उत्तर देती है—'बहिनों ! आपके आंसू, आंसू नहीं, वरन् मेरे धर्म का सत्कार है। ये आंसू मेरे पतिव्रत धर्म का अभिषेक है। अगर मैं राजसी ठाठ के साथ राजमहल मे विराजी रहती तो मेरे साथ आपकी इतनी सहानुभूति न होती। बहिनो ! यदि आप मेरे प्रति सच्ची सहानुभूति रखती है तो आप भी अपने घर मे सच्चे धर्म की स्थापना कीजिये।'

मित्रो ! आपने महारानी तारा के वचन सुने ? वह धर्म की रक्षा के लिए कितने हर्ष के साथ राजपाट त्याग कर रही है ! इसे कहते है वैराग्य ! लाखों करोड़ो के आभूषण पहनने वाली महारानी तारा ने ठीकरो की तरह उन्हें उतार कर फेंक दिया और मन मे तनिक भी मलिनता न आने दी। आप सामायिक करते समय पगड़ी को उतारते हैं पर कभी दो घड़ी के लिये अभिमान भी उतारते हैं ? अगर नही, तो आप वैराग्य का अर्थ कैसे समझ सकते हैं ?

हरिश्चन्द्र की समस्त प्रजा विश्वामित्र को कोस रही थी। हरिश्चन्द्र चाहते तो अपने एक ही इशारे से कुछ का कुछ कर सकते थे। मगर नही, उन्होने प्रजा को आश्वासन दिया कि—घबराओ नही। धर्म का फल कटुक कभी नहीं हो सकता।

राजा हरिश्चन्द्र दृढ आस्तिकता के कारण ही हजारों

वर्ष बीत जाने पर भी आज हम लोगो के मनोमन्दिर मे जीवित है। उनकी पवित्र कथा हमे धर्म की ओर इङ्गित कर रही है, प्रेरित कर रही है।

धर्म के खातिर राजा हरिश्चन्द्र ने राज-पाट ही नही छोड़ा पर विश्वामित्र को दक्षिणा चुकाने के लिए आप अपनी पत्नी सहित बिक गये। धर्म की रक्षा त्याग से होती है, तलवार से नही।

तलवार की शक्ति राक्षसो के लिए काम मे आती है। दैवी प्रकृति वाली प्रजा मे प्रेम ही अपूर्व प्रभाव डाल देता है।

ओह! जिस समय रानी बाजार मे बिकने के लिए खडी होती है, उस समय राजा तो मुह से कुछ नही बोलते पर रानी कहती है—'लो' मैं बिक रही हूं। जिसकी इच्छा हो, मुझे दासी बनाने के लिए खरीद लो।'

धन्य है महारानी तारा का त्याग! ऐसी पतिव्रता, धर्मपरायण रमणी आर्यावर्त को छोड़ कर और कहां उत्पन्न हो सकती है!

जिस समत रोहिताश्व का देहान्त हो जाता है, उस समय महाराजा हरिश्चन्द्र मरघट मे अपने स्वामी-श्वपच-चांडाल की आज्ञा के अनुसार कर (टेक्स) लेने के लिये बैठे थे। तारा रोहिताश्व को लेकर वहा आती है। राजा सामने आकर पैसा मागता है। रानी कहती है—

'मुझसे पैसे मांगते है आप?'

राजा—हां ।

रानी—क्या आप मुझे भूल गये ?

राजा—नही तारा, इस जीवन मे तुझे कैसे भूल सकता हूं ?

रानी—तारा, यही करना होता तो राज्य क्यों त्यागता ? जब राज्य के लिये असत्य का आचरण न किया तो क्या एक टके लिए सत्य को गवाना उचित होगा ?

रानी—टका तो मेरे पास नही है । यह साड़ी है । कहिए तो आधी फाड़ दूं ।

राजा—अच्छा, यही सही । एक टके की तो हो ही जायगी ।

ज्यो ही रानी अपनी साडी फाड़ने को होती है त्यों ही आकाश से पुष्पवर्षा होने लगती है । इन्द्र आदि देवता उनकी सेवा मे उपस्थित होते हैं । श्मशान भूमि स्वर्ग बन जाती है ।

१० : धन का अभिशाप

अगर आपके पास धन है तो उसे परोपकार में लगाओ । यह धन आपके साथ जाने वाला नही है । इस धन के मोह मे मत पड़ो । यदि इसके मोह मे पड़ गये तो आपको मोक्ष प्राप्त नही हो सकेगा ।

ईशु के पास एक आदमी आया । उसने कहा—आपने स्वर्ग का द्वार खोल दिया है । मैं स्वर्ग में जाना चाहता हू । मुझे वहां भेज दीजिए ।

ईशु—तुम स्वर्ग मे जाना चाहते हो ?

आगन्तुक—जी हां ।

ईशु—जाना चाहते हो ?

आगन्तुक—जी ।

ईशु जरा सोचलो । जाना चाहते हो ?

आगन्तुक—खूब सोच लिया । मैं स्वर्ग जाना चाहता हूं ।

ईशु—अच्छा सोच लिया है तो अपने घर की तिजोरियो की चाबी मुझे दे दो ।

आगन्तुक—ऐसा तो नही कर सकता ।

ईशु—तो जाओ, तुम स्वर्ग नही जा सकते ।

सुई के छेद में से ऊंट का निकल जाना कदाचित् सम्भव हो पर कंजूस धनवानो का स्वर्ग मे प्रवेश होना नितान्त असम्भव है।

११ : कुसंगति*

कैकयी के साथ उसके पीहर से मन्थरा नाम की एक दासी आई थी। उसने महल की अटारी पर चढकर रामचन्द्र के राज तिलक की नगर मे होने वाली तैयारी देखी। उसके दिमाग में कुछ विचित्र भाव उदित हुए। वह दौडती-दौडती कैकयी के पास आई और बोली—अरी अभागिन ! तेरे सर्वनाश का समय आ पहुचा है और तुझे किसी बात का होश नही है ! तू इतनी निश्चिंत बैठी है ? तुझे नही मालूम, अयोध्या मे आज यह उत्सव किसलिए हो रहा है ? सम्पूर्ण अयोध्या आज ध्वजा पताकाओं से क्यो सुशोभित हो रही है ? सुन, कल प्रातःकाल राजा दशरथ राम को राज-सिंहासन पर बिठला देगे।

सरल-हृदया कैकयी पर इन वचनो का कुछ भी असर

---

*तुलसी-रामायण के आधार पर। विशेष जिज्ञासु 'राम-वनगमन' किरण १४ तथा १५ देखें।

न होता देख मन्थरा फिर विप उगलने लगी—मेरे लिये तो राम और भरत दोनो समान है पर तू अपने पैर पर कुल्हाड़ा मार रही है। तू अपना भविष्य अन्धकारमय बना रही है।

मन्थरा के चेहरे पर क्रोध और विरक्ति के चिन्ह देखकर पहले तो सरलहृदया कैकयी कुछ न समझी और पूछने लगी—आज तो तुझे प्रसन्न होना चाहिए, पर देखती हूं कि तू बडी चिन्तित हो रही है। तेरी बातें मेरे समझ मे ही नही आ रही हैं। मुझे राम, भरत की तरह ही प्यारे है। कौशल्या वहिन की भाति ही मेरा सेवा करते है। राम की ओर से मुझे किस बात का डर है ?

दुष्टमना मन्थरा ने उत्तर दिया—राजा तेरे मुह पर तेरा आदर करते हैं पर हृदय से वे कौशल्या के प्रेमी है। तुझे मालूम है कि राम के राज्याभिपेक का समाचार भरत को क्यो नही दिया गया ? अरी भोली ! तू राजा के जाल को नही समझ सकती। वास्तव मे वे तुझे तनिक भी नहीं चाहते। अगर ऐसा न होता तो इतना छल-कपट क्यो करते ?

दुष्टो के ससर्ग से क्या-क्या अनर्थ नही होते ? कैकेयी के हृदय पर मन्थरा के वचनो का असर हो गया।

मन्त्रियो को आवश्यक सूचना देकर जिस समय राजा दशरथ सर्व-प्रथम कैकेयी के महल मे गये, सहसा कैकयी का विकराल रूप देखकर सहम उठे। जो रानी मेरे लिये सदा शृंगार किया करती थी, महल के द्वार पर पैर धरते ही मुस्-

कराती हुई सामने आ जाती थी और हाथ पकड कर मुझे भीतर ले जाती थी, आज उसने यह विकराल रूप क्यों धारण किया है ? आज वह आख उठा कर भी मेरी ओर नही देखती । केश बिखरे हुए हैं । कपडे मैले-कुचैले और अस्त-व्यस्त है । मुह उतरा हुआ, होठो पर पपडी जमी हुई और नाक से दीर्घ श्वास ! यह सब क्या मामला है ?

राजा ने डरते-डरते उसके शरीर को हाथ लगा कर पूछा—प्रिये ! आज तुम नाराज क्यो हो ? तुम्हारी यह हालत क्यो हैं ? मैं राम की शपथपूर्वक कहता हू—'जो तुम चाहोगी, वही होगा ?'

अब तक कैकयी चुप थी । 'राम शब्द राजा के मुह से सुनते ही सर्पिणी-सी फुंकार कर बोली—मैं और कुछ नही चाहती । आपने पहले दो वचन मागने को कहे थे, आज उन्हे पूरा कर दीजिये ।

दशरथ—अवश्य, बोलो क्या चाहती हो ?

कैकेयी—पहले अच्छी तरह सोच लीजिए, फिर हां भरिये ।

दशरथ—प्रिये ! सोच लिया है । मागो ।

कैकेयी—फिर नही तो न की जायगी ।

दशरथ—वचन देकर मुकर जाना रघुकुल की मर्यादा के विरुद्ध है । तुम निर्भय होकर मागो ।

कैकेयी—अच्छा तो सुनिये । कल प्रात काल होते ही भरत को राजसिंहासन पर आरूढ़ कीजिए ।

—

कैकेयी के हृदयवेधक शब्द को सुनते ही दशरथ मूर्छित हो गये ।

भाइयो ! बहनो ! जो कैकेयी दशरथ को प्राणों से अधिक प्यार करती थी और राम को भरत से ज्यादा चाहती थी, उसी ने आज दुष्ट-शिक्षा के कारण कैसा भयानक दृश्य उपस्थित कर दिया !

प्रात काल, अरुणोदय के समय, राम माता कैकेयी के महल मे दर्शन करने जाते हैं । वहां कुहराम मचा हुआ देख नम्रतापूर्वक पूछते है—माताजी ! आज आप उदास क्यो दीख पड़ती हैं ? पिताजी बेभान मे क्यो पडे हुए है ?

कैकेयी चुपचाप बैठी रही, उसके मुंह से कुछ नही निकला ।

रामचन्द्र फिर बोले—माताजी, बोलिए, आज तो आप बोलती भी नही ।

कैकेयी—राम, तुम बड़े मीठे हो । जान पडता है, बाप—बेटे ने एक ही शाला मे शिक्षा पाई है । पर तुम्हारी चापलूसी की बातो मे अब मैं नही आने की ।

राम—माताजी, क्षमा कीजिए । मेरी समझ में कुछ नही आया । कृपा कर मुझे साफ-साफ सुनाइए ।

कैकेयी—समझे नही ? समझना यही है कि तुम राजाजी के पुत्र हो और भरत नही । कौशल्या राजाजी की रानी है, मैं नही । मैं तो दासी के सदृश हूं । अगर

भेदभाव न होता तो मेरे भरत को राज्य क्यों नहीं मिलता मैंने तुम्हारे पिताजी से भरत के लिए राज्य मांगा । बस, वे नाराज हो गये ।

राम—विशालहृदय राम—कैकेयी की कठोर बात सुनकर कहते है—माताजी ! आप ठीक कहती है । भरत को अवश्य राज्य मिलना चाहिये । इसमे बुरा क्या कहा ? मैं आपका अनुमोदन करता हूं । भरत मेरा भाई है । आपने किसी पराये के लिये थोडे ही राज्य मांगा है ?

राम वनवास के लिए तैयार हो गये । उन्होने राज्य तिनके की तरह त्याग दिया । उसी निस्पृहता के कारण शान्ति के दूत राम को लोग पुरुषोत्तम और ईश्वर कहते है । सच है—प्रकृति पर विजय करने वाला ही महापुरुष कह—लाता है ।

राम के वनवास की खबर जब सीता को हुई तो वह पुलकित हो उठी । उसने सोचा—मैं कितनी भाग्यशालिनी हू । मुझे सेवा करने का कैसा अच्छा अवसर मिला ? गृहवास मे दास-दासियो की भीड के कारण पतिसेवा का पूरा सौभाग्य प्राप्त न होता था, वनवास करने से यह सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा ।

वहिनो ! सीता के त्याग की तरफ ध्यान दीजिए । वह आज की नारी नही थी कि सुख मे राजी-राजी बोले और विपदा पडने पर मुह मोड ले । इसलिये कहते है—राम मे जो शक्ति थी वह सीता की शक्ति थी ।

भगवती सीता ने कभी कष्ट का अनुभव नही किया था । वह चाहती तो अपने मायके चली जा सकती थी या अयोध्या में ही रह सकती थी । उनके लिए कही भी, किसी वस्तु की कमी नही थी । पर नही, सीता को त्याग का आदर्श खडा करना था, जिसके सहारे स्त्री–समाज त्याग–भावना और पतिपरायणता का पाठ सीख सके ।

राम और सीता को वन जाते देख वीर लक्ष्मण भी तैयार हो गये । उनकी माता सुमित्रा ने उन्हे उपदेश देते हुए कहा—'जाओ बेटा, राम को दशरथ के समान समझना जानकी को मेरी जगह मानना, वन नही अयोध्या मानना। जाओ पुत्र ! तुम्हारा कल्याण हो ।'

अहा ! इन रानियो की तारीफ किस प्रकार की जाय । आज माताए अपने पुत्रो को कैसी नीच शिक्षा देती है ? वहनो ! इन रानियो के उदार-चरित का अनुकरण करो तुम्हारा घर स्वर्ग बन जाएगा ।

राम लक्ष्मण और सीता ने वन की ओर प्रस्थान कर दिया । दशरथ का देहान्त हो गया । जव भरत की फट–कार मिली, तव कैकेयी की वुद्धि ठिकाने आई । वह पछ–ताने लगी--हाय ! मैंने यह क्या कर डाला ! मैंने अपनी सोने की अयोध्या को श्मशान भूमि वना दिया और प्यारे राम को वनवास दिया ! आह ! कितना गजब हो गया । हाय ! मैं राम को कैसे मुह दिखला सकूगी । ओ 'मेरे राम, क्या तुम मुझे क्षमा कर दोगे ? मैं किस मुह से राम को 'मेरे राम' कह सकती हू ? जिसे पराया मानकर मैंने वनवास

के लिए भेज दिया, उसे अपना मानने का मुझे क्या अधिकार रहा ? राम ! राम ! ओ राम ! क्या तुम इस दुर्घटना को भूल सकोगे ? क्या तुम फिर मुझे माता कह कर पुकारोगे ? हाय ! मैं दुष्टा हू, मैं पापिनी हू । मै पति और पुत्र की द्रोहिनी हूँ । मैंने निष्कलक सूर्यवश को कलकित किया । मेरे प्यारे राम । इस अभागिनी माता की निष्ठुरता को भूल जाना । भरत भी मुझे 'मा' नही कहता तो राम मुझे कैसे माता मानेगा ? मैंने उसके लिये क्या कसर छोडी है ? फिर भी राम मेरा विनीत बेटा है । वह अपनी माता को माफ कर देगा ।

इस प्रकार अपने आपको धिक्कार कर कैकेयी ने भरत से कहा—'मुझे रामचन्द्र से मिला दो । मैं भूली हुई थी । मैंने घोर पाप किया है । मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी राम को देखे बिना मेरा जीवन कठिन हो जायेगा । अगर तुमने राम से मुझे न मिलाया तो प्राण त्याग दूगी ।

पहले तो भरत ने साफ इन्कार कर दिया, पर बाद मे यह जान कर कि माता का अहकार चूर-चूर हो गया है और वह सच्चे हृदय से पश्चात्ताप कर रही है, तो रामचन्द्र के पास ले जाना स्वीकार किया ।

भरत चित्रकूट पहुचे । कैकेयी मारे लज्जा के राम के सामने न जा सकी । वह एक वृक्ष की आड मे खडी हो गई । उसकी दोनो आखो से आसुओ की धारा प्रवाहित हो रही थी । वह मन ही मन सोचने लगी—बेटा राम ! क्या अब मेरा अपराध क्षमा नही किया जा सकता । क्या तुम

मेरा मुह भी देखना पसन्द न करोगे ? मै तुम से मिलने आई हूं, पर सामने आने का साहस नही होता । राम ! क्या इस अपराधिनी माता को दर्शन न दोगे ? मैं जानती हूं कि हाय ! मैंने अपनी लाड़ली बहू जानकी को अपने हाथ से छाल के वस्त्र पहना कर वन की ओर रवाना किया है । इससे बढ़कर निष्ठुरता और कोई क्या कर सकता हैं ?

रामचन्द्र माता कैकेयी का विलाप सुन कर घूमते-घूमते उसके पास जा खड़े हुए और 'वन्दे मातरम्' कह उसके पैरो मे गिर पड़े । कैकेयी चौक उठी । दु.ख, पश्चात्ताप और लज्जा के त्रिविध भावो से उसका हृदय जलने लगा ।

राम रूपी प्रचण्ड सूर्य के तेज से कैकेयी के हृदय मे आये हुए दुष्ट विचार रूपी गदला जल सूख गया । कैकेयी का कलुषित हृदय पिघल कर आखो के रास्ते बह गया । कैकेयी के आसुओ ने उसके अन्त.करण की कालिमा धोकर साफ कर दी । कैकेयी के पश्चात्ताप की आग मे उसकी मलिनता भस्म हो गई । कैकेयी अब सोने के समान निर्मल बन गई ।

कैकेयी ने रामचन्द्र से कहा—वत्स, अयोध्या लौट चलो और राज्यभार अपने सिर पर ले लो ।

राम—माताजी, इस समय अयोध्या लौटना, अयोध्या के त्याग के आदर्श को देश-निकाला देना होगा । जहां त्याग का आदर्श न होगा, वहा शान्ति नही रह सकती ।

कैकेयी और राम में बहुत देर तक इसी प्रकार की बाते होती रही। राम अपने सकल्प पर दृढ थे और कैकेयी उन्हे मनाने मे व्यस्त थी। एक ओर माता की नाराजगी और दूसरी ओर आदर्श का हनन। तिस पर मुसीबत यह थी कि भरत राज्य स्वीकार न करते थे। जटिल समस्या थी। वह कैसे हल हो ?

इतने मे सीता को युक्ति सूझी। उसने राम से कहा—नाथ, भरत राज्य को स्वीकार न करेंगे तो अराजकता फैलना अवश्यभावी है। इस अनिष्ट को टालने के लिए अगर आप अपने सिर पर राज्यभार लेकर फिर भरत को सौप दे तो क्या हानि है ? आपका दिया हुआ राज्य भरत सम्भाल लेगें। इससे आपका प्रण भी भंग नही होगा और अराजकता भी नही फैलेगी।

मित्रो ! क्या भरत जैसे भाई अब कहीं दिखाई पडते है ? आज हाथ भर जमीन के टुकडे के लिए एक भाई दूसरे भाई पर हाथ साफ करने मे व्यस्त दिखाई देता है। सड़ी-सडी बातो पर मुकदमेबाजी होती है। लाखों रुपये कचहरी मे भले ही नष्ट हो जाएं पर भाई के पल्ले पैसा भी न पडे। यह है आज की भ्रातृभावना !

हमे मन्थरा के समान शिक्षिकाओ की आवश्यकता नही है। शिक्षा मे दोष का प्रवेश न होने पाए, इस बात का पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। निर्दोष स्त्रीशिक्षा का सूर्य उदय होने पर समाज का अधकार नष्ट हो जायेगा और समाज सुखशान्ति का अधिकारी बनेगा। ❀

१२ : एकाग्रता

द्रोणाचार्य ने कौरवों और पाण्डवो को धनुर्विद्या सिखाई थी। एक दिन वे अपनी शिक्षा की परीक्षा लेने लगे। उन्होने एक कड़ाह मे तेल भरवाया और अपने सब शिष्यो को एकत्र किया। उस तेल के कडाह मे एक खम्भा खडा किया गया और खम्भे पर चन्दा वाला मोर का पंख लगा दिया गया।

इतना सब कुछ करने के पश्चात् आचार्य ने घोषणा की कि तेल भरे कड़ाह मे प्रतिबिम्बित होने वाले मोर के पंख को देख कर जो शिष्य पख के चन्दा को बाण से भेद देगा, उसी ने मेरी पूर्ण शिक्षा ग्रहण की है। वही परीक्षा मे उत्तीर्ण हुआ समझा जायेगा।

दुर्योधन को अभिमान था। वह सबसे पहले चन्दा भेदने के लिये आगे आया। उसने बाण चढाया। इसी समय द्रोणाचार्य ने पूछा—तुम्हे कड़ाह के तेल मे क्या दिखाई देता है?

दुर्योधन ने कहा—मुझे सभी कुछ दिखाई दे रहा है। खम्भा, मोर-पख, मैं, आप और मेरे आस-पास खड़े हुए, मेरी हंसी करते हुए, ये सब दिखाई दे रहे हैं। इसके अति-

रिक्त में उस चन्दा को भी देख रहा हू, जो मेरे बाण का लक्ष्य है।

दुर्योधन का उत्तर सुन कर द्रोण ने कहा—चल, रहने दे। तू परीक्षा मे सफल नही होगा। पहले तू अपना विकार दूर कर।

मगर अभिमानी दुर्योधन नही माना। उसने दर्प के साथ मोर-पंख के चन्दे को, तेल भरे कड़ाह में देखते हुए बाण मारा किन्तु वह लक्ष्य को न भेद सका। इसी प्रकार एक-एक करके सभी कौरव इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहे।

कौरवो के पश्चात् पाण्डवो की बारी आई। युधि-ष्ठिर आदि चारो पाण्डवो ने अर्जुन को कहा—हम सब की तरफ से अकेले अर्जुन ही परीक्षा देंगे। अगर अर्जुन इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए तो हम सभी उत्तीर्ण है। अगर अर्जुन उत्तीर्ण न हो सके तो हम लोग भी अनुत्तीर्ण ही है।

आचार्य द्रोण पाण्डवो की बात सुन कर प्रसन्न हुए। उन्होने कहा—परीक्षा में इन्हे उत्तीर्णता मिले या न मिले मगर इन पाचो का ऐक्य प्रशसनीय है।

आखिर अर्जुन कड़ाह के पास आया। द्रोणाचार्य ने स्नेह से गद्गद् होकर कहा—'मेरी शिक्षा की इज्जत तेरे हाथ है।'

अर्जुन ने विनम्रता प्रकट करते हुए कहा—गुरुदेव, अगर मैंने सच्चे अन्त करण से आपकी सेवा की होगी,

आपका स्नेह सम्पादन किया होगा, तो आपकी कृपा से मैं उत्तीर्ण होऊंगा ।

इस प्रकार अर्जुन ने तेल के कडाह मे मोरपंख देखते हुए वाण साधा । द्रोणाचार्य ने पूछा—तुम्हे कडाह में क्या दीख पड़ता हैं ।

अर्जुन वोला—मुझे मोरपंख का चन्दा और अपने वाण की नौक ही दिखाई दे रहे हैं । इसके सिवाय और कुछ भी नजर नही आता ।

आचार्य ने कहा—तेरी तरफ से मुझे आशा वंधी है । वाण चला ।

गुरु की आज्ञा पाकर अर्जुन ने वाण चलाया । बाण लक्ष्य पर लगा और मोरपख का चन्दा भिद गया ।

इसी विद्या के प्रताप से अर्जुन ने पांचाली के स्वयवर मे राधावेध साधा था और पाचाली (द्रोपदी) प्राप्त की थी ।

चन्दा वेध देने से पाडवो को तो प्रसन्नता हुई ही थी साथ ही द्रोणाचार्य भी वहुत प्रसन्न हुए । अपने शिष्य की विशिष्ट सफलता से कौन गुरु प्रसन्न नही होता ?

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस एकाग्रता—एक-निष्ठा से या जिस ध्यान से अर्जुन ने मोरपख का चन्दा वेधा था, उसी एकनिष्ठा के साथ ईश्वर का ध्यान करने से आत्मा को ईश्वरत्व को प्राप्ति हो सकती है । वल्कि अर्जुन

का लक्ष्य स्थूल था, परमात्मा मोरपंख के चन्दा की अपेक्षा भी बहुत अधिक सूक्ष्म है। अतएव अर्जुन ने जिस एकाग्रता को प्राप्त किया था, उससे भी अधिक एकाग्रता परमात्मा का ध्यान करने के लिये अपेक्षित है। इतनी एकाग्रता प्राप्त करके जो ईश्वर का ध्यान करेगा, उसे स्वय ईश्वर बनने मे देर नही लगेगी। जब आत्मा और परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी नजर नही आता, बल्कि आत्मा और परमात्मा भी एकमेक मालूम होने लगते है, तब एकाग्रता की पूर्ण सिद्धि होती है। इस प्रकार की एकाग्रता साधने वाला, फिर चाहे वह कोई भी क्यो न हो, परमात्म-पद का अधिकारी बन जाता है।

१३ : ग्राम सेवा *

मगध देश के एक गाव मे एक किसान के घर पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र का जन्म मघा नक्षत्र मे हुआ था। अतएव उसका नाम भी 'मघा' रखा गया। जैन साहित्य मे आये हुए उल्लेख से ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल के लोग उसी नक्षत्र के आधार पर नाम रखते थे, जिस नक्षत्र मे बालक का जन्म होता था। आज नाम रखने की प्रथा

* एक बौद्ध जातक कथा।

और ही प्रकार की चल पड़ी है, पर पहले ऐसी प्रथा नही थी ।

मघा पूर्वजन्म के विशेष सस्कार को लेकर जन्मा था । उसकी आकृति-प्रकृति को परखने वाले लोग कहा करते—बालक अत्यन्त होनहार है । भविष्य मे उसके द्वारा कोई उत्तम कार्य होगा ।

मघा की बाल-क्रीडा उसके सस्कारो के अनुसार समाप्त हुई । वह कुछ बड़ा हुआ । अब वह पहाड, चन्द्र, सूर्य नदी, सरोवर, वृक्ष, आदि निसर्ग की रचना देखकर आनन्द अनुभव करने लगा ।

ज्ञानी और अज्ञानी के बीच यह एक महान् अन्तर है कि अज्ञानी जिन पदार्थो को अपने विनोद और आमोद-प्रमोद का साधन समझता है, ज्ञानी उन्ही पदार्थो को अपनी जीवन-साधना का कल्याणकारी साधन मानते हैं । किसी झरने का झर-झर शब्द सुनकर साधारण आदमी उसे विनोद का कारण मानकर थोडी देर खुश हो लेता है । परन्तु ज्ञानीजन उसी ध्वनि को सुनकर गम्भीर विचार करते है । वे सोचते है—'यह झरना, मेरे आने से पहले भी झर-झर ध्वनि कर रहा था, इस समय भी यही ध्वनि कर रहा है और जब मैं यहा से दूर चल दूगा तब भी इसका यह नाद निरन्तर जारी रहेगा । यह झरना न निन्दा की परवाह करता है, न प्रशन्सा की । यह तो इसी प्रकार संगीत करता हुआ सागर मे समा जाता है । एक ओर मैं हू, मनुष्य—प्रकृति का राजा ! जो जरा-सी प्रशन्सा सुन कर

फूल कर कुप्पा हो जाता हू और तनिक सी निन्दा सुनते ही ज्वालाए उगलने लगता हू ।' ज्ञानी-जन प्रकृति के प्रगाढ परिचय से एक ऐसा पाठ सीखते है ।

मघा भी प्रकृति की पाठशाला मे ऐसा पाठ पढने लगा । विशाल सरिताए देखकर वह सोचने लगता—'ये गगा-युमना आदि नदिया कह रही है—हम पहाड़ मे से निकल कर समुद्र से मिलने जा रही हैं । मार्ग मे हमे जितनी गदगी मिलती है, उसे अपने मे मिलाकर अपना-सा रूप प्रदान कर देती हैं । गन्दगी से मिलकर हम स्वय गन्दी नहीं वनती, वरन् गन्दगी को ही अपनी पवित्रता दान कर अपनी-सी बना लेती हैं अर्थात् गन्दगी भी हमारे ससर्ग से पवित्र वन जाती है ।'

इस प्रकार प्रकृति से शिक्षा पाकर मघा ने निश्चय किया—जैसे प्रकृति अपना कर्त्तव्य निरन्तर पालन करती रहती है, इसी प्रकार मै भी अपने कर्त्तव्य का अप्रमत्त भाव से पालन करूगा ।

इस प्रकार निश्चय करता हुआ मघा वड़ा हो गया । वह अपने हाथ मे झाड़ू लेकर अपना और अपने पड़ोसियो का आंगन झाड-बुहार कर साफ-सुथरा कर दिया करता । मघा यह काम किसी की जोर-जबदरस्ती से नही, निष्काम भावना से करता ।

मान लीजिये नगर मे जाने के दो मार्ग हैं—एक गन्दा है, दूसरा साफ है । तुम साफ रास्ते से जाना

पसन्द करोगे, पर जिन्होंने उसे साफ किया है उन्हे पसन्द नही करोगे—उनसे घृणा करोगे, यह कितनी वड़ी विडम्बना है !

मघा किसी आशा से प्रेरित होकर नहीं पर निष्काम भाव से अपना और अपने पड़ौसी का आंगन साफ करता था। मघा के इस कार्य से उसके घर वाले आग-बबूला हो उठते और उसे उलाहना देते। इतना ही वस न था, कोई-कोई अनपढ घर वाला तो उसे थप्पड भी जड देता। यह सब होने पर भी मघा अपने कर्त्तव्य मे तन्मय रहता और प्रकृति से पाई हुई शिक्षा की परीक्षा हो रही है, यह मान-कर सभी कष्टो को शान्तिपूर्वक सह लेता। प्रारम्भ मे तो वह अपना और अपने पडौसी का आंगन साफ करता था, पर ज्यों-ज्यो उसकी शक्ति का विकास होता गया, त्यो-त्यो उसने अपना कार्यक्षेत्र भी वढा लिया।

मघा की शक्ति ज्यो-ज्यो वढती गई, त्यो-त्यो वह अधिक विस्तृत कार्य करने लगा। लोग आध्यात्मिकता के नाम पर क्रिया की अवहेलना करते हैं, परन्तु सच्चा ज्ञान वही है, जिसमे सक्रियता हो। मघा को जो ज्ञान था, वह उसके अनुरूप कार्य भी करता था। मघा कहने की अपेक्षा कर दिखाने मे विश्वास करता था। गली-कूचे मे पड़े हुए कचरे को वह उठाता और वाहर फैक आता था। गली-जगह को साफ कर देता था। कई वार गलियो मे रहने वाली स्त्रियां साफ की हुई जगह मे कूडा-कचरा फैक देती थी और मघा उसे उठाकर वाहर डाल आता था। ऐसा करते समय मघा को जरा भी क्रोध न आता था। उल्टे, वह समझता कि ये स्त्रिया मेरे कार्य मे वेग ला रही है।

स्त्रिया मघा के इस मूक और नि स्वार्थ सेवाभाव को देखकर लज्जित हो जाती और दुबारा ऐसा अनुचित कार्य न करती। उनमे से कोई-कोई तो उसके कार्य मे हाथ बटाने लगी।

मघा ज्यो-ज्यो अपना कार्य-क्षेत्र बढाता गया, त्यो-त्यो उसकी निन्दा का क्षेत्र भी बढता चला गया। जहा कही लोगों की टोली जमा होती, वही मघा की निन्दा होने लगती। लोग निन्दा से घबराते हैं। अगर निन्दा से घबराहट न हो तो वह पौष्टिक पदार्थ की तरह शक्ति प्रदान करती है। मघा निन्दा से जरा भी विचलित नही होता था। वह अपने विकास मे निन्दा को भी एक साधन ही समझता था।

लोगो मे होती हुई अपनी निन्दा सुनकर मघा सोचता-अब मेरे काम की कद्र हो रही है। ऐसा सोचकर वह नया उत्साह और नई स्फूर्ति प्राप्त करता। घबराहट उसके पास फटकने तक न पाती।

मघा की निन्दा सुनकर वहा के दो नवयुवको ने आपस मे विचार किया—मघा की निन्दा क्यो की जाती है? उसने कौनसा निन्दनीय दुष्कर्म किया है? क्या वह मदिरा पान करता है? वेश्यागमन करता है? जुआ खेलता है? क्या वह चिलम या हुक्का पीता है? (वर्तमान युग की भाषा मे) क्या बीडी-सिगरेट पीता है? या होटलो मे जाकर चाय और सोडा-लेमन डकारता है? मघा इनमे से किसी भी व्यसन का सेवन नही करता। इसके

अतिरिक्त और कोई बुराई भी उसमें नही पाई जाती। फिर लोग क्यो उसे बदनाम करते है ? इस गांव के सभी लोग तो मघा के निन्दक है, फिर किसके सामने उसके सत्-कार्य की प्रशन्सा की जाय ? सारा गांव मघा के कार्य को घृणा की दृष्टि से देखता है, तो देखता रहे, मगर उसका कार्य वस्तुत. लोकोपयोगी है और इसलिए उसके कार्य को वेग अवश्य मिलना चाहिए।'

इस प्रकार विचार कर दोनों नवयुवक मन ही मन मघा की सराहना करने लगे। एक नवयुवक ने दूसरे से कहा—'भाई, इस विषय मे तुम्हारा और मेरा मत एक है और एक मत होने से हम ११ के समान बन गये है। दोनो मघा के साथ मिल जाए तो एक सौ ग्यारह के बराबर कार्य कर सकेंगे। अगर तुम अन्त करण से मघा के कार्य की सराहना करते हो, तो उस सराहना को वचन तक ही सीमित नही रखना चाहिये। चलो, मघा के साथ हम लोग मिल जाएं और अपने अन्त.करण की भावना एव वचन को क्रिया का रूप प्रदान करें।

दूसरे नवयुवक ने उत्तर देते हुए कहा—मघा के साथ मिलने की क्या आवश्यकता है ? वह जो कार्य कर रहा है, वही कार्य हम लोगो को भी आरम्भ कर देना चाहिए।

पहला युवक—तो क्या मघा अपना गुरु बनेगा ?

दूसरा युवक—बेशक।

पहला युवक—सुनते हैं, गुरुपद का अधिकारी वही हो सकता है, जिसने घर-द्वार त्याग दिया हो और जो भिक्षा-

वृति करके जीवन-निर्वाह करता हो। मघा ने तो अभी घर-द्वार नही त्यागा है। इस अवस्था में उसे गुरुपद पर किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है?

दूसरा युवक—अगर हमे गृह-त्याग कर निवृत्त मार्ग पर चलना हो तो गृह-त्यागी अनगार पुरुष को ही गुरु बनाना चाहिए। जव हम प्रवृत्तिमय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो मघा के समान सत्य प्रवृत्ति करने वाले गुरु की आवश्यकता है। मघा जैसे सत्यपुरुष को गुरु बनाने से ही 'प्रवर्त्ति' करते हुए भी अन्तरात्मा को पवित्र मार्ग पर लगाया जा सकता है।

इस प्रकार विचार-विनिमय करके दोनो युवक मघा के पास आये। मघा उस समय सफाई के काम मे लगा था। दोनो युवको ने मघा को प्रणाम किया। विनीत भाव से मघा ने उत्तर दिया—"भाइयो, मैं एक साधारण आदमी हूं। मुझे तो तन ढकने को पूरे कपडे भी नसीब नही होते।' मुझ जैसे गरीब को आप किसलिये नमस्कार करके आदर दे रहे है?"

मघा की इतनी अधिक नम्रता देख दोनो युवक चकित रह गये और भीतर ही भीतर उसकी निरभिमानता की प्रशसा करने लगे।

मघा ने दोनो युवको को लक्ष्य कर कहा—भाइयो, जैसा मेरा काम है, वैसी ही मेरी पोशाक है। कीमती कपड़े पहन कर मैं अपना काम करता तो मेरा काम पार ही न पडता। कारण यह है कि कीमती कपड़े आलस्य की

वृद्धि करते है और आलस्य बढ़ाने वाले बहुमूल्य वस्त्र कार्यकर्त्ताओ को नही सोहते। इसी कारण मैंने अपनी पोशाक, अपने कार्य के अनुरूप ही रख छोड़ी है।

मघा की यह सीधी और सच्ची बात सुनकर दोनों युवक मित्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने प्रसन्नता के साथ मघा से कहा—'हम दोनों आपके शिष्य बनने आये है। हम आपकी आज्ञा के अनुसार ही वर्ताव करेंगे।

मघा ने कहा—भाइयो, आप मेरे शिष्य बनना चाहते है, पर मेरे पास क्या धरा है ? मैं ऐसी भी स्थिति मे नही हू कि आपको खाने के लिये रोटी का टुकड़ा दे सकू मेरे घर वाले बडी मुश्किल से मुझे भोजन देते है वे कहते हे—'काम तू औरो का करता है और खाने को यहां आ धमकता है।' पर मैं उनके इन कटु वाक्यो की परवाह नही करता। मैं सोचता हूं—घर वाले मुझे रूखी-सूखी रोटी के साथ यह वाक्य रूपी घी भी दे रहे है जब मैं अपने घर का काम भी करता हू मेरे घर वालो को खुशी होती है। वे सिर्फ दूसरों का काम कर देने से नाराज होते है। पर मुझे अपना पराया दोनो का काम करना आनन्दप्रद मालूम होता है। मेरे और मेरे घर वालो के विचार में यही बड़ा भारी भेद है। हां, तो मैंने अपनी स्थिति साफ-साफ आपके सामने रख दी हैं। क्या फिर भी आप मेरे शिष्य बनना पसन्द करते है ?

युवको ने कहा—आपने हृदय खोलकर जो बातें कही हैं, उन्हे हम लोग सुन-समझ चुके हैं। हम आपके चरणों

का अनुसरण करना चाहते हैं और इसी कारण आपके शिष्य बनना चाहते हैं ।

मघा ने युवको से कहा—अगर आप निखालिस दिल से मेरे शिष्य बनना चाहते हैं तो आपको मेरी आज्ञा का अनुसरण करना होगा । आप यह स्वीकार करते है ?'

युवकों ने अपनी हार्दिक स्वीकृति जताई ।

मघा का यह कथन सुन दोनो युवक आपस मे कहने लगे—'गुरु हो तो ऐसा हो जो चेला मूडने के लिए दूसरों को झूठे प्रलोभन मे न डाले ।' इस प्रकार विचार कर दोनो ने मघा से कहा—'आपका स्पष्ट कथन सुनकर शिष्य बनने की हमारी भावना अधिक बलवती हो गई है । कृपा कर अब हमें गुरु-मन्त्र सुनाइए और दीक्षा दीजिये ।'

'मघा ने कहा—भाइयो ! मै पढा-लिखा तो हू नही फिर तुम्हे क्या गुरु-मन्त्र सुनाऊं ?'

युवक—'पढे लिखो के मन्त्र तो हमने बहुत बार सुने हैं । उन्हे सुनते-सुनते ऊब गये हैं । अब हमे आप सरीखे कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति का मन्त्र सुनने की उत्सुकता है । अतः अपने कर्त्तव्य का मन्त्र हमे सुनाइये । बताइये, आपका शिष्य बन जाने पर हमें क्या कार्य करना होगा ?

मघा—सुनो ! तुम्हे जो कुछ करना होगा, वह बताता हूं ।

१—'जो काम अपने लिये अनुकूल हो, वह दूसरो के

लिए करना चाहिए और जो अपने लिये प्रतिकूल हो, वह दूसरो के लिये भी नही करना चाहिये ।

मघा बोला—प्रकृति से मैंने यह पाठ सीखा है । मुझे लगा–साफ सुथरा रास्ता मुझे पसन्द है तो दूसरे लोग रास्ता साफ करें और मैं उस पर चलू, इसकी अपेक्षा क्या यही सगत और समुचित न होगा कि मैं स्वय रास्ता साफ करू ? जो बात अपने लिये अनुकूल हो, वह दूसरो के लिये भी करना, यह मेरी पहली शिक्षा है ।

२—'ससार के समस्त प्राणियो को अपने समान ही समझना' यह मेरी दूसरी शिक्षा है । ऐसा नही होना चाहिये कि अपने लिये तो पाच–पाच दस गिने और जब दूसरो की बारी आये तो ग्यारह गिनने लगें ! ऐसा करने वाला आत्म वचना तो करता ही है, साथ ही विश्वासघात भी करता है और अपनी आत्मा को अपराधी बनाता है । इसलिये जैसा व्यवहार तुम अपने लिये चाहते हो, वैसा ही तुम दूसरो से करो । तुम्हारे पास दो कोट है । उनमें से एक फालतू है । अगर तुम्हारे सामने कोई गरीब आदमी सख्त सर्दी का मारा थर-थर काप रहा हो तो अपना फालतू कोट उसे दे देने की इच्छा तुम्हारे अन्त.करण मे उत्पन्न होनी चाहिए । अगर तुम इस अवस्था मे उसे अपना कोट नही दे सकते, तो यह समझा जायेगा कि तुम अब तक पराई पीड़ा को पहचान नही पाये हो । भोजन से तुम्हारा पेट ठसाठस भर गया हो, फिर भी बची हुई रोटी किसी गरीब को दे देने की भावना तुम्हारे हृदय मे पैदा न हुई और रोटी सैक कर या सुखा रखकर दूसरे दिन खाने की तृष्णा बनी रही तो

माना जायगा कि अभी तुम दूसरो की आत्मा को अपनी आत्मा के समान समझने मे समर्थ नही हो सके हो ।

३—अगर तुम मेरे शिष्य बनाना चाहते हो तो तुम्हे समस्त प्राणियो को आत्मतुल्य समझना होगा । इतना ही नही, तुम्हे सब प्रकार के दुर्व्यसनो से भी दूर रहना होगा, क्योकि व्यसन के नशे मे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भाव नही रहता । अतएव सब प्रकार के मादक पदार्थों से तुम्हे बचना होगा । जो पदार्थ बुद्धि को भ्रष्ट करते है, वे सब मादक पदार्थ है । कहा भी है—

बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्य मदकारि तदुच्यते ।

जिन पदार्थो को सूघने से, खाने से, पीने से बुद्धि भ्रष्ट या नष्ट होती है, वे सब मादक द्रव्य है । मादक कहे जाने वाले पदाथो मे ही मद हो, सो बात नही है, हृदय की भावना मे भी मद होता है । ग्रन्थो में रावण को हजार विद्या वाला बतलाया गया है, फिर भी वह सीता को देख-कर-बेभान हो गया । इस प्रकार भान भूल जाना हृदय का मद है । हृदय के मद से बचना अपेक्षाकृत अधिक कठिन होता है, पर तुम्हे इस मद से भी हमेशा बचते रहना होगा ।

मघा ने युवको को कर्त्तव्य-बोध कराते हुए कहा—जिन पदार्थों के सेवन करने से कृत्याकृत्य का भान नष्ट हो जाता हो, ऐसे पदार्थो का सेवन न करना, यह मेरा गुरु-मन्त्र है । यह मन्त्र उगलियो के पौरो पर गिनने या जाप करने के लिये नही है । अच्छी तरह याद रखकर कार्यरूप मे परिणत करना होगा । मैंने यह निवृत्ति का मन्त्र सम-

झाया है । इसके साथ ही प्रवृत्ति का मन्त्र भी तुम्हे सीखना है । वह मन्त्र यह है—

४—तुम्हे स्वामी वनकर नही, वरन् सेवक वनकर जनसमाज की सेवा करनी चाहिए । सेवा करते-करते अगर प्राणो का उत्सर्ग करना पड जाय तो वह भी प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिए ।

मघा ने जो शिक्षा वताई है, उसमे किसी भी धर्म या दर्शन का विरोध नही हो सकता । जो व्यक्ति अपना जीवन-व्यवहार इस शिक्षा के अनुसार चलाता है, वह निः-सन्देह स्व-पर का कल्याण कर सकता है ।

मघा की इन तात्त्विक वातो को सुनकर युवक कहने लगे—'ईश्वर कहां है; यह सोचते-सोचते हम थक गये, पर अव जान पडता है, वह आपके भीतर विराजमान है । आपके निर्मल अन्तःकरण मे जिन उदार भावो का वास है, उन भावो मे ईश्वर का दिव्य दर्शन हो रहा है ।

मघा के दिल की वातें सुनकर दोनो युवक आश्चर्य के साथ आनन्द का अनुभव करने लगे । वे मघा के पैरों पडकर गद्गद् होकर वोले—'हमारे सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखिए । हम लोग आपके शिष्य वनना चाहते है । हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हमारी प्रवृत्ति आपके आदेश के अनुसार ही होगी ।'

मघा खड़ा हुआ । दोनो को छाती से लगाया और अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया । इस प्रकार मघा को

दो शिष्य मिले । मघा अब षट्-भुज (छह भुजा वाला) हो गया ।

मघा को दो साथी मिले, पर इससे वह जरा भी आलसी न बना । वह अब पहले से भी अधिक काम करता था । उसे यह भली-भाति ज्ञात था कि मैं जैसा व्यवहार करूंगा, मेरे शिष्य भी मेरा अनुकरण करके वैसा ही व्यवहार करेगे । ऐसा विचार कर वह आदर्श कार्य करता था । वह वहुत बार सोचा करता—'हे प्रभो ! इन युवको के अन्त करण मे किसने प्रकाश की किरणें भरी है कि ये मेरे साथी बन गये हैं ? दयाघन ! जान पडता है, यह तुम्हारे असीम अनुग्रह का ही परिणाम है ।'

कुछ दिन वाद पहले वाले दो युवको को तरह तीस युवक और मघा के शिष्य वन गये । तब कुल बत्तीस शिष्य और एक स्वय इस प्रकार तेतीस जने हो गये । मघा सुवह तडके ही उठ बैठता । अपने शिष्यो के साथ पहले परमात्मा की प्रार्थना करता और फिर दिन भर के काम का वटवारा कर देता । वह किसी को कहता—तुम शराबियो से अनुनय करके, शराव पीने की हानिया समझा कर उन्हे शराव पीने से रोकना । किसी को गाव के दीन-दुखियो और रोगियो की सार-सम्भाल का काम सौंपता किसी को गाव के रास्ते साफ करने का और किसी को जनता का हित करने वाली शिक्षा देने का काम सौंपता था ।

निष्काम भाव और हृदय की सच्ची लगन से किये जाने वाले कार्य का प्रभाव बिना पडे नही रहता । मघा

की निष्काम भावना के कारण गाव भर मे, एक भी शराबी वेश्यागामी और चोर न रहा ।

मघा के सतत प्रयास से उस गाव मे से मदिरा, पर-स्त्रीगमन और चोरी आदि भूत भाग गये । मघा ने उस गांव के निवासियो को यह भी सिखाया—तुम इतना अधिक खर्च मत रखो, जिससे तुम्हे कर्ज लेना पडे । आय के परिमाण मे व्यय करो । अनिवार्य आवश्यकता के समय कर्ज लेना पड़े तो उसे नियत समय से पहिले ही चुका डालो । अगर कर्ज सिर पर चढा लोगे और समय पर चुका न सकोगे तो देनदार तुम पर दावा करेगा । इसमे तुम्हारा पतन है । इस प्रकार लोगो के घर-घर जाकर मघा ने यथासमय कर्ज चुका देने के लाभ और न चुकाने के नुकसान उन्हे समझाए । इसके अतिरिक्त लोगो मे आपस मे कभी कोई रगडा-झगडा हो जाता तो मघा या उसके शिष्य बीच बचाव कर देते थे । अब मघा पर लोगो की आस्था बढ चली थी और लोग उसका कहना मानने लगे थे ।

इस प्रकार मघा ने और उसके शिष्यो ने अपना जीवन लोक-सेवा के लिए समर्पित कर दिया । लोग भी उनके कार्य मे सहायता पहुचाने लगे । गाव मे इतनी अधिक शाति और अमन चैन फैल गया कि जो लोग गाव छोडकर दूसरी जगह जा बसे थे, वे लौटने लगे । पहिले पुरुष स्त्रियो को बहुत कष्ट देते थे पर मघा के उपदेश से स्त्रियो ने भी शान्ति का श्वास लिया । जो स्त्रिया पहले मघा के काम मे रोडा अटकाती थी, वही अब मघा को आशीष देने लगी और अपने किये पर पछताने लगी । वे कहती—'हम तो

मघा की साफ की हुई जगह मे कचरा बिखेर देती थी, पर वह चुपचाप उसे उठा ले जाता था । मघा ने बाहर का ही कचरा साफ नही किया है किन्तु हमारे हृदय का कचरा भी साफ कर दिया है । परमात्मा इस पुण्यजीवी मघा को चिरायु करें ।'

इस प्रकार मघा के लिए लोग परमात्मा से प्रार्थना करते और प्रभात मे उसके दर्शन करने आते थे । पर मघा अपनी कीर्ति से फूल जाने वाला व्यक्ति न था । वह तो सदा की भांति अपने काम में लीन रहता था । उसके पास इतना समय ही न था कि लोगो को दर्शन देने के लिये वह कही एक जगह बैठा रहता । लोग जब उसके दर्शन करने आते तो वह यही कहता—आप लोग अपने घर-द्वार को और हृदय को साफ-स्वच्छ रखिए, यही मेरा सच्चा दर्शन है ।

मघा की सत्यवृत्ति से लोगो मे अपूर्व शाति फैल गई इस कारण मघा सब का प्रेम-पात्र बन गया । पर उस गाव मे तीन प्रकार के पुरुष ऐसे थे, जिन्हे मघा अप्रिय ही नही वरन् कडुआ जहर सा लगता था । वे थे—शराब वेचने वाले, वेश्याए और कचहरी के राजकर्मचारी । ये लोग मघा की सत्यवृति से बहुत नाराज रहते थे । शराब की बिक्री एकदम बन्द हो जाने के कारण शराब बेचने वाले की आमदनी मारी गई थी । वेश्यागामियो का अभाव हो जाने से वेश्याएं नाराज रहती थी और झगडा-फसाद न होने के कारण राजकर्मचारी दिन भर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते थे । इस प्रकार ये लोग मघा पर दात पीसते

रहते थे और किसी उपाय से मघा यहा से भाग जाय तो वला टले और हमारा धन्धा फिर से चमक उठे, इसी उधेड बुन मे लगे रहते थे । मघा को गाव से हटाने के लिए वे प्रयत्न करने लगे ।

अच्छा काम करने वाले का विरोध करने के लिए कोई न कोई खडा हो जाता है । जैसे दिन की थकावट दूर करने के लिए रात की जरूरत है, उसी प्रकार सत्कार्य का विरोध करने वालो की भी आवश्यकता है । ज्ञानी-जन इस प्रकार के विरोध से निन्दा से रचमात्र भी नही घवराते वल्कि विरोध को अपने कार्य का सहायक मानकर दुगने उत्साह से उसे मफल वनाने मे जुट पडते हैं । वे सकटो को परमात्मा की प्रार्थना करने का प्रेरक मान कर प्रसन्न होते हैं ।

आखिर उन्होने एक मण्डल वनाया और मघा को दूर करने के उपाय सोचे । अन्त मे राजा की शरण लेना निश्चित हुआ । पर उसका और उसके शिष्यो का कोई अपराध भी होना चाहिए ? राजा से निर्वासन के लिए कहा जायगा तव वे कहेगे मघा साधु पुरुष है, उसे गांव से वाहर क्यो निकाला जाए ?' तव राजा के सामने यह कहना ठीक होगा—मघा और उसके सव चेले उचक्के और लुटेरे हैं और उनके कारण प्रजा को अत्यन्त त्रास हो रहा है । उनके त्रास के आगे राजसत्ता भी झख मारती है ।' यह सुन कर राजा मघा के ऊपर कुपित होगे और हमारी योजना सफल हो जायगी । राजा हमारे उपर विश्वास करते है ।

इस प्रकार निश्चय करके राज-कर्मचारियों ने अपना संगठन और सुदृढ करने का निश्चय किया। सगठन-शक्ति अच्छे कार्य के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है और किसी अच्छे कार्य मे रोडा अटकाने के लिये भी प्रयुक्त की जा सकती है, क्योंकि शक्ति वह दुधारी तलवार है, जिससे रक्षण और भक्षण दोनो काम लिए जा सकते हैं। राजकर्मचारियो के स्थापित किए हुए मण्डल मे पाप-प्रवृत्तियो द्वारा धन उपार्जन करने वाले कुछ लोग और शामिल हो गये। सब ने मिलकर मघा और उसके शिष्यो के विरुद्ध एक आवेदन-पत्र तैयार किया और राजा के पास ले गये। वहा सब कर्मचारी पुकार मचाने लगे—अन्नदाता! राज्य मे अत्यन्त विग्रह फैल गया है। चारो ओर राज्य मे लुटेरो ने उत्पात मचा रखा है। प्रजा इससे बहुत दु खी हो गई है। इस त्रास को मिटाने के लिये प्रजा ने हमें यह निवेदन--पत्र देकर आपकी सेवा मे भेजा है। इसे पढकर उचित प्रबन्ध करने की कृपा कीजिए।'

मगध—नरेश मदिरा के नशे मे चूर था। उसने न कुछ सोचा न विचारा और राजकर्मचारियो की बातो पर सहसा विश्वास करके तत्काल हुक्म सुना दिया। उन्हे जांच–पडताल करने की आवश्यकता प्रतीत ही नही हुई। राजा ने कहा—'सेना की एक टुकडी ले जाओ और राज-विद्रोहियो को पकड कर मगवाओ।' राजा का नादिरशाही हुक्म सुनकर राजकर्मचारियो के हर्ष का पार न रहा और सभी 'मेरी युक्ति काम कर गई' इत्यादि कहते हुए अपनी-अपनी बड़ाई करने लगे।

रास्ते मे कर्मचारियो ने सेना-नायक को सूचित कर दिया था कि देखिये, दूसरे किसी भी आदमी की न तो आप बात सुने और न किसी से कुछ पूछने के लिए रुके अगर आप ऐसा न करेगे तो बदमाशो का पकडना असंभव हो जाएगा। हम जिसकी ओर सकेत करे, बस उसी को गिरफ्तार कर लीजिये। अगर हम प्रगट रूप से उन बदमाशो के नाम आपको बताएंगे तो हमारी जान की खैर नही। ये बदमाश बहुत चालाक है। इन्होने गांव वालो को भी विद्रोही बना दिया है। राज-मर्यादा की उन्हे रचमात्र भी परवाह नही है। अतएव किसी के कहने पर कान न देकर जिसकी ओर इशारा किया जाय, उसी को आप गिरफ्तार करते जाइए।'

कच्चे दिल का कोई आदमी सशस्त्र सेना के आगमन की बात सुनते ही घबडा उठता है। पर मघा कच्चे दिल का आदमी नही था। वह जो सत्यकार्य कर रहा था उसमे उसका अटूट विश्वास था। वह किसी का डिगाया डिगने वाला नही था। जब उसने अपने पकड़ने के लिए सशस्त्र सेना के आने का समाचार सुना, तो वह सोचने लगा—मेरी परीक्षा का समय आ पहुचा है।' उसने अपने साथियो को बुलाकर कहा—आज हम सबकी परीक्षा का समय आ गया है। अब छोटे-छोटे काम छोड़ो। अब हमे एक महत्त्वपूर्ण कार्य करना है। छोटे-छोटे कार्य करते हुए बहुत दिन बीत गये हैं। अब एक बड़े कार्य मे हाथ डालना होगा।

इस प्रकार अपने साथियो को सावधान करके मघा

राजकचहरी के आगे जा बैठा । उसने अपने शिष्यो से फिर कहा—हम लोगो को पकड़ने के लिये हथियारो से लैस सेना आ रही है । अब तुम क्या करोगे ?'

शिष्यों ने कहा—'आप गुरु हैं । हम आपके शिष्य हैं । जहा गुरु-शिष्य का पवित्र नाता होता है, वहा तर्क-वितर्क को स्थान ही नही रहता । तर्क-वितर्क करना पडितो का काम है, हमारा नही । आप जो कुछ करने को कहे वही हम करने को तैयार है ।'

मघा—'तुम सब ने मिलकर तो अकेले मुझ पर ही सारी जिम्मेदारी डाल दी है । अत मुझे यही कहना है कि अब हमें एक महान् कार्य करना है । अतएव मैं जो करू, वही तुम सब भी करते चलना । ऐसा करने मे न तो तुम डरना और न पीछे पैर रखना । मैं तुम सबसे आगे रहूगा । बस, दृढ प्रतिज्ञा करो कि तुम सब मेरा ही अनुकरण करोगे, मैं जो कुछ करूगा वही तुम भी करोगे ।'

शिष्य—'हम लोग तो सब-कुछ अपने सिर ओढ लेना चाहते थे और आपको सब प्रकार के सकटो से बचा लेना चाहते थे, पर जब आप हमारे आगे रहने वाले है तो हम आपके पीछे चलने मे क्यो आनाकानी करने लगे ?

जैसे युद्ध मे सच्चा सेनापति आगे रहता है, उसी प्रकार कष्ट सहन करने मे सच्चा सेवक सदा आगे रहता हैं ।

मघा अपने शिष्यो के साथ न्यायालय के सामने बैठा

ही था कि सेना आ पहुची । राजकर्मचारियो ने सेना-नायक से कहा—'देखिये, सब बदमाश इकट्ठे होकर वहां बैठे हुए हैं । वे इतने लापरवाह हैं कि सेना से भी नहीं डरते । वे बहुत बहादुर और निडर हैं । अतएव उन्हे पकडते समय सावधानी रखने की आवश्यकता है ।'

सेना-नायक ने कहा—'यह बहुत अच्छा हुआ, जो इन्हें खोजने के लिए हमे भटकना नही पड़ा ।'

राजकर्मचारी बोले—'हमे भय है, ये लोग कही आपके ऊपर हमला न कर बैठे ।'

सेना-नायक ने उत्तर दिया—'हम लोग इतने कायर नही कि उनके हमले से भाग खड़े हों । हम लोग शूरवीर है । इसके अतिरिक्त महाराज ने हमे अधिकार दे रखा है कि हमला होने की हालत मे हम गोली चला सकते हैं ।'

एक ओर जहा ऐसी शूरवीरता बघारी जा रही थी, वहा दूसरी ओर मघा अपने शिष्यो को समझा रहा था—'तुम्हे पूर्ण शान्ति रखनी चाहिये । जरा भी शान्ति भग न होने देना और जैसा मैं कहू, वैसा ही करना ।'

सैनिक मघा और उसके साथियो के सन्निकट आ पहुचे । उन्हे देखते ही सैनिक आपस मे कहने लगे—'ये तो विद्रोही से नही जंचते । इनके मुखमुद्रा पर विद्रोह की रेखा तक दिखाई नही देती । जो कुछ हो, हमे आज्ञा-पालन करना है । इनके विद्रोही होने न होने का उत्तरदायित्व हम पर नही है । यह उत्तरदायित्व तो इन राजकर्मचारियो पर है ।'

सेना-नायक ने मघा और उसके शिष्यो से कहा—'तुम लोगो ने गाव में वडा जुल्म ढहाया है। अब विलम्ब किये बिना फौरन ही हथकड़ी-वेडी पहन लो और हमारे साथ चलो। महाराज ने तुम्हे गिरफ्तार कर लाने का आदेश दिया है।'

सेना-नायक की बात सुनते ही मघा और उसके साथियो ने अपने-अपने हाथ लम्बे कर दिये। सैनिको ने उन्हे हथकड़ी पहना दी। इसके बाद बेड़ी पहनने को कहा गया तो सब ने पैर लम्बे कर दिये। उनके पैर बेडियो से जकड दिये गये। हथकडियां और बेडिया पहना कर सैनिक ऐसे प्रसन्न हुए मानो वडा जंग जीत लिया हो इधर मघा और उसके शिष्य सत्य के आभूषण पाकर प्रसन्न हुए। चोरी, अत्याचार या अन्याय करके हथकडी-बेडी पहनना बुरी बात है, पर चोरी अत्याचार या अन्याय का प्रतिकार करने के उपलक्ष्य मे हथकड़ी-बेड़ी पहननी पडे तो सच्चे सेवक को इन्हे 'सेवा के आभूषण' समझकर प्रसन्न होना चाहिये। हथकडी-बेड़ी ही सच्चे सेवक के सर्वश्रेष्ठ आभूषण है।

सैनिको ने जब मघा और उसके शिष्यो को गिरफ्तार करके हथकडी-बेड़ी पहनाई, तब तक गाव भर के लोग जमा हो गये थे। वे सब मघा की ओर इशारे की प्रतीक्षा करते हुए देख रहे थे। मघा एक इशारा करे और सारी फौज को मार के मारे भागने की जगह न मिले! सेना कदाचित् हमे मारने दौडेगी तो भी तो कितनो को मारेगी? मघा ने जनता के भाव समझ लिये। उसने भडकी हुई भीड़ से कहा—'अगर आप लोग हमारा हित चाहते हैं तो

जरा भी अशान्ति न होने दे । हम आप से यही सहायता चाहते है कि आप सब लोग एकदम शान्त रहे । अगर आपने शान्ति-भग की, तो इतने दिनो के किये पर पानी फिर जायगा और हमारे साथ आपका भी अहित होगा । अतएव सब की भलाई के खातिर सब लोग पूर्ण रूप से शान्त रहे ।'

सैनिक यह अद्भुत और अपूर्व दृश्य देखकर आश्चर्य मे पड गये । यह सब है क्या मामला ? उनकी समझ में कुछ न आया । इतने अधिक शान्त मनुष्यो को विद्रोही कैसे करार दिया गया है ? उन्होने सोचा—हमारा कर्त्तव्य आज्ञा पालन है ।

सेना-नायक ने मघा और उसके साथियो से चलने को कहा । तेतीसो सेवक हथकडी-बेडी खनखनाते हुए धीरे-धीरे रवाना हुए । उनकी बेडियो की आवाज बीकानेरी स्त्रियो के गहने की झन्कार—सी सुनाई पडने लगी । लोग उनकी हथकडी-बेडी पहने जाते देख आपस मे कहने लगे—'राज्य-शासन कैसा अत्याचारी और राक्षसी है जो ऐसे सत्पुरुषो को भी ऐसी असह्य यातनाए दे रहा है !' ग्राम-वासियो को दु खी होते देख मघा ने कहा—भाइयो, आप दु.खी न हो । हम अकेले नही है, हमारे साथ परमात्मा भी है ।'

जब सैनिक मघा के दल को लेकर रवाना हुए तो गांव वालो में से कितनेक रोने लगे, कितनेक चीख मारने लगे और कुछ समझदार लोग दूसरो को समझाने लगे—हमे घबराना नही चाहिए । आज रात्रि का अधंकार है तो

कल सत्यरुपी सूर्य का आलोक होगा और आपत्ति रुपी अन्धकार हट जायगा। सत्य-सूर्य का उदय होने पर सबका कल्याण होगा। अतएव हमे रोना-चीखना नही चाहिए। धीरज रखना उचित है। अगर हम मघा का सचमुच सम्मान करते है तो हमे मघा ने जिस मार्ग का प्रदर्शन किया है, उसी मार्ग पर और अधिक दृढता से अग्रसर होना चाहिये।'

मघा—दल को लेकर सैनिक राजगृह आ पहुचे। कर्मचारी पहले ही राजा के पास पहुचे थे। उन्हे भय था, कही कोई राजा के कान न भर दे। अतएव राजा के पास आकर वे बोले 'महाराज! आपकी विजय हुई। विद्रोही सब पकड़े गये हैं। भला, आपके प्रबल प्रताप के सामने उनकी क्या चल सकती है? आपकी सेना भी बहुत योग्य है। उसकी बदौलत वे लोग इतनी जल्दी पकड मे आ सके है। यो उन्हे काबू मे लाना कोई सरल काम न था।

मघा और उसके साथियो को भयकर अपराधियो की भाति राजा के सामने उपस्थित किया गया। राजा, कर्मचारियो की बातो मे आ गया और अपराध की जाच-पडताल किये बिना ही, जोश मे आकर कहने लगा—'नागरिक लोगो के सामने इन तेतीसो लुटेरो को हाथियो के नीचे दबोच कर कुचलवा डालो।'

राज-कर्मचारियो ने राजा की आज्ञा के अनुसार सारी व्यवस्था कर डाली। नगर के नर-नारियो की भीड़ राजमहल के मैदान मे, राजा का नया कौतुक देखने के लिए

जमा हो गई । मघा और उसके साथी यथासमय मैदान में लाये गये । उनसे कहा गया—'अपने इष्टदेव का अन्तिम समय मे स्मरण करलो । अब तुम्हे तुम्हारे कृत्यो का फल मिलने ही वाला है ।'

मघा यह सुन कर वहुत प्रसन्न हुआ । वह विचारने लगा 'आज हमें अपने कृत्यो का फल मिलेगा, यह वडी अच्छी वात है ।' फिर उसने अपने शिष्यो से कहा—'तुम लोग मेरे कहने से नही, वरन् अपनी-अपनी इच्छा से मेरे शिष्य वने हो । तुम्हे सकट के समय जरा भी घवराना नही चाहिए । मै सब से आगे सोऊंगा । हाथी सबसे पहले मुझे रौंदेगा । तुम सव मेरे पीछे रहोगे । देखो, घवराना नही । धीरज रखना ।'

मेरे प्यारे शिष्यो ! इस प्रसंग पर उच्च भावनाओं द्वारा अपना चित्त खूब प्रसन्न रखना । उच्च भावनाएं चित्त को प्रसन्नता के लिए अत्यन्त आवश्यक है ।' हमने भलाई का काम किया और हमे ही घोर दण्ड क्यों मिल रहा है—ऐसा बुरा विचार मन मे उदित न होने देना । यह भी मत सोचना कि 'क्या अच्छे कामो का बुरा फल मिलना ही धर्म या ईश्वर की आराधना का फल है ? जब हम हाथी के तले रौंदे जा रहे है, तव भी धर्म अगर आड़े नही आता तो फिर धर्म कहा है ?' ऐसी दुर्भावना मन मे न उगने देना ।

अनेक-जन्म-ससिद्धिस्ततो याति परा गतिम् ।

—गीता

बुरी भावना को अपने पास न फटकने देना। तुम सामान्य वृक्ष और पृथ्वी से भी हीन सिद्ध न होना। पत्थर मारने वाले को वृक्ष लौट कर पत्थर नही मारता। इसके विपरीत वह उसे मधुर फल देता है। वृक्ष कभी यह नही सोचता कि मैं पत्थर मारने वाले को मधुर फल क्यो दू ?

'यह न समझना कि यह अपने कर्त्तव्य-पालन का परिणाम है। यह संकट कर्त्तव्य निष्ठा की परीक्षा है, फल नही। प्रकृति से मैंने यह सीखा है कि जब आम के बौर आते है तो कोयल 'कुहू-कुहू' कर मधुर स्वर मे कूंजने लगती है। कोयल का मधुर स्वर सुन कर कौवे उसे सताने दौड़ते है। किन्तु कोयल यह कभी नही सोचती कि यह मुसीबत मेरे मधुर स्वर का फल है। कौवे उसे सताते है, आक्रमण करते हैं, फिर भी कोयल अपना मधुर कूंजना नही त्यागती।

मघा ने अपने शिष्यो को धर्म की महत्ता समझाते हुए कहा—'भाइयो ! हरगिज यह नही समझना कि इस संकटकाल में हमारे कोई सहायक या रक्षक नही है अथवा सभी पाप रूपी राजा के ही अनुचर हैं। यहां पाप का ही राज्य है और उससे डर कर हमारी कोई सहायता नही कर रहा है। विश्वास रखना, हमारा कोई सहायक और सरक्षक है, और वह है, —सत्य धर्म।'

मघा ने अपने शिष्यो को भावना द्वारा आत्मिक शक्ति का परिचय दिया। मघा के हृदय मे तो यह भावना साकार रम रही थी। वह दूसरो को उपदेश देने मे विश्वास नहीं

करता था। वह उपदेश को अपने जीवन मे मूर्त रूप देता था। मघा ने जब मदोन्मत्त हाथी को सामने दौडते आते देखा तो, सबसे पहले मेरे ऊपर पैर रखे—इस विचार से वह सबके आगे लेट गया। उसने शिष्यो से अपने पीछे लेट जाने को कहा। यह हाल देख कर उपस्थित जनता मे कोलाहल मच गया। लोग आपस मे कहने लगे—'क्या यह चोर-लुटेरे-से जान पडते हैं? इनके चेहरे शान्ति से सुशोभित हो रहे हैं। कैसी अनूठी शान्ति और उज्ज्वलता है। पापियो के मुख पर क्या ऐसी अनुपम आभा दृष्टिगोचर हो सकती है? लोगो की सहानुभूति मघा-दल की ओर उत्पन्न हुई और वे उस दल के सत्य के प्रबल प्रभाव से प्रभावित होकर चिल्लाने लगे। उनमे से कितनेक लोग करुणापूर्ण रुदन करने लगे। जान पडता था—मघा ने अपनी भव्य भावना से सबका हृदय जीत लिया है।

मदिरा के नशे मे उन्मत्त और सत्ता के मद मे मस्त राजा अभिमानपूर्वक कहने लगा—'देरी न करो इन बदमाशों पर हाथी पेल दो और इनका कचरघान कर डालो।'

राजा के आदेश से महावतो ने हाथी छूटा छोड़ दिया मदमस्त हाथी दौडता-दौडता मघा-दल के पास आया उसने मघा को सूंघा। जैसे—नाग दमनी को सूंघते ही भाग जाता है, उसी प्रकार वह मघा को सूंघते ही पीछे लौट पडा। यह अद्भुत दृश्य देख कर दर्शको की प्रसन्नता का पार न रहा। पर मघा के विरोधी कर्मचारी कहने लगे—'अन्नदाता! देखी आपने इन बदमाशो की बदमाशी ये लोग तो जादू भी जानते है।'

राजा के हुक्म से दूसरा हाथी लाया गया, पर वह भी पहले हाथी की तरह मघा को सूघ कर वापस भाग गया।

इस प्रकार तीसरा, चौथा, पाचवा, छठा और अन्त मे सातवा हाथी लाया गया। किन्तु तब आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब वे सब पहले हाथी की तरह मघा को सूघ-सूघ कर वापस लौट भागे।

चकित कर देने वाली यह अभूतपूर्व घटना घटते देख राजा सोच-विचार मे पड गया। उसने मन ही मन कहा-यह प्रभाव जादू का नही हो सकता। इस घटना का कारण कुछ और ही होना चाहिये। इस प्रकार कर राजा ने मघा को अपने पास बुलाया।

राजा की आज्ञा पाते ही एक सिपाही मघा के पास गया और उससे कहने लगा'—उठो, उठो, महाराज तुम्हे बुला रहे हैं।'

मघा—हमे बुलाकर महाराज क्या कहना चाहते है? हमे तो यह देखना है कि वास्तव मे हमारे भीतर पाप है या नही? अगर हम पापी है तो हाथी के पैरो तले कुचल जाना ही योग्य है।

सिपाही—'तुम्हे जो कहना हो, महाराज से ही कहना।

मघा—'ठीक, चलिए। तैयार हू।'

मघा उठा, उसने अपने शिष्यो से कहा—'मैं अभी

लौट कर आता हूं । तुम लोग इसी प्रकार लेटे रहना, रंच मात्र भी डरना नही । यह न समझना कि मैं तुम्हे छोड़ कर जा रहा हूं । मै अभी लौट कर आता हूं ।'

मघा राजा के पास आया । राजा ने मघा से पूछा 'तुम कोई मत्र जानते हो ?'

मघा—'जी हां ।'

राजा—'कौन-सा मंत्र जानते हो ?'

मघा—'जो काम अपने-आपको अच्छा लगता हो, वही काम दूसरो के लिये करना ।' यही मेरा मन्त्र है ।

राजा—और क्या जानते हो ?

मघा—इसके सिवाय तो मंत्र के साधन जानता हूं ।

राजा—साधन कौनसे है ?

मघा—किसी की हिंसा न करना, असत्य भाषण न करना, किसी की चोरी न करना, व्यभिचार न करना और और मदिरापान न करना । इस मत्र के ये साधन है ।

राजा—क्या केवल यही मंत्र जानते हो ?

मघा—जी हां, मैं तो यही मत्र जानता हूं । इसे जान लेने पर किसी अन्य मत्र की आवश्यकता ही नहीं रह जाती ।

राजा ने मघा के हाथ को अपने हाथ मे लेकर कहा—'मत्र तो तुम्हारा बड़ा उत्तम है । क्या तुम इसी मंत्र का प्रचार करते थे ?

मघा—'जी हां, मैं इसी मन्त्र का प्रचार करता था।

राजा—'तब तो तुम राज्य की सहायता करते थे। इसमें तुमने बुरा क्या किया है ?'

मघा—के साथ बातचीत करके, उसके विरुद्ध शिकायत करने वाले गाव के कर्मचारियों को बुलवा कर, राजा ने उनसे पूछा—इन लोगो ने क्या अपराध किया था ? इन्होने गांव वालो को क्या हानि पहुचाई थी ?

कर्मचारी लोग राजा का प्रश्न सुनते ही घबडा गये। उन्हे यही न सूझ पड़ा कि क्या उत्तर दे ?

इस प्रकार घबराहट मे पडा देख राजा ने समझ लिया कि वास्तव मे ये कर्मचारी झूठे हैं। इन लोगो ने इस पर मिथ्या आरोप किया है। गाव वालो से पूछ कर पता लगाना होगा।

राजा ने गांव वालो को बुलाया। उनसे पूछा—सच-सच बताना, इन तेतीस अभियुक्तो ने कभी तुम्हे हानि पहुचाई है ? या दूसरो को हानि पहुचाते तुमने इन्हे कभी देखा है ?

गांव वाले एक स्वर से कहने लगे—अन्नदाता! इन लोगो ने मदिरापान से, वेश्यागमन से, जुआ खेलने से और झगडा-टन्टा करने से रोका है। यदि यह हमारी हानि हो तो इन्होने हमे हानि पहुंचाई है। इसके अतिरिक्त और कोई हानि नही पहुंचाई।

राजा ग्राम-वासियो की बात सुनकर चकित रह गया। उसने कर्मचारियो से कहा—'इन लोगो ने क्या अपराध किया है, साफ साफ बयान करो। ग्राम-वासियो का कथन तुमने सुना है। मैंने तुम्हारा विश्वास करके बेचारे निर्दोष लोगो को सताया हैं। इसका उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है। भविष्य में इस प्रकार की झूठी फरियाद करने का साहस कोई कर्मचारी न करे, इसलिए यह आवश्यक है कि तुम लोगो को हाथी के पैरो तले कुचलवा डाला जाय।'

यह कथन सुन कर मघा ने राजा से निवेदन किया—यह आप क्या गजब कर रहे हैं?

राजा—ऐसे अपराधियो को ऐसी ही सख्त सजा मिलनी चाहिए।

मघा—राजन्! ये लोग अपराधी क्या, हमारे महान् उपकारी है। जिन लोगो ने आपके साथ मेरा साक्षात्कार कराया है, ऐसे उपकारक पुरुषो को ऐसी सख्त सजा नही मिलनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सत्य की प्रभावना मे ये निमित्त बने हैं।

राजा—भाई, तुम्हारी नीति अलग है और हमारी राजनीति अलग है। ऐसे अपराधियो को दण्ड न देकर साफ छोड दिया जाय तो राज्य में अत्याचारो की धूम मच जायगी इसे रोकने के लिए शैतानो को दण्ड मिलना ही चाहिए।

मघा—आपका कथन सत्य है। पर नम्रतापूर्वक मैं

यह कहना चाहता हूं कि अगर ये लोग वास्तव मे शैतान ही है तो यह शैतानियत आई कहां से ? आपने राज्य के कायदे-कानून बनाये हैं और आपने ही इन्हे कर्मचारी बनाया है। इस दृष्टि से तो सर्व--प्रथम अपराधी आप ही ठहरते है ।

राजा सच्चा क्षत्रिय था । उसने मघा के वाक्यो की सच्चाई स्वीकार की और अपने को अपराधी मान लिया । कहा—मैं भी दड लेने को तैयार हू और इन सब पहले मैं हाथी के पैरो से कुचले जाने को तैयार हूं ।

मघा—आप किसलिए हाथी के पैर के नीचे रुदने को तैयार होते हैं ?

राजा—मैंने पाप किया है । उस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये ।

मघा—महाराज ! हाथी के पैर के नीचे आकर, आत्म-हत्या करने से पाप का प्रायश्चित्त नही होता पाप के लिए पश्चात्ताप करने से पाप का विनाश होता है। अज्ञान के कारण आपने पाप किया था । आपका वह अज्ञान हट गया है और उसकी जगह ज्ञान प्रगट हो गया है । अगर आप ज्ञान-पूर्वक पश्चात्ताप करेंगे तो नि सदेह पाप का नाश हो जायगा । फिर हाथी के पैर के नीचे कुचल कर प्राणत्याग करने की क्या आवश्यकता है ?

राजा—तुम यथार्थ मे सत्पुरुष हो । जान पड़ता है मानो साक्षात् ईश्वर सामने आ खड़ा हो । जब तुम्हे देखता

हूं, तब ऐसा लगता है जैसे ईश्वर को देखता होऊं। सचमुच तुमने सच्चा आत्मबल पा लिया है।

राजा इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने सिंहासन से उठ कर मघा का हाथ पकड़ा और कहने लगा—यह राजसिंहासन तुम्हारे योग्य हैं। तुम्हारे सामने मुझे तो जमीन पर बैठना चाहिए।

मघा ने नम्रतापूर्वक कहा—राज्य का भार मुझ पर न लादिये। राज्य का भार मेरे सिर पर लादने से मैं जो सेवा कार्य कर रहा हू, वह न कर सकूंगा। आप अब निष्पाप बन गये है। आप ही सुख से राज्य कीजिए और प्रजा को सुखी बनाइए।'

राजा ने कहा—हे सत्पुरुष! आपके दर्शन से मुझे परमात्मा की जैसी प्रतीति हुई है, वैसी प्रतीति लाखो पुस्तके पढने से और लाखों विचार करने से भी नही हुई थी। वास्तव मे आपके भीतर ईश्वरीय बल है।

अन्त मे राजा ने मघा से कहा—राज्य-शासन अपने हाथ मे लीजिए और मुझे बताइये कि राज्य-शासन किस प्रकार करना चाहिए।

मघा ने कहा—राज्यशासन किस प्रकार चलाना चाहिए? आप यही जानना चाहते हैं न? ठीक है। मैं यह बताऊंगा।

ग्रन्थो मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि राजा ने मघा

को अपना प्रधान-मन्त्री बनाया और उसके साथियो को महत्त्वपूर्ण पदो पर नियुक्त किया ।

मघा ने अपने शिष्यों से कहा—देखो, हम लोग निष्पाप थे, इसलिए हाथी हमें न कुचल सका । जब हाथी जैसा पशु भी पाप और पुण्य का भेद समझता है तो हमे कम से कम इतना अवश्य समझना चाहिए कि परिश्रम किये बिना खाना हराम है और पाप-प्रवृत्ति से सर्वथा बचने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध होना चाहिए ।

मघा ने प्रधान का पद स्वीकार कर मगध देश को खूब सुखी और सम्पन्न बना दिया । मगध देश की प्रजा सुख से रहने लगी ।

१४ : धर्मवीर धन्ना

जिसमें मनुष्य की दया प्रकट होगी, वह धन्ना की तरह त्याग करेगा । पहले बताया जा चुका है कि धन्ना ने अपने भाइयो को प्रसन्न करने के लिए बहुत प्रयत्न किया, पर वे लोग उससे प्रसन्न न हुए । उनका विरोध निरन्तर बढता ही चला गया ।

धन्ना भाइयों का सारा वैर पीकर शिव बन गया। पुराणो में कहा है कि समुद्र मथने पर रत्न और अमृत आदि पदार्थ निकले। उन पदार्थो को तो सब ले गये, पर जहर निकला, कौन पीये? अगर उसे न पीया जाय तो मनुष्यों को मरना पड़ेगा। तब सब ने मिल कर महादेव से प्रार्थना की—यह विष आप पी जाइए। महादेव इस विष का पान कर गये और मरे भी नही। वे उसे हजम कर गये। यह अलंकार है। भगवान् महावीर ने भी चण्ड-कौशिक का सारा जहर पी लिया था।

धन्ना अपने भाइयो का जहर पी गया। वह लंगोटा लगाकर भिखारी का भेष बना कर दरिद्रनारायण बन गया। उसने घर की समस्त सम्पदा भाइयो के लिये छोड दी।

धन्ना ने विचार किया—त्याग से मेरा जीवन सुधरेगा। वास्तव में मेरे भाई नही बिगड़े हैं, मैं बिगड़ा हूं। मैंने अपने भाइयो को 'बाप' कहा है और मेरे बिगडने से वे बाप बिगड रहे हैं। उनको सुधारने के लिए पहले मुझे सुधरना होगा। स्वयं बिगडैल है, वह दूसरो को क्या सुधारेगा? अतएव उन्हे सुधारने के लिए पहले अभय अहिंसा आदि सद्गुणो का लाभ करके मैं सुधरूंगा और सबसे प्रेम करके 'विश्वराज' बन जाऊंगा।

जहां कही मुझे आर्त्तनाद सुनाई पडेगा, कोई पीडित पुरुष पुकार रहा होगा, वही मैं भागा-भागा जाऊंगा और उन दुखियों के आसू पोछूंगा। जो पंगु है, उनका पैर

बनूंगा, जो निस्सहाय है उनका यथाशक्ति सहायक बनूंगा। जिन्हे सेवक की आवश्यकता होगी, उनकी आवश्यकता पूरी करूंगा। मैं दुखियो का दुख दूर करूंगा।

धन्ना अपने भाइयो की अनेक बुराइयो और विरुद्ध व्यवहारो को पी गया और आप लोग अपने दोषो के प्रति अन्धे बन कर दूसरे के दोषों को देखने मे कितनी कुशलता धारण करते हैं!

धन्ना कहता है मुझ मे ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाय कि मैं डर को ही डरा दूं, मगर स्वयं न डरूं। मेरा नाम सासारिक प्राणियो मे ही रहे, पर मेरे कर्त्तव्य विरक्तो से भी बढकर हो।

धन्ना कहता है—मैं अपना बाह्य वेष तो गृहस्थ का ही रखूंगा, फिर भी ज्योति जगाऊंगा। आज विरोचित वैराग्य के विषय मे जो सन्देह फैला हुआ है, मैं उसका निवारण अपनी साधना द्वारा करूंगा कि अहिंसा वीरो की है या कायरो की?

धन्ना कहता है—मैंने स्नेह का धन और स्नेह की झोपड़ी छोड दी है, अतएव मेरे स्नेह की संकीर्ण सीमाएं आज समाप्त होती है। अब सारा ससार मेरे लिए समान है। ससार के सभी प्राणी मेरे भाई है, समस्त ससार मेरा घर है और सारे ससार का वैभव ही मेरा वैभव है। आज से मै अपने व्यक्तित्व को विस्तीर्ण बनाता हूं।

धन्ना कहता है—प्रभो! मेरे अन्तःकरण में अत्यन्त

शुचिभावना उत्पन्न हुई है, लेकिन स्वार्थ की भावना उत्पन्न होकर कही इस भावना को दबा न देवे ! मनुष्य का मन सिनेमा के दृश्यों की भाति अस्थिर है । एक भाव उत्पन्न होता है और फिर तत्काल ही दूसरा भाव उसके स्थान पर अपना अधिकार कर बैठता है । विशुद्ध भावनाको मलिन भावना उसी प्रकारग्र स लेती है, जैसे चन्द्र को राहु ग्रस लेता है । अतएव हे प्रभो ! मैं आपसे आपका बल चाहता हू । आपकी शरण चाहता हूं । मुझे दया का ऐसा दिव्य बल प्रदान कीजिए जिससे स्वार्थ की मलिन भावना मुझे अपने विशुद्ध विचारो से विचलित न कर सके ।

इस प्रकार की भावना करता हुआ धन्ना घर से निकल पडा । चलते-चलते जब दोपहर हो गया, तब उसे भूख लगी । धन्ना अत्यन्त प्रसन्न हुआ । वह थक कर एक वृक्ष की छाया मे बैठ गया । सामने ही एक किसान खेत मे हल चला रहा था । वह भी विश्राम करने के लिये उसी वृक्ष के नीचे आ गया । यद्यपि धन्ना भिखारी के भेष में था, फिर भी भाग्य और आकृति छिपाये नही छिपती । धन्ना को गौर से देख कर किसान सोचने लगा—यह भिखारी कोई साधारण भिखारी नही जान पड़ता । यह तो कोई महापुरुष मालूम होता है । किसान इस प्रकार मन ही मन सोच रहा था कि उसी समय उसके घर से उसके लिए रोटी आ गई ।

सेठ लोग तो आड़ मे बैठ कर भोजन करते हैं परन्तु किसानो मे आज भी यह बात देखी जाती है कि वे दूसरों को खिलाकर आप खाते हैं । जंगली कहलाने वालो मे भी यह रिवाज-सा है कि अगर भोजन करते समय भील के

यहा दूसरा भील आ जाए तो वह उसे थोडा खिलाता ही है। पर जगली जाति के रिवाज को सभ्य समाज क्यों अपनाने लगा ?

जिसके हृदय मे जैसी भावना होती है, उसे वैसा आदमी मिल ही जाता है। अन्नदान के समय पात्र-कुपात्र का विचार नही किया जाता।

रोटी आने पर किसान ने धन्ना की मनुहार की। धन्ना ने आधुनिक सभ्योचित मायामयी सभ्यता के वश होकर असत्य का आश्रय नही लिया। उसने यह नही कहा कि मुझे भूख नहीं है। उसने कहा—मैं भूखा तो अवश्य हू पर मेरा प्रण है कि मैं काम किये बिना मुफ्त का भोजन नही करता। अगर तुम रोटी खिलाना चाहते तो पहले काम बताओ।

किसान चकित रह गया। ऐसा भिखारी तो उसने आज तक नही देखा। अधिकाश भिखारी मुफ्त का खाने के लिए ही भिखमगे बनते हैं, पर एक यह है जो बिना काम किये खाने से इन्कार करता है। तिस पर यह बडा सुकुमार है। इससे किसानी का काम कैसे होगा ? मेरे पास इस काम के सिवाय और क्या काम है ? इस प्रकार सोच कर किसान बोला—तुम अत्यन्त सुकुमार हो। मैं बडा कठिन काम करता हू। यह काम तुमसे न होगा। इसके अतिरिक्त मेरा भी एक प्रण है। मैं जिसे रोटी खिलाता हूं, उससे काम नहीं लेता। क्या तुम मेरा प्रण भग करना चाहते हो ?

धन्ना—नही । मैं आपका प्रण भग नही करना चाहता, पर आप भी मेरा प्रण भंग न होने दीजिए ।

किसान असमंजस में पड़ गया । उसने देखा—अतिथि का प्रण दृढ़ है और वह इतना निस्पृह भी मालूम होता है कि भूखा ही रह जायगा ! तब वह बोला—अच्छा, पहले भोजन कर लो । फिर कुछ न कुछ काम भी बता देंगे ।

धन्ना दृढ रहा । बोला—ऐसा न होगा । पहले काम । करूगा फिर भोजन करूंगा । बिना काम किये भोजन करने का अधिकार किसको है ?

आज भोजन का राज्य है । पहले भोजन, फिर काम पहले के पच लोग भी काम करने के पश्चात् जीमते थे । आज पचो के पास कोई जाय तो उत्तर मिलेगा—भाई, 'तुम्हारे पचड़े तो लगे ही रहेगे, पहले पेट तो भर लेने दो ।' 'बताइए, ऐसे पच, पंच रहे, या टुकड़ेल ? श्रीकृष्णजी दुर्योधन के घर गये थे । दुर्योधन ने कहा-भोजन तैयार है । पहले भोजन कर लीजिये । कृष्णजी ने कहा—पहले काम कर ले, तब भोजन करेंगे । दुर्योधन ने आग्रह किया—नही, पहले आतिथ्य स्वीकार कर लीजिए । आखिर यहा तक नौबत पहुची कि कृष्णजी दुर्योधन के यहा से चल दिये और उन्होने विदुर के घर आकर भोजन किया !

किसान ने धन्ना से कहा—मेरे यहा दूसरा काम तो है नही क्या तुम हल चला सकोगे ? पर हल हाकना कठिन और मेहनत का काम है ।

धन्ना—मैं हल चलाने का काम बखूबी कर सकता हूं । धन्ना सेठ मिट कर हलवाहा बना उसने कहा—जिसे हल हाकना नही आता, उसे अन्न खाने का क्या अधिकार है ? मैं अन्न खाना चाहता हू तो मुझे हल चलाना आना ही चाहिए । मैं भूखा हूं । अगर तुम्हे करुणा आती हो तो काम दो ।

किसान निरुपाय था । वह अतिथि को भूखा नही रहने दे सकता । उसने कहा—अच्छा, वह है हल । उसे चलाओ और फिर भोजन करना ।

धन्ना ने हल चलाने की विधि से हल चलाया । वह ऐसी कला जानता था, जिससे बैलो को कष्ट भी न हो और जमीन भी भली-भाति जुत जाए । किसान उसकी हल चलाने की कला देख कर दग रह गया । वह भी हल के साथ-साथ चला !

धन्ना ने हल चलाया तो जमीन के ढेले ऊपर आये हल चलने के साथ ही खनखन शब्द होने लगा । किसान ने खनखनाहट की ध्वनि सुन कर धन्ना को हल ठहराने के लिए कहा । लेकिन धन्ना हल हाकता ही गया और उसे वहा ठहराया, जहा खेत की मोड़ आ गई । किसान ने देखा, धन का एक समुचा हंडा ऊपर आकर बिखर गया है । वह सोचने लगा—यह खेत सात पीढियो से मेरे पास है । मैं हमेशा हल हाका करता हूं मगर आज तक कभी धन नही निकला था । किसान बहुत प्रसन्न था । उसने धन्ना को वह दिखाया । धन्ना ने साधारण भाव से कहा—इसके

लालच में पड कर भूखे रहना ठीक नही। चलो, रोटी खाए।

धन्ना की इस निस्पृहता से किसान के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह सोचने लगा—यह कोई देव तो नही है! इसकी ऐसी शक्ल है, फिर भी हल चलाने का काम इसने इतनी सुन्दरता से किया! हल चला कर इसने धन निकाल दिया है और अब ऐसी बातें करता है—मानो इसके लिए धन कोई वस्तु ही नही है! पहले इसे रोटी दे रहा था, तब इसने लेना स्वीकार नही किया, अब उतावला होकर रोटी माग रहा है!

किसान ने धन्ना से कहा—कहाँ तो तुम्हारा यह काम और कहां मेरे यहा की रूखी-सूखी मोटी रोटी! मोटी रोटी और मामूली तौर पर उबाला हुआ बिना मसाले का शाक तुम खा सकोगे? मुझे सन्देह है कि तुम इन रोटियो को पचा सकोगे, पर लो खाओ।

धन्ना—तुम भी खाओ और मैं भी खाऊं। मैंने तो एक ही चास जोता है, मगर तुम ने तो सारा खेत जोता है।

धन्ना और किसान दोनो रोटी खाने लगे। धन्ना को वह मोटी रोटी कैसी लगी होगी?

'मीठी!'

यद्यपि रोटी जाट के घर की है, शाक भी अच्छा

स्वादिष्ट न होगा, लेकिन धन्ना को भूखी लगी है। कडी भूख मे जैसा भोजन मिल जाय, वही मीठा लगता है।

धन्ना रोटी खाते-खाते कहता है—राम की वात आज ही याद आई! राम शबरी के दिये हुए फल खाकर कहते थे—लक्ष्मण, राजा जनक के घर षटरस भोजन किया और माता के हाथ के भोजन का भी स्वाद चखा, लेकिन सच्चा भोजन तो आज ही मिला है। महाराज जनक ने दामाद के नाते जिमाया और माता ने पुत्र के नाते, लेकिन इस भीलनी ने किस नाते जिमाया है? भीलनी के साथ मेरा क्या रिश्ता है? उसे मुझ से क्या स्वार्थ है? इस भोजन में नि.स्वार्थता की जो अनुपम मधुरता है, वह उस भोजन मे नही थी।

धन्ना भोजन करके जाने लगा। किसान ने कहा—जाते कहां हो? यह तुम्हारा धन है। इसे साथ लेते जाओ।

कृषक की भावना पर विचार करो। उसने धन्ना को प्रेमपूर्वक भोजन कराया और उसके खेत में जो धन निकला, वह भी धन्ना का ही! इस भावना से किसान उसे धन ले जाने का आग्रह करता है। वह कहता है—भाई, अपना धन तुम्ही बटोरो। मुझे कहां कारागार में फंसाते हो?

धन्ना—मैंने तो रोटी के लिये हल चलाया था, सो रोटी मिल गई। इसके सिवाय मेरा कुछ नही है। तुम्हारे खेत में जो निकला, वह सब तुम्हारा है।

धन्ना सोचने लगा—यह किसान भी धन्य है ? यह कृतपुण्य है । मैं सोचता था, मैं त्यागी हूं । पर मेरे घर मे तो धन भरा था और यह किसान खेती करके पेट पालता है । इसी के खेत मे, इसी के हल से अचानक धन का चरू निकला और यह कहता है—अपना धन लेते जाओ इसके त्याग के सामने मेरा त्याग फीका पड़ गया । जब मैं घर का उतना धन छोड आया हू तो यह धन क्यो लू ? अपने भाइयो को सुधारने के लिये घर का धन छोडा तो यह धन मिला । अगर किसान को सुधारने के लिये इसे भी त्याग दूगा तो आगे और मिलेगा । धर्म का माहात्म्य साधारण नही है । धर्म का आचरण तनिक भी वृथा नही जाता ।

धन्ना किसान से अपना हाथ छुडा कर चल दिया । किसान चिल्लाता ही रहा, लेकिन धन्ना न लौटा ।

धन्ना के चले जाने पर किसान सोचने लगा—हम तो खेत से केवल अन्न उत्पन्न करने वाले है । खेत मे जो धन निकला है, वह मेरा नही, राजा का है । इस प्रकार विचार कर वह राजा के पास पहुंचा । उसने राजा से कहा—आज धन्ना नामक एक दरिद्री-सा दिखाई देने वाला आदमी मेरे खेत पर आया था । वह ऊपर से ऐसा मालूम होता था पर था कोई बड़ा आदमी । उसने रोटी के लिये मेरे खेत मे हल चलाया, उसने खेत में एक चास निकाला उसी चास मे धन का एक चरू निकला । पहले तो मैंने उसे यो ही जिमाना चाहा पर वह नही माना । उसने चास चलाया और धन का यह चरू जमीन मे से निकला

यह चरू या तो उसका है या फिर आपका हो सकता है। वह तो उसे ले नही गया। अब आप कृपा करके उसे मगवा लीजिए। उस चरू पर मेरा अधिकार नहीं है। मैं उसे नहीं रख सकूंगा।

किसान की कैफियत सुन कर राजा ने कहा—वह निस्पृह पुरुष धन्यवाद का भागी है। अगर वह मुझे मिले तो मैं उसके पैरो मे गिरूं। पर वह तो चला गया। तुम हो, सो वह धन तुम्हीं अपने पास रहने दो।

किसान—अन्नदाता, जिस धन पर मेरा अधिकार नही है, उसे मैं कैसे रखू ? उस धन का उपयोग मैं नहीं कर सकूगा।

जब किसान धन लेने के लिए किसी भी प्रकार तैयार न हुआ तो राजा ने धन निकलने के स्थान पर उसी धन से एक गाव बसा दिया। उस ग्राम का नाम रखा गया—धनवर्गू। धन्ना के नाम पर उस ग्राम को जागीर करके उसी किसान को उसका पटेल बना दिया गया।

इस कथानक से यह प्रकट है कि जो भगवान का भरोसा रखता है और अपने जीवन को निरपेक्ष बना लेता है, वह धन्ना के समान वन कर कही और कभी कष्ट नहीं पाता। भगवद्भक्ति का ऐसा ही प्रभाव है। अगर आप भगवान की प्रार्थना करते हुए इस प्रकार निस्पृह बनेंगे तो आपको लक्ष्मी के लिए देश–विदेश नही भटकना पडेगा,

लक्ष्मी स्वय आकर आपके चरण चूमेगी और आपका कल-याण होगा ।

१५ : दैवी बल : दानवी बल

अयोध्या मे अवध-नरेश राज्य करते थे और काशी में काशी नरेश राज्य करते थे । अवध-नरेश सोचते थे कि हम प्रजा की रक्षा एव सेवा करने के लिये राज्य करते हैं और हमारा यह शरीर दिव्य तप करने के लिए है । दूसरी ओर काशी-नरेश का यह विचार था कि हम उच्च श्रेणी के भोग भोगने के लिये राजा हुए हैं । इसलिए सब अच्छे-अच्छे रत्न हमारे पास ही होने चाहिए । इस प्रकार दोनों राजा दो प्रकार की श्रद्धा के थे । यह तो नियम ही है कि जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैमा ही वन जाता है । कहा भी है—

श्रद्धामयोऽय पुरुष. यो यच्छ्द्धः स एव सः ।

अर्थात्—मनुष्य अपनी श्रद्धा के अनुरुप ही हो जाता है । जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही वन जाता है ।

इस उक्ति के अनुसार दोनो राजाओ की प्रकृत्ति उनकी अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार बन गई थी। अवध-नरेश ने अपना जीवन प्रजा की सेवा मे ही लगा दिया था इस कारण उनके राज्य मे तो उनका जय-जयकार होता ही था किन्तु अन्य-अन्य राज्यो मे भी वे आदर्श और कर्त्तव्य-निष्ठ राजा माने जाते थे। वे जनता मे प्रात स्मरणीय पुरुष बन गये थे। उधर काशीनरेश अपनी भावना पूर्ण करने के लिए प्रजा को प्रत्येक शक्य उपाय से चूसता था। उसकी प्रकृति इतनी स्वार्थमयी बन गई थी कि वह अपने सिवाय अपने आत्मीयजनो को भी अपने ही सुख की सामग्री समझता था। इस कारण उसका भृत्यवर्ग, यहा तक उसकी रानी भी उससे असन्तुष्ट रहती थी। सब लोग यही सोचते थे कि इस राजा का सुधार कैसे हो ? कौन इसे ठीक रास्ते पर लाये ? हे प्रभो, अगर राजा का सुधार न हुआ तो देश मे हाहाकार मच जायेगा।

एक बार अवधराज का जन्म-दिन आया। काशी के लोगो को भी पता चला कि आज अवध के महाराज का जन्म-दिवस है। यह जानकर काशीवासी प्रजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। सबका हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया। वहा के लोगो ने उत्साह के साथ उनका जन्मदिन मनाने का निश्चय किया। स्थान-स्थान पर पर दीपमालाए लगा कर, स्त्री-पुरुष एकत्रित होकर आनन्द मनाने लगे। सर्वत्र अवधेश की जय-जयकार होने लगी। प्रजा अवध के महा-राज के जन्म-दिन के उपलक्ष्य में हर्ष-विभोर होकर आनन्द मना रही थी कि काशी-नरेश भी अपने प्रधान के साथ उसी समय उस ओर से निकले। लोगो को उत्सव

मनाते देखकर प्रधान से राजा ने पूछा—आज यह उत्साह और उमग किसलिए है ? क्या किसी उत्सव का दिन है ? प्रजा मे वड़ी चहल-पहल नजर आती है ? मुझे तो पता ही नही कि आज कोई उत्सव दिवस है ।

प्रधान—महाराज, आज अवध के महाराज का जन्म दिन है । प्रजा इसी उपलक्ष्य में आनन्द मना रही है ।

प्रधान की बात सुनते ही काशीनरेश की त्यौरियां चढ गई क्रुद्ध स्वर मे वह कहने लगा—मेरे राज्य मे अवध-राज का जन्म दिवस मनाया जाता है ! प्रधान, तुम क्या व्यवस्था करते हो ?

प्रधान—महाराज, पृथ्वी के राज्य की सीमा होती है, प्रेम के राज्य की सीमा नही होती । ऐसी स्थिति में प्रजा को अवधेश का जन्म-दिवस मनाने से किस प्रकार रोका जा सकता है ? अगर मेरी बात पर आपको भरोसा न हो तो परीक्षा करके देख लीजिए । आप स्वय प्रजा को रोक-कर देखिए । आपको विदित हो जायेगा कि आपकी प्रजा अवधेश से कितना प्रेम करती है !

प्रधान की बात सुन कर राजा को आश्चर्य हुआ । मगर प्रजा से बात पूछने का साहस उसे नही हुआ । उसने सोचा—इस समय लोग हर्ष मे विभोर है । छेड-छाड़ करना उचित नही होगा ।

राजा किंचित् आश्चर्य और चिन्ता के साथ महल की ओर लौट गया । उसके हृदय मे यह बात काटे की

तरह चुभ रही थी कि मेरे राज्य में अवध-नरेश का जन्म-दिवस मनाया जाता है ! इस विचार ने उसके अन्त.करण में ईर्ष्या की आग धधका दी । अपनी सुलगाई आग मे वह आप ही ईंधन वनने लगा । उसे रात मे नीद नही आई । इधर-उधर करवट बदलने लगा । रानी से उसकी मानसिक व्यग्रता छिपी नही रही । रानी ने पास जाकर और राजा के शरीर पर अपना कोमल हाथ फेरकर पूछा—स्वामिन् ! आज क्या कारण है कि आपको नीद नहीं आ रही है ? आप इधर से उधर करवटें बदल रहे है और अशान्त मालूम होते है ।

राजा अभिमान के नशे मे था और यथार्थ वात कहने से उसके अभिमान को ठेस लगती थी । अतएव उसने रानी से कहा—'तुम स्त्री हो । तुम्हे कोई बात बतला दी जाय तो उससे क्या लाभ होगा ?'

रानी—यदि मुझसे कहने से कुछ नही हो सकता तो इस प्रकार करवटे बदलने से भी कुछ नही हो सकता आप मुझे अपने सुख-दु.ख की बात सुनने योग्य समझते है, तो कहिए ।

राजा ने कुछ नरम पड़कर कहा—मैंने ऐसा कहकर गलती की है । तुम ही मेरे हृदय की बात सुनने योग्य न होओगी तो कौन होगा ? बात यह है कि आज अपने राज्य में अवध के राजा का जन्मदिन मनाया गया है । प्रजा ने उत्साहवपूर्वक उत्सव किया है । मेरे राज्य मे किसी दूसरे

राजा का जन्म-दिवस मनाया जाना मेरे लिये असह्य है। इसी कारण मैं चिन्तित हू।

रानी—वास्तव मे यह बात चिन्ता के ही योग्य है। लेकिन चिन्ता करना किसी भी बीमारी का इलाज नही है। चिन्ता से दु ख घटता नही, बढ ही जाता है। जब हमारे सामने कोई चिंताजनक घटना हो तो चित्त को स्वस्थ रख कर उसके कारणो पर विचार करना चाहिए। अगर कारण समझ मे आ गया तो उस घटना का प्रतिकार करना सहज हो जाता है। चिन्ता तो स्थिति को अधिक खराब कर देती है।

राजा—समझ मे नही आता कि अवध के राजा ने हमारी प्रजा पर क्या जादू फेर दिया है?

रानी—नाथ, मेरी समझ में तो यह है कि हमारे हृदय की मधुरता और वाणी का मिठास ही सबसे बडा जादू है। जिसमे ये दो बाते होती है, वह अनायास ही दूसरो को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इसके बाद भलाई करने का नम्बर आता है। उस आकर्षण को स्थायी और प्रवल वनाने के लिए दूसरो की भलाई के काम करना आवश्यक है। अवध का राजा क्या काम करता है, जिससे अपनी प्रजा उसका जन्म-दिन मनाती है? आप इस बात पर विचार कीजिए और वही काम आप भी करना आरम्भ कर दीजिए।

राजा—इससे क्या होगा?

रानी—इससे यह होगा कि आपकी प्रजा अवध के राजा को भूल जायगी और आपका जन्म-दिवस मनाने लगेगी ।

रानी ने बावन तोले पाव रत्ती बात कही थी । मगर राजा को यह सलाह पसद नही आई । उसने कहा—आखिर तो तुम स्त्री ही ठहरी न ! तुमने स्त्रियों के योग्य ही बात कही है । तुम नही समझती कि मैं अवधनरेश की तरह कायर नही हू और प्रजा का गुलाम बन कर नही रह सकता । वह खाना-पीना भूल कर और ऐश-आराम भूल कर प्रजा के पीछे ऐसा लगा रहता है, जैसे उसका नौकर हो और उसी का अन्न खाता हो । मुझसे यह नही बन सकता । कदाचित् मैं ऐसा ही करूं तो भी यहां अवध राज का जन्म-दिवस मनाया जाना कैसे रुक सकता है ? मैं तो कोई और ही उपाय सोचूंगा ।

राजा का यह कथन सुनकर बेचारी रानी चुप हो गई । उधर राजा ने सेनापति को बुलवाया और सेना तैयार करने का आदेश देते हुए कहा—किसी को खबर न होने पावे । सेना का संचालन मैं स्वय ही करुगा और अयोध्या पर अपना झडा फहराऊगा ।

जैसे अंग्रेज सरकार दमन करके कांग्रेस की कीर्ति और शक्ति को नष्ट करने का प्रयत्न करती थी, उसी प्रकार काशीराज दमन का सहारा लेकर अवध नरेश की प्रतिष्ठा नष्ट करना चाहता है ।

सेनापति ने सेना तैयार की और काशी-नरेश के नेतृत्व मे रात्रि के समय उसने अयोध्या पर हमला कर देने का विचार किया। काशीनरेश की सेना अवध की सीमा पर पहु ची। अवध के सीमा-रक्षको ने राजा को समाचार दिया कि काशी नरेश सेना लेकर चढ आये हैं। अवध नरेश यह समाचार पाकर सोचने लगे—काशीनरेश के साथ मेरी कोई अनबन नही हैं। इस समय कोई ऐसा कारण भी उपस्थित नही हुआ। फिर मेरे राज्य पर चढाई करने का क्या कारण ?

मन्त्री ने अवधराज से कहा—महाराज मैं तो पहले ही कहता था कि सीमाओ पर पर्याप्त सेना रखनी चाहिए सेना के बिना राज्य की रक्षा नही होती। मगर आपने मेरी बात अनसुनी करदी। उसका परिणाम आज दिखाई दे रहा है।

अवधनरेश—यह तो ठीक है, मगर काशीराज ने चढाई क्यो की है ? हमारी ओर से तो ऐसा कारण नही हुआ कि उन्हे चढाई करनी पडती।

मन्त्री—चढाई का कोई खास कारण नही हुआ करता। जो महत्त्वाकांक्षी और बलवान होता है, वह निष्कारण ही दूसरे राज्य पर हमला करके अपने राज्य का विस्तार कर लेता है। अब अगर आपकी आज्ञा हो तो जो सेना तैयार है, उसी को लेकर काशीनरेश का सामना करने की योजना करू।

अवधराज—नही, ऐसा करने की आवश्यकता नही

है । काशीनरेश की सेना के प्रवाह में अपने थोड़े-से लोगों को बहा देना अनुचित है । एक बार मैं स्वयमेव काशी-नरेश से मिलकर बातें करना चाहता हूं । इस वार्ता का परिणाम देख लेने के पश्चात् जो उचित होगा किया जायगा ।

अवधनरेश घोड़े पर सवार होकर अकेले ही काशी-नरेश से मिलने के लिए रवाना हुए । लोग कहने लगे—अकेले शत्रु की सेना मे जाना उचित नही है । मत्री ने भी समझाया—महाराज ऐसा करना राजनीति के विरुद्ध है, मगर अवधनरेश का हृदय काच की तरह स्वच्छ था । उसमे किसी प्रकार का कपट या अन्य विकार नही था । अतएव उन्होने कहा—इस राजनीति से हमे अपना पिंड छुडाना है । मैं तो एक नवीन राजनीति की नीव डालना चाहता हूं ।

अवधनरेश अकेले घोड़े पर सवार होकर काशीनरेश की छावनी मे पहुचे । जब काशीराज को उनके आने की सूचना मिली तो उसकी प्रसन्नता का पार न रहा । उसनें कहा—'अवधनरेश भय-भीत होकर मेरे सामने आया है ! देखा, मेरा तेज और सामर्थ्य !' यह कह कर उसने अवध-नरेश को ले आने की स्वीकृति दी ।

अवधनरेश ने जाकर काशीराज से कहा—आपने इस प्रकार निष्कारण ही चढाई करने का कष्ट क्यो किया ? कृपया बतलाए कि मेरे राज्य मे प्रजा को कुछ कष्ट है ? मेरी प्रजा की आपके पास कोई शिकायत पहुंची है ? अथवा कोई अन्य कारण हैं ?

काशीराज के पास इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था। वास्तव मे चढाई का कोई समुचित कारण नही था। अतएव उसने कहा—तुम कायर हो, जो इस प्रकार का प्रश्न करने आये हो। मैं ऐसे प्रश्नो का यहां कोई उत्तर देना नही चाहता। मुझे जो उत्तर देना है, रणभूमि मे ही दूंगा और मुख से नही, तलवार से दूगा। अगर तुम मे बल है तो तलवार से सामना करो। नही है तो जंगल मे भाग जाओ।

अवधेश—मुझमें बल तो है पर मैं अपने बल का दुरुपयोग नही करना चाहता। उचित तो यह था कि आप अपने राज्य की रक्षा करते और मैं अपने राज्य की की रक्षा करता। मगर आप मेरे प्रश्नो का उत्तर नहीं देना चाहते। इससे जान पड़ता है कि आप अवध का राज्य भी चाहते हैं। इसी कारण आप बार-बार तलवार की बात कहते हैं। लेकिन मैं अपनी प्रजा का रक्त नही बहाना चाहता। युद्ध का अवसर आवे, यह मुझे अभीष्ट नही है। आपको राज्य चाहिए तो खुशी से लीजिए। सिर्फ इस बात का ध्यान रखिए कि जिस प्रकार मैंने प्रजा का पालन किया है, उसी प्रकार आप करें और प्रजा को कष्ट न होने दें। राज्य प्रजा की सुख-शान्ति के लिये है। राज्य पाकर राजा को अपनी प्रजा के प्रति एक पवित्र कर्त्तव्य पालना पड़ता है। जब आप मेरा कर्त्तव्य अपने माथे ले रहे है तो मेरा बोझ हल्का हो रहा हैं। इसके लिए युद्ध क्यों किया जाए? प्रजा का रक्त क्यों बहाया जाए?

अवधनरेश इतना कह कर और थोड़ी देर उत्तर की

प्रतीक्षा करके, उत्तर न मिलने पर रवाना होने लगे । चलते-चलते उन्होने फिर दुहराया—ठीक है, मैं जाता हूं । प्रजा का ध्यान रखियेगा ।

इतना कहकर अवधनरेश जगल की ओर चल दिये । काशीराज यह देखकर प्रसन्न हुआ और सोचने लगा—मैं कितना बहादुर हूं ! मेरे भय से अवध का राजा जगल मे भाग गया । वह मेरा सामना नही कर सका । युद्ध किये बिना ही मेरी जीत हो गई ।

काशीराज ने अयोध्या पहुचकर अपना झडा फहरा दिया और अपने कर्मचारियो को वहा शासन सम्भला कर काशी लौट आया । उसे आशा थी कि काशी की प्रजा इस विजय के उपलक्ष्य मेरा स्वागत करेगी और अवध के राजा को भूल जायगी । प्रजा अवधराज की कायरता देखकर अवश्य ही उससे घृणा करेगी और मेरे प्रताप और पराक्रम की सराहना करेगी । मगर काशी पहुचने पर उसकी आशा पर पानी फिर गया । काशी की प्रजा को जब पता चला कि हमारे महाराज ने अवध पर आक्रमण किया था और अवध के राजा अपना राज्य इन्हे देकर जगल मे चले गये है, तो घृणा और तिरस्कार की भावना प्रजा के हृदय में उत्पन्न हो गई । जगह–जगह आलोचना होने लगी । किसी ने कहा—काशीराज अपने राज्य में तो सुधार कर ही नही सकते और न्यायनीति के साथ राज्य करने वाले अवधराज पर चढाई करके उन्होने उनका राज्य छीन लिया ! दूसरा कहने लगा—अवधराज का अपराध क्या था ? प्रजा से प्रेम करना ही उनका एक मात्र अपराध था और इसी अपराध

का उन्हे दण्ड दिया गया है । इस प्रकार काशी की समस्त प्रजा अपने राजा से असन्तुष्ट और रुष्ट हो गई । राजा के आने पर प्रजा ने काले झडे दिखला कर अपना असन्तोष प्रकट किया ।

प्रजा का असन्तोष देखकर काशीराज चकित हो गया उसने विचार किया–मेरी विजय का परिणाम उलटा ही निकला । इस प्रकार सोचते–विचारते वह अपने महल मे पहुंचा । उसे आशा थी कि मेरी विजय से प्रसन्न होकर रानी मुस्कुराती हुई मेरे स्वागत के लिए आगे बढ कर आएगी मगर उसने जो कुछ भी देखा, उससे उसकी निराशा और विषाद की सीमा न रही । उसने देखा–रानी काले कपड़े पहने बैठी है । यह देखकर राजा ने कहा—मेरे जीवित रहते काले कपड़े क्यों पहिने हैं ?

रानी ने तमक कर कहा—आपका जीवित रहना और न रहना एक समान हो गया है । बल्कि मेरी समझ मे अपयशमय जीवन की अपेक्षा यशोमय मृत्यु अधिक श्रेयस्कर होती है । आप अपनी प्रजा को तो सुख दे नहीं सके और अवध की प्रजा से सुख देने वाला राजा आपने छीन लिया ! अवध की प्रजा का सुख नष्ट करके और उसे दुःखी करके आपने क्या पा लिया ? आज कोई भी समझदार व्यक्ति आपके इस कार्य की सराहना नही करता । सभी लोग एक स्वर से इस अन्याय–अत्याचार की निन्दा कर रहे हैं ।

रानी की वात सुनकर राजा को सद्बुद्धि आनी

चाहिये थी मगर उसे सद्बुद्धि नही आई। वह उल्टा यह सोचने लगा—मैंने भूल की कि अवधनरेश को जीवित जाने दिया। यह बहुत बुरा हुआ। वह जीवित है, यह जानकर ही प्रजा का रुख उसकी ओर है, क्योकि अभी लोगों को उसकी तरफ से आशा है। ऐसी स्थिति मे उसे मरवा डालना ही उचित होगा। फिर न होगा बास, न बजेगी बासुरी। इस प्रकार निश्चय करके उसने घोषणा कर दी कि जो कोई अवधनरेश का मस्तक काट लाएगा, उसे सवा मन सोना दिया जायगा।

राजा की यह घोषणा सुनकर प्रजा दग रह गई। राजा की और अधिक निन्दा होने लगी। उधर अवधनरेश तप करता हुआ जगल मे घूमा करता था। वह अपनी स्थिति के प्रति असतुष्ट नही था। राज्य त्यागने का उसे दु ख नही था। बल्कि वह सोचा करता था—परमात्मा की कृपा से मुझे अच्छा अवसर मिल गया। यो आत्म-कल्याण के लिए मैं नही निकल पाता, लेकिन काशीनरेश ने मेरा भार अपने सिर पर ले लिया। मुझे उन्होने हल्का कर दिया और आत्मकल्याण करने का अवसर दिया। मैं उनका भी अनुग्रह मानता हूं।

जगल मे घूमते हुए अवधनरेश को एक बनिया मिला उसका जहाज पानी मे डूब गया था। वह सोचता था—यह तो गनीमत हुई की मैं जीवित बच गया मेरे सिर पर कई लोगो का कर्ज चढा है। मेरा विश्वास करके कई लोगों ने मुझे पूंजी दी। अब उनकी पूंजी अगर उनके पास नही पहुंची तो विश्वासघात होगा। मैं मर भी नही

सकता । लोगो का कर्ज चुकाये विना मरने का मुझे अधिकार ही नही है । मेरा सर्वस्व भले ही चला गया है, पर मेरी सद्‌वुद्धि वनी हुई है । अगर थोड़ी-सी नई पूंजी मिल जाय तो कमाई करके मै कर्ज उतार सकता हूं । मगर कठिनाई तो यही है कि थोडी पूजी भी कहा से पाऊं ?

इस प्रकार सोच-विचार में डूबे हुए उस वणिक् को अवधनरेश का ख्याल आया । उसने सोचा—अवधनरेश के पास चलना चाहिए । सम्भव है, उनसे मुझे कुछ सहायता मिल सके । वह अवधनरेश के पास जाने के लिए रवाना हुआ । चलते-चलते वह उसी जगल मे आया, जहा राजा रहता था । साधारण जगली के भेष मे उसे अवध नरेश मिल भी गया । मगर वह उसे पहिचान नही सका उसने उसे आवाज देकर पूछा—'अरे भाई ! अयोध्या का रास्ता कौनसा है ?'

अवधनरेश—अयोध्या क्यो जा रहे हो ?

वणिक्—मेरा जहाज डूव गया है। मेरे सिर पर कर्ज चढा हुआ है । चाहता हूं कि, किसी उपाय से कर्ज उतर जाए तो अच्छा है लेकिन मेरे पास पूजी नही है पूजी हो तो अपनी वुद्धि से रुपया कमा कर कर्ज चुका सकता हू । अयोध्या के महाराज के पास इसी प्रयोजन से जा रहा हू आशा है वह मेरा दुःख दूर करेंगे ।

अवधनरेश सोचने लगे—लोग अभी तक अवध और अवधनरेश को भूले नही है । प्रकट मे उन्होने कहा—भाई, अयोध्या का राजा तो काशीनरेश को अपना राज्य देकर

जगल में चला गया है। इस समय अयोध्या मे काशीनरेश का ही राज्य है।

यह दु.संवाद सुनकर वणिक् को बड़ा दु.ख हुआ। अवधनरेश ने उसके मन के भाव को समझ लिया। जिसके अन्त.करण मे दया का वास होता है, वह किसी को दु खी नही देख सकता। दु खी को देखते ही उसका हृदय पिघल जाता है और अपने सर्वस्व को त्याग कर भी वह दूसरे का दु ख दूर करने की भरसक चेष्टा करता है।

अवधनरेश ने कहा—भाई, अगर तेरा काम सवा मन सोने से चल सकता हो तो मैं दिला सकता हू।

वणिक् को पहले तो विश्वास नही हुआ। और आख फाड कर अवधेश की ओर देखने लगा और मन ही मन पता लगाने लगा कि इसकी वात कहा तक सच है? फिर वोला अगर सवा मन सोना मिल जाय तो उससे मैं बहुत कुछ कर सकता हू और अपने सिर का वोझ-ऋण उतार सकता हू।

अवधनरेश ने सोचा—अपने सिर का बोझ उतारने के लिये इसे द्रव्य की आवश्यकता है। काशीनरेश ने घोषणा कर ही रखी है कि वे मेरे सिर के बदले सवा मन सोना देंगे। आज नही तो कल, एक दिन मैं मर जाऊंगा उस यह सिर वृथा चला जायगा। ऐसी हालत मे आज अगर मेरे सिर से दूसरे के सिर का बोझा उतरता है और किसी की भलाई होती है तो अपने सिर को दे देने

मे क्या हर्ज है ? यह उपकार का काम करना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है ।

अवधनरेश ने वणिक् से कहा—तुम मेरे साथ चलो । वणिक् साथ हो लिया । अवधनरेश चलते-चलते काशी आये । राजमहल के द्वार पर पहुचकर उन्होने भीतर सूचना भिजवाई—एक आदमी अवधनरेश का सिर लेकर आया है ।

यह समाचार पाकर काशीनरेश को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । उसने सिर लाने वाले आदमी को अपने सामने उप-स्थित करने का आदेश दिया । अवधनरेश काशीराज के सामने वणिक् को साथ लेकर पहुचे । उन्होने कहा—मेरा सिर ले लो और अपनी घोषणा के अनुसार सवा मन सोना इस वणिक् को दे दो ।

काशीनरेश को जान पडा, जैसे वह सपना देख रहा हो उसे अपनी आखों और अपने कानो पर विश्वास नही हुआ । चकित भाव से उसने पूछा—क्या अवधनरेश तुम्ही हो ?

अवधनरेश—अभी बहुत दिन नही हुए, तब मैं आपसे मिला था । क्या आप इतनी जल्दी मुझे भूल गये ? उस दिन मैं अकेला आपके पास आया था । मैंने आपसे कहा था, आपको अवध का राज्य चाहिए तो ले लीजिये । लेकिन मेरी प्रजा का पालन उसी प्रकार कीजिए, जैसे मैं कर रहा हूं ! याद तो होगा ही आपको । आप राजा है । आपको कोई बात इतनी जल्दी नही भूल जाना चाहिये ।

काशीनरेश को उस दिन की सभी बातें स्मरण हो आई। उसका हृदय सहसा बदल गया। विस्मित और चकित भाव से उसने कहा यह तो मुझे याद आया कि उस दिन आप ही अपना राज्य मुझे सौंपने आये थे, मगर मैं नही समझ सका कि आप इस व्यक्ति के लिए अपना सिर देने क्यो आये हैं ? जिस सहज भाव से उन दिन आपने राज्य दे दिया था और उसके लिए हृदय में किसी प्रकार की दुविधा नही की थी, कोई सकोच नही किया था, उसी सहज भाव से आज अपना सिर देने के लिए आप आये हैं। यह बात मेरी समझ मे नही आ रही है। उस दिन मैंने समझा था कि अवधनरेश कायर है। यह युद्ध करने से डरता हैं। और इसी कारण अपने प्राण बचाने के लिये राज्य सौप रहा है, पर आज ऐसा नही सोच सकता। स्वेच्छापूर्वक सिर देने वाला पुरुष कायर नही कहा जा सकता। ऐसा करने के लिये असाधारण वीरता और निस्पृहता की आवश्यकता है। इस कारण मैं जानना चाहता हू कि आप किस प्रयोजन से इस व्यक्ति के लिए अपना सिर देना चाहते है ?

अवधनरेश—इस प्रपच मे आप पड़ते ही क्यो है ? आपको अवध के राजा का सिर चाहिए और वह सामने ही मौजूद है। आप अपनी तलवार सम्भालिये और अपनी अभीष्ट वस्तु लीजिए।

काशीराज—नही, अब ऐसा नही हो सकता। पहले कारण जान लूंगा तभी सिर लेने का विचार करूंगा। आप पूरा विवरण मुझे सुनाइये।

अवधनरेश—मुझे सन्देह है कि कारण जानने के पश्चात् आप तलवार चला सकेंगे। उस समय आपकी तलवार चलेगी नही। इसलिए अपना काम अभी कर लीजिए।

काशीराज—नही चलेगी तो न सही। कारण तो जानना ही है कि दूसरे के लिये आप अपना सिर क्यो दे रहे हैं ?

अवधनरेश—हे राजन् ! अगर मेरा यश शरीर वना रहे और भौतिक शरीर न भी रहे तो कोई हर्ज नही। इन दोनो मे मुझे यश.शरीर की रक्षा करना अधिक प्रिय है। भौतिक शरीर तो जाने वाला ही है। रक्षा करने की लाख चेष्टा करने पर भी वह रक्षित नही रह सकता। अतएव अपने यश·शरीर की रक्षा के लिये ही मैं अपना भौतिक शरीर दे रहा हू। इस वेचारे वणिक् का जहाज डूव गया है। यह दूसरो का ऋणी है। इसे धन की आवश्यकता है मैं यह सोचता हूं कि एक दिन यह सिर वृथा ही जायेगा आज इससे एक व्यक्ति को धन मिलता है और उसका दु:ख दूर होता है तो इसे आज ही देने मे क्या हर्ज है ? जव मरना ही है तो किसी का दु ख मिटा कर ही क्यो न मरू ?

दया और परोपकार का यह कितना उत्कृष्ट और उज्ज्वल उदाहरण है ? अवधनरेश दूसरे का दु.ख मिटाने के लिये अपना सिर भी निछावर करने को तैयार हैं। आप लोगो मे कोई ऐसा तो नही है जो चार—आठ आने के लिए झूठ वोलता हो और धर्म को धोखा देता हो ?

आज अधिकांश लोग ऊपरी भपका दिखलाते हैं, धार्मिकता का प्रदर्शन करते हैं, लेकिन कौन कह सकता है कि वे सच्ची धार्मिकता का पालन कितना करते है ? जिसे धर्म का वास्तविक ज्ञान होगा और जो उसका पालन करना चाहेगा उसे यह शरीर तो मिट्टी का दिखाई देगा । वह इस शरीर को सदा नाशवान् समझेगा । धर्म को यह सजीव और अमर मानेगा ।

अवधनरेश ने काशीराज को अपना सिर देने का प्रयोजन समझा दिया । अवधनरेश की बात सुनकर काशीराज सिंहासन से नीचे उतर आया । उसने अपने सिर का मुकुट उतारा और अवधनरेश के मस्तक पर रख दिया । 'वह बोला—'अवधनरेश की जय हो !'

नगर मे यह बात फैल गई कि अवध के राजा अपना मस्तक देने आये और सीधे राजा के पास गये हैं । यह बात सुनते ही लोग आपस मे कहने लगे—वह दुष्ट फौरन अवधनरेश का सिर धड़ से जुदा कर देगा । इस भयानक आशका से चिन्तित लोग राजमहल की ओर दौड़े आये । वे जानने के लिये अतिशय व्यग्र थे कि अवधनरेश के विषय मे क्या निर्णय किया गया है ? उन्हे उसी समय ज्ञात हुआ कि स्वयं काशीराज अवधनरेश की जय बोल रहे हैं । यह जयकार सुनकर लोगो को कितना हर्ष हुआ, कहना कठिन है । पर उस जयकार के उत्तर में राजमहल के बाहर से गगनभेदी ध्वनि गूंज उठी—'जय हो मस्तक देने वाले की और जय हो मस्तक लेने वाले की !

अवधनरेश और काशीराज—दोनो एक ही सिंहासन पर गुरु-शिष्य की भाति वैठे । अगर काशीराज अवधेश का सिर काट लेता तो उसे क्या मिलता ? क्या वह प्रजा की ओर से सम्मान प्राप्त कर सकता था ? नही । जो सुनता वही घृणा करता और उसकी क्रूरता पर थूकता । इसके अतिरिक्त काशीराज का सुधार होना शक्य न होता। मगर अवधनरेश के दैवीवल से वह सुधर गया । उस दैवी-वल को अपना लेने से काशीराज भी प्रजावत्सल राजा वन गया । ससार मे आसुरीवल भी है और दैवीवल भी है । आसुरीवल आसुरी प्रकृति को वढ़ाता है और दैवीवल देवी प्रकृति को उत्तेजित करता है । विचार करने पर विदित होगा कि इन दोनो मे देवीवल ही महान् है ।

१६ : अनुचरी

भगवान् अरिष्टनेमि ने दीक्षा ले ली, यह समाचार सुनकर राजीमती को बड़ा आघात लगा । वह यह सोचती हुई मूर्छित हो गई कि जब राजकुमार द्वार से लौटकर जाने लगे उस समय मुझे आशा थी कि एक बार तो वह आएंगे ही ! मुझे सन्तुष्ट करके ही दीक्षा लेगे । मगर उन्होने मुझसे

मिले बिना ही दीक्षा ले ली ! यह मेरा अपमान है । इस प्रकार के विचार से राजीमती बेहोश हो गई । तब राजीमती की सखी ने उसे होश में लाकर कहा—तुम शोक और विषाद क्यो करती हो ! राजकुमार का दीक्षित हो जाना तो तुम्हारे लिये आनन्द की बात है ! अब किसी दूसरे राजकुमार के साथ तुम्हारा विवाह सकेगा । अब उनकी आशा तो नही रही ! यह अच्छा ही हुआ । वे जैसे तन से काले है वैसे ही मन से भी काले है । राजकुमारी जो हुआ, अच्छा ही हुआ अब निश्चिन्त हो जाओ ।

सखी की बात सुनकर राजीमती ने कहा—सखी, चुप रहो । ऐसा मत कहो । मैं उनकी निन्दा सहन नही कर सकती । वे शरीर से काले दिखाई देते हैं, इस कारण तुम उनकी उपेक्षा कर रही हो । लेकिन मेरी दृष्टि मे उनका बहुत महत्त्व है । काले होने के कारण वे उपेक्षणीय नही हो सकते । अगर कालापन बुरा है तो आखो की काली-काली पुतलियो को निकाल कर क्यो नही फेंक देती ? सखी, तुम महापुरुषो के चरित्र की गहनता को नही समझ सकती । जो विषयभोग के कीडे बने हुए है वे उनके पवित्र और उच्च चरित्र के महत्त्व को क्या समझे ? अतएव तुम चुप ही रहो ।

सखी—ऐसा है तो फिर तुम उदास क्यो ?

राजीमती—मेरी उदासी का कारण यह है कि पति तो चले गये और मैं घर पर ही हूं ।

राजीमती का त्याग कितना उज्ज्वल है। इसलिये कहा जाता है—

न होते नेम तो क्या गाते जैन के जती।

राजीमती कहती है—सखी, प्रभु मुझे जागृत करने के लिये ही आये थे। वे मेरे साथ दगा करने लिये नही आये थे। अगर वे यहा से जाकर किसी दूसरी कन्या के साथ विवाह कर लेते तो दगा समझा जा सकता था। उन्हे क्या दूसरी कन्या नही मिल सकती थी ? महाराज समुद्र-विजय की पुत्रवधू कौन नही बनना चाहेगी ! लेकिन उन्हे तो विवाह ही नहीं करना था। वे मुझे वोध देने के लिए ही यहा तक आये थे। उनका बोध मुझ तक पहुंच गया है। उनकी अव्यक्त वाणी मेरे कानो मे गूंज रही है। वे कह रहे हैं—'मैं जिस मार्ग पर जा रहा हूं, उसी मार्ग पर तू भी आ।

१७ : उत्सर्ग

प्रवचनमाता का आपके लिये यह आदेश है कि मस्तिष्क के बल को हृदयबल के नियन्त्रण मे रखो। हृदय-बल वाले मे कैसी उदारता होती है और हृदयबल के होने

पर क्या होता है, यह समझने के लिए एक उदाहरण जगत्-मान्य है। रामचन्द्र को कौन नही जानता ? उन्ही का उदाहरण लीजिए।

रामचन्द्र जब योग्य अवस्था के हो गये तो प्रजा उनका राज्याभिषेक देखने के लिये लालायित हो उठी। लोग सोचने लगे—महाराज इन्हे राज्य सत्ता क्यो नही देते ? इस तरह की बातें नगर मे हो रही थी कि इतने मे ही एक बात हो गई। महाराजा दशरथ को अपने सिर पर सफेद बाल नजर आ गया और वह भी कान के पास। बाल सफेद देखकर दशरथ सोचने लगे—यह बाल क्या सन्देश दे रहा है ? यह बाल मानो कह रहा है राजा राजपाट छोडकर भगवान् का भजन करो। अब संसार की प्रवृत्तियो से निवृत्ति लो। यदि तुम निवृत्ति न लोगे तो दूसरे लोग यही सोचेगे कि संसार मे कोई आनन्द है, तभी तो राजा से ससार नही छोड़ा जाता। और इसी कारण राम के योग्य हो जाने पर भी राजपाट उन्हे नही सौंपते है।

आप लोग अपनी सन्तान के सामने क्या आदर्श उपस्थित करते है ? अगर आप सन्तान के सामने त्याग का आदर्श रखेंगे तो सन्तान भी त्यागशील बनेगी। इसके विपरीत अगर आप स्वयं ससार को ज्यादा पकडे रहे तो सन्तान का ज्यादा पकडना स्वाभाविक ही है।

सफेद बालो को निवृत्ति के लिए सूचनारूप मानकर राजा दशरथ ने सवेरे ही अपने सलाहकारो को एकत्र किया

और कहा—यह सफेद बाल मुझे निवृत्त होने की सूचना दे रहा है। अतएव मैं चाहता हूं कि अगर आप लोग सहमत हों तो कल ही राम को राज्य सौंपकर राज्य-काज से निवृत्त हो जाऊं।

राजा ने जो कुछ कहा, वह किसे पसन्द न हो सकता था ? सभी चाहते थे कि राम राजा हों। लोगों के मनोरथरूपी बेल के लिये राजा का कथन आधाररूप हो गया। सबने एक स्वर से राजा की बात का समर्थन किया। राजा ने राज्याभिषेक की तैयारी करने का आदेश दे दिया और अगला दिन अभिषेक के लिये नियत कर दिया।

पहले के जमाने मे, राज्याभिषेक या विवाह आदि के अवसरो पर आजकल की तरह आडम्बर नहीं होता था। अतएव तैयारी में अधिक समय भी नही लगता था। प्रायः एक ही दिन में सारा काम निबटा दिया जाता था। इसी कारण राजा दशरथ ने कहा कि सब तैयारी कर ली जाय और कल सवेरे ही राम को राज्य दे दिया जाय। इधर सूर्य निकलेगा, उधर रामचन्द्र राजसिंहासन पर बैठेंगे

रामचन्द्र के राज्याभिषेक का समाचार सारे नगर में फैल गया। रामचन्द्र के मित्र इस समाचार से फूले न समाये। कोई सोचने लगे—अब हमारी पांचों उंगलियां घी में है। कोई कहने लगा—हमारी सात पीढ़ियो की दरिद्रता अब दूर हो जायगी। स्वार्थी लोग ऐसे-ऐसे कारणो से ही बडो के साथ मित्रता रखते हैं। राम के ऐसे मित्र सोचने

लगे—मैं सबसे पहले पहुंचकर बधाई दू, तो मेरी विशेषता है ।

इस प्रकार सोचकर वे राम के पास पहुचे । उस समय राम किसी गम्भीर चिन्ता मे डूबे थे । वे अपने कर्त्तव्य के विषय मे विचार कर रहे थे । वे सोच रहे थे कि आखिर मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है ? मैं राज-सिंहासन को अलकृत करूं या जनता की सेवा करू ? राजसत्ता द्वारा जनता का कोई विशेष उपकार नही हो सकता जनसाधारण के उपकार के लिए योगसता अपेक्षित है । लेकिन मुझे कौन-से मार्ग का अवलम्बन करना चाहिये ।

रामचन्द्र जब विचारो की तरंगो मे बहते-बहते स्थिर न हो पाये तो उन्हे सीता का ध्यान आया । सीता से कहने लगे—सीता, तुम मेरी धर्मपत्नी हो और राज्य करते हुए भी आध्यात्मिक ज्ञान रखने वाले महाराज जनक की पुत्री हो । अतएव मैं तुमसे परामर्श चाहता हू । कहो मेरे जीवन का लक्ष्य क्या होना चाहिये ?

सीता के बदले दूसरी कोई होती तो चटपट उत्तर देती—'प्राणनाथ, राजा बनकर आनन्द भोगो और मेरे लिये ऐसे-ऐसे जेवर बनवा दो !' लेकिन सीता तो सीता ही थी । उसने नम्रतापूर्वक कहा—स्वामिन् मैं आपकी दासी हूं । मैं आपके सम्बन्ध में क्या कह सकती हूं ? फिर भी इतना निवेदन अवश्य करूंगी कि आप जैसे असाधारण पुरुष के द्वारा कोई असाधारण अलौकिक कार्य होना ही चाहिये, जिससे आपके आदर्श को सन्मुख रखने से जनता

का कल्याणमार्ग सरल हो जाय । जगत् मे इस समय अधर्म फैला हुआ है । जनता में जागृति उत्पन्न करने योग्य कोई कार्य हो तो अच्छा है ।

राम ने अपने जीवन का ध्येय निश्चित करने के लिये सीता से सलाह ली थी । क्या आप भी कभी अपनी पत्नी से इस प्रकार की सलाह लिया करते है ? अगर आपके विचार राम के समान उदार हो और आपकी पत्नी सीता के समान आपकी सहायिका बने तो इस ससार में सीता और राम के अनेक जोडे दृष्टिगोचर होने लगे ।

सीता का विचार सुन लेने के पश्चात् राम ने लक्ष्मण के सामने भी यही समस्या उपस्थित की । लक्ष्मण बोले—मैं और कुछ नही जानता, सिर्फ आपकी आज्ञा जानना चाहता हूं । आपको सलाह देने की योग्यता मुझ मे नही है । फिर भी आपने पूछा है तो यह निवेदन करना चाहता हू कि सासारिक प्रवृत्तियो मे तो सभी फसे रहते है । आपके द्वारा कोई प्रधान कार्य होना योग्य है । आपके हाथो जनकल्याण कार्य न हुआ तो फिर किसके हाथ से होगा ?

इस प्रकार सीता और लक्ष्मण की सम्मति लेकर रामचन्द्र ने निश्चय किया कि कल पिताजी से निवेदन कर देना चाहिये कि मैं निवृत्ति मे ही रहना चाहता हूं । मैं राज्य सम्बन्धी झंझटो में नही फसना चाहता ।

इधर राम ने यह सोचा और उधर उनके मित्र आ

धमके। मित्रो ने उन्हे प्रसन्नता के साथ बधाई दी। रामचन्द्र ने बधाई के उत्तर मे कहा—मै राज्यबल ग्रहण नही करना चाहता। मेरी इच्छा योगबल प्राप्त करने की है। राज्य सम्भालने के लिये तो मेरे दूसरे भाई हैं ही। मैं राज्य लेकर क्या करूंगा आश्चर्य है कि दूसरे भाइयो के होते हुए पिताजी ने मुझे राज्य देने का विचार किया !

विमल वंश बड अनुचित एकू।
बन्धु विहाय बड़ेहिं अभिषेकू ॥

इस निर्मल वश के लिए एक मात्र कलक की बात यही है कि छोटे भाइयो के होते हुए भी बडे को राज्य दिया जाता है। राज्य तो छोटे को दिया जाना चाहिए।

राम का यह विचार क्या आपको पसन्द आता है ? चाहे आप पसन्द करे या न करे, मगर धर्म का मार्ग त्याग और उदारता का ही है। कहा भी है—

या निशा सर्वभूताना तस्या जागृति सयमी।
यस्या जागृति भूतनी सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

अर्थात्—जगत् में फसे हुए लोग जिसे अन्धकार कहते हैं, ज्ञानीजन उसे प्रकाश कहते हैं और जगत् के लोग जिसे प्रकाश मानते हैं, योगी उसे अन्धकार समझते हैं।

इस प्रकार सर्वसाधारण में और ज्ञानियो मे भेद है जब तक मस्तिष्क मे और हृदय मे भिन्नता रहेगी तब तक ज्ञानियो मे और आप मे भिन्नता रहनी स्वाभाविक है।

जब आप मस्तिष्क को हृदय के अधीन कर लेंगे तो बहुतेरे विवाद स्वत. शान्त हो जाएगे ।

राम का कथन सुन कर उनके मित्र सोचने लगे—यह अद्‌भुत बात है । राज्य के अधिकारी आप है । छोटे भाई राज्य कैसे पा सकते हैं ?

राम ने कहा—यह ठीक है कि मैं बड़ा हूं और इसी कारण यह भी ठीक है कि राज्य मुझे नही मिलना चाहिए बड़प्पन लेने मे नही देने मे है ।

राम के कुछ मित्रों ने समझा, राम मे आज पागलपन आ गया है । इनसे भविष्य मे क्या आशा की जा सकती है । अतएव वे निराश होकर धीरे-धीरे खिसक गये । कुछ सरलहृदय मित्र बैठे रहे । उन्होने कहा—आपके विचार अतिशय उदात्त हैं । मानवीय बुद्धि जिस ऊंचाई पर पहुंच नही सकती उस पर आप अनायास ही जा पहुचे है । नि सदेह आप असाधारण पुरुष हैं और आपके द्वारा जगत् का महान् कल्याण होगा ।

राम ने कहा—मुझे प्रसन्नता है कि मेरे विचार आपकी समझ मे सही है । देखना तो यह है कि मेरे विचार क्रियान्वित होगे या नही ।

प्रात.काल होने पर रामचन्द्र प्रतिदिन की भांति पिता को प्रणाम करने गये । वहा देखा कि सारा मामला ही बदल गया है । रानी कैकेयी ने किस प्रकार वरदान मागा यह बात प्रसिद्ध है । महाराज दशरथ को इस मांग के

कारण ऐसा धक्का लगा कि वे बेहोश हो गये । उसी समय रामचन्द्र वहां पहुचे । पिता को मूर्छित देख राम सोचने लगे—मेरे होते हुए पिता को किसी प्रकार का कष्ट होना मेरे लिये कलक की बात है । यह सोचकर उन्होने पिता को आवाज दी । आवाज सुनकर दशरथ ने आखे खोली और राम को देखकर फिर बन्द कर ली । राम ने सोचा—पिताजी को कोई बडा आघात लगा जान पडता है । उन्होने अपनी दृष्टि पीछे फेरी तो वहा कैकेयी बैठी दिखाई दी ! राम ने उसे प्रणाम किया । वह बोले—माता, मैंने अभी तक आपको देखा नही था और इसी कारण प्रणाम नही किया । मेरी भूल के लिये क्षमा कीजिये । मैं यह जानना चाहता हू कि पिताजी आज दु:खी क्यो है ?

राम का कथन सुन कर कैकेयी ने रुखाई के साथ कहा—राम, तुम मिष्टभाषी हो और तुम्ही क्यो, तुम्हारे पिता और तुम्हारी माता ने भी मीठा बोलना खूब सीखा है परन्तु मैं अब मीठी बोली के भुलावे मे आने वाली नही हू ।

यह अप्रत्याशित उत्तर सुन कर राम को बहुत दुःख हुआ । वह कहने लगे—माताजी, आपने किस आशय से यह बात कही है ? मैं अपना अनिष्ट करने वाले के प्रति भी कटुक भाषण नही कर सकता । आप तो मेरी माता है । आपसे कटुक बात कैसे कह सकता हू ? आपके कहने से मालूम होता है कि आपके सामने मेरा मीठा बोलना आपको भुलावे मे डालना है, मगर ऐसा समझना भ्रम है । आप किसी भी समय मेरी परीक्षा करके देख लीजिए कि

क्या मैं आपको भुलावे मे डालने के लिये मीठा बोला रहा हू ?

कैकेयी ने कहा—अच्छा, तुम बताओ कि महाराज ने मुझे जो वर दिया था उसे मागने का मुझे अधिकार है या नही ? और मैं अपनी इच्छा के अनुसार वर मांग सकती हू या नही ?

राम—हा, आपको वर मागने का अधिकार है और आप अपनी इच्छा के अनुसार वर माग सकती हैं।

कैकेयी—मेरे वर मागने के कारण ही महाराज मूर्छित हो गये हैं। तुम पूछलो कि इन्होने मुझे वर मागने के लिए कहा था या नहीं ? और इनके कहने से ही मैने वर मांगा है या नही ? जब इनके कहने से ही वर मागा है तो मैं कोई तुच्छ चीज तो क्या मागती ? मैंने भरत के लिए राज्य मागा है। लेकिन महाराज भरत को शायद इस योग्य नही समझते। सम्भव है कोई दूसरा कारण भी हो। इसीसे महाराज मूर्छित हो गये हैं। मैने यह भी कह दिया कि आप कह दीजिए—मैंने धर्म छोड़ा। पर वे ऐसा भी नही कहते और दु:ख मान रहे है।

कैकेयी का यह स्पष्टीकरण सुनकर राम प्रसन्न हुए। वे सोचने लगे—किसी अदृश्य शक्ति के ही प्रभाव से ही माता ने यह वर मागा है। इसकी पूर्ति होने से मेरा वह लक्ष्य सहज ही पूरा हो जायगा, जिसके सम्बन्ध मे मैंने कल निश्चय किया था ?

अदृश्य शक्ति किस प्रकार अपना काम करती है, यह

बात ध्यान मे रखनी चाहिए। आप यहा बैठे है। आपके लिये घर पर क्या भोजन बन रहा है, आपको पता नहीं है। फिर भी उस भोजन के बनने मे आपकी अदृश्य शक्ति काम कर रही है। अतएव अदृश्य शक्ति पर भी विश्वास रखना चाहिए।

कैकेयी का कथन सुनकर राम ने कहा—

सुन जननी सोई सुत बडभागी, जो पितु मातु चरण-अनुरागी।
तनय मात-पितु पोषनहारा, दुर्लभ जननी यही ससारा॥
भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू, विधि सब विधि सन्मुख मोहिं आजू
जो न जाऊं वन ऐसे हु काजा, प्रथम गनिय मोहि मूढ समाजा

राम कहते है—माता, यह वर माग कर आपने मुझे भाग्यशाली बनाने का प्रयत्न किया है। माता कौशल्या ने तो मुझे जन्म ही दिया है, लेकिन आप मेरा उत्थान कर रही है। माता-पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का धर्म है। जो ऐसा करते हैं वे अवश्य ही सद्भागी है, फिर आपकी यह आज्ञा तो मेरी इच्छा के अनुकूल ही है।

क्या आजकल के लड़के भी माता–पिता के वचन का पालन करने का ध्यान रखते है? उचित तो यही है कि माता–पिता अपना धर्म पाले और पुत्र अपने धर्म का का पालन करे। कदाचित् माता–पिता अपना धर्म छोड़ दें तो क्या इसी कारण पुत्र को भी अपना धर्म छोड देना चाहिये? एक ने अपना धर्म त्याग दिया है, यह देखकर दूसरो को अपना धर्म नही त्याग देना चाहिए। राम कहते हैं कि जो पुण्यवान् होगा, वही माता-पिता की आज्ञा का

पालन करेगा । क्योकि माता-पिता का महत्त्व भी कुछ कम नही है । जैन शास्त्रो मे कहा है कि माता देव गुरु के समान है । उपनिषदो मे भी कहा है—

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव ।

इस प्रकार जैन शास्त्र और उपनिषद् दोनों एक ही बात कहते हैं । बात कहने का ढंग तो अलग हो सकता है लेकिन सच्ची बात तो सभी स्वीकार करते है ।

राम ने कैकेयी से कहा—माता, आपने जो कुछ किया है उसमे मेरा हित ही समाया हुआ है । कदाचित् आपके मांगने से मेरा अहित होता तो भी माता-पिता की आज्ञा का पालना करना ही मेरे लिये उचित होता । नीति कहती है—

आज्ञा गुरूणा खलु धारणीया ।

जो अपने से बड़े हैं, उनकी आज्ञा अवश्य ही मानना चाहिए । फिर वह आज्ञा चाहे रुचिकर हो चाहे अरुचिकर हो । गुरुजन की आज्ञा के औचित्य-अनौचित्य पर विचार करने का हमे अधिकार नही है ।

वह सेना कभी विजयी नही हो सकती, जो बिना सोचे—समझे अपने सेनापति की आज्ञा का पालन नहीं करती । सेना को यह नही देखना चाहिये कि आज्ञा उचित है या नही ? उसका एकमात्र कर्त्तव्य आज्ञा का पालन करना है । खेद है कि आजकल हमारे देश मे उच्च श्रेणी

के अनुशासन की बहुत कमी है। अनुशासन के अभाव में कोई भी देश, समाज या वर्ग उन्नति नही कर सकता। अधिकारी का कर्त्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि को जागृत रखे और सोचे कि कहा कितने अनुशासन की आवश्यकता है, पर जिन्हे अनुशासन का पालन करना है, उन्हे तो पालन करना ही चाहिये। पहले भारतवर्ष मे यह माना जाता था कि जिन्हे हमने बड़ा माना है, उनकी आज्ञा हमारे लिये पालनीय है।

राम कहते हैं—माता, ससार मे पुत्र तो बहुत होते हैं लेकिन माता-पिता की आज्ञा का पालन करने वाला पुत्र विरला ही होता है।'

इस प्रकार का पुत्र उन्ही माता-पिता को प्राप्त होता है, जिन्होने पूर्वजन्म मे अच्छा तप किया हो। पुण्य के उदय से ही धार्मिक पुत्र की प्राप्ति होती है। जो माता-पिता नीम के समान हैं, वे आम के समान पुत्र कैसे पा सकते हैं? आम सरीखा पुत्र पाने के लिये खुद को आम के समान बनना चाहिये।

साराश यह है कि पुत्र को माता-पिता की आज्ञा पालनी ही चाहिये, क्योकि उनका पुत्र पर महान् उपकार है ठाणागसूत्र मे कहा है कि पिता, माता और धर्माचार्य के उपकार से उऋण होना कठिन है।

राम कैकेयी से कहते हैं—आपने मेरा हित ही किया है। एक बात मुझे अतिशय प्रसन्नता देने वाली है। वह

यह है कि मेरे प्राणप्रिय भ्राता भरत को राज्य मिलेगा । मैं भरत के राज्य को सब प्रकार से निष्कटक और प्रभाव-शाली बनाने के लिये अवध का त्याग करके प्रसन्नतापूर्वक वनवास करूंगा । मैं ऐसे काम के लिये भी अगर वन न जाऊंगा तो परले सिरे का मूढ गिना जाऊंगा ।

आज क्या छोटे के सुख के लिये बड़ा दुख भोगता है ? अगर बड़ा होकर भी छोटे के लिये दुख नहीं भोगता तो वह बडा काहे का है ! वह तो वैसा ही बडा है—जैसे घोड़े का पूंछडा बड़ा होता है ।

कैकेयी—राम, तुम्हारी बातों में मिठास तो बहुत है, मगर सच्चाई कितनी है, यह तो समय आने पर ही मालूम होगा ।

राम–चिन्ता मत करो मां, मैं अपनी बातों की सच्चाई प्रकट कर दूंगा । आप थोडी देर के लिये अलग हो जाइये, जिससे मैं पिताजी को समझा सकूं ।

राम का कहना मानकर कैकेयी वहा से हट गई । राम ने पिता को जागृत करके कहा—पिताजी, आप दुःख क्यो मना रहे हैं ? माता के मन मे जो भेदभाव आया है, वह उत्पन्न तो आपने ही किया है । आपके लिये मैं और भरत उसी प्रकार समान है, जिस प्रकार दोनो नेत्र समान है लेकिन आपके चित्त मे हम दोनो को लेकर भेदभाव उत्पन्न हुआ । इसी से आपने मुझे राज्य देने का विचार किया । आपके मन के भेदभाव ने ही माता के मन में भेदभाव उत्पन्न किया है । खैर, जो हुआ सो अच्छा ही

हुआ है, यह मानकर आप उठिये और चिन्ता न कीजिये। आपकी चिन्ता तो मेरे लिये ही है न ? लेकिन जब मुझे ही चिन्ता नहीं है तो आपको चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ?

रेडियम धातु बहुत मूल्यवान् मानी जाती है। कहा जाता है कि उसकी एक कणी भी बहुत से रोग मिटा सकती है। जिसकी एक कणी भी ऐसी होती है, उसका पहाड अगर किसी को मिल जाय तो कितनी प्रसन्नता की बात हो ? राम का यह अनूठा चरित रेडियम के समान है। अगर आप इस सारे पहाड को अपना सके तब तो कहना ही क्या है ? अगर यह सम्भव न हो और इसमे से आप एक कणी भी ग्रहण करले तब भी इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण हो सकता है। आपने राम-चरित मे से थोडा-सा भी अंश ग्रहण किया है, इस बात की साक्षी यह है कि आपको किसी भी प्रकार के झगडे के कारण कचहरी मे न जाना पडे और किसी भी रोग के कारण अस्पताल मे पैर न रखना पडे। साथ ही जब आपके हृदय का मैल दूर हो जाय और आप तप-त्याग को अपनावे, तभी यह जाना जा सकता है कि आपने राम के चरित्र से शिक्षा ली है।

राम का कथन सुन कर दशरथ चकित रह गये। मन ही मन वे कहने लगे—राम के व्यक्तित्व की ऊंचाई का पता आज लगा ! यह तो वन मे जाने मे भी कष्ट नही समझते ! आज ही मुझे मालूम हुआ है कि राम साधारण मनुष्य नही है।

राम माता-पिता आदि को समझा कर वनवास के लिए चल दिये । रावण को जीत लेने के बाद अवध मे लौटे । इस बीच राज्य का सचालन भरत करते रहे, मगर राम के दास वन कर । भरत अपने को राजा नहीं समझते थे किन्तु राम का दास मान कर, राम का स्मरण करते हुए राम की ओर से राज्य का कार्य चलाते थे । राम ने आकर प्रजा की कुशल पूछी तो प्रजा कहने लगी—आपके वियोग का दुःख तो था ही लेकिन जहां तक राज्य व्यवस्था का प्रश्न है, वहा तो भरत आपसे कुछ कम नही निकले । भ्रतजी ने आपका स्मरण करके राज्य चलाया है । अतएव राज्य की सम्पदा भी दसगुनी हो गई है और प्रजा भी सकुशल है ।

राम के चरित को याद रखकर राज्य करने वाला पाप नही करेगा । अतएव सदा राम को स्मरण रखो और अपने धर्म का पालन करो । इसी मे सव का कल्याण है ।

१८ : विजय पथ

कौरवों और पाण्डवो मे कलह क्यो था ? इस प्रश्न का उत्तर लम्बा है । उस पर विवेचन करने का समय नही है । यहा सिर्फ इतना कहना पर्याप्त है कि युधिष्ठिर, दुर्योधन से अपना हक मांगते-मागते थक गये । मगर दुराग्रही दुर्योधन ने साफ कह दिया—युद्ध के बिना मैं थोडी भी भूमि नही दूगा । दुर्योधन का यह स्पष्ट उतर पाकर भी युधिष्ठिर ने सोचा—हमे थोड़ा प्रयत्न और कर लेना चाहिये जिससे कोई हमे दोषी न ठहरा सके । यह सोचकर पांचों पाण्डव द्रोपदी के साथ कृष्ण के पास द्वारिका गये । युधिष्ठिर ने कृष्ण को सारा वृत्तान्त सुनाया । उन्होने यह भी कहा—दुर्योधन के भीषण अत्याचारो और अन्यायो के बावजूद भी मैं यही चाहता हूं कि भरतवश सुरक्षित रहे । उसे किसी प्रकार क्षति न पहुचे । लेकिन दुर्योधन हमारा राज्य हमारे मागने पर भी नही लौटाता और हमे दबाता है । हम आपके पास आये हैं । आप ही हमे मार्ग सुझाइए । हमें अब क्या करना चाहिए ? आप हमे जो आदेश देंगे, उसे हम शिरोधार्य करेंगे, यह कहने की तो आवश्यकता ही नही है ।

इस प्रकार युधिष्ठिर ने कृष्ण पर भार डाल दिया ।

भीम और द्रोपदी ने भी अपने उग्र विचार कृष्ण के सामने प्रकट किये। सब की बात सुनकर कृष्ण ने अर्जुन से पूछा तुम क्यो चुप हो ? तुम भी अपने विचार प्रकट करो।

अर्जुन ने नम्रता के साथ कहा—जब मै आपका शिष्य बन गया हू, मैने आपको हाथ जोड लिये है, तो आपसे भिन्न कहा रहा ? मुझसे कुछ जानने या पूछने की आवश्यकता ही क्या रह गई है ? मै अपना सर्वस्व आपको सौप चुका हू। मेरा सिर्फ एक ही कर्त्तव्य है—आपके आदेश को स्वीकार करना ऐसा करने मे चाहे सर्वस्व जाता हो या प्राण देने पडते हो।

कृष्ण—यह तो ठीक है मगर मैं तुम्हारे विचार जाने बिना सधि कराने जाऊ और वहा तुम्हारे विचारो के विरुद्ध कोई कार्य हो जाय तो ठीक नही होगा। अतएव मै तुम्हारे विचार जान लेना चाहता हू।

अर्जुन—सूर्य के सामने दीपक की क्या बिसात है ? फिर भी सूर्य की पूजा करने वाले लोग सूर्य को अपने घर का दीपक दिखाते ही है। इसी प्रकार आपके सामने मेरे विचार दीपक के समान है। लेकिन आपका आदेश है तो मैं उल्लघन नही कर सकता और अपने विचार आपके समक्ष रखता हू।

अर्जुन ने कहा—कृष्णजी, हम मे शक्ति है, मगर धर्मराज अवसर आने पर हमे दबा देते है। मुझे यह बात रुचती नही। यद्यपि मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता का विरोधी

नही हूं और उनको आज्ञा का अनुयायी हू फिर भी इस समय मैं अपने स्वतंत्र विचार प्रस्तुत कर रहा हू । मैं मानता हू कि राज्य मागने से नही मिला करता । हमने दुर्योधन ओर धृतराष्ट्र के हृदय को परख लिया है । वे राज्य देने की इच्छा नही रखते । बल्कि हमारे मागने से उनका साहस और बढ गया है । वे समझने लगे है कि हमारे दिये बिना पाण्डव राज्य नही पा सकते । अगर राज्य पर इनका हक होता और उसे पाने की इनमे शक्ति होती तो याचना क्यो करते ? इस प्रकार मागने से कौरव राज्य नही देगे । फिर भी हमे अधिकार का राज्य तो लेना ही है । अतएव हमे अपना अधिकार अपनी शक्ति से ही प्राप्त करना चाहिए । याचना करना अपने गौरव को घटाना है

कृष्ण—तो क्या तुम्हारा यह अभिप्राय है कि भीम के कथनानुसार मै कौरवों के सामने युद्ध का ही प्रस्ताव उपस्थित करू ?

अर्जुन—मैंने भीष्म और द्रोण से समझा है कि युद्ध मे कितनी बुराइया है और उससे कितनी अधिक हानि होती है। युद्ध मे एक दूसरे पक्ष का विनाश ही चाहता है और विनाश ही करता है । और वास्तव मे भावी प्रजा के लिए निर्णय करने के अधिकारी हम कैसे हो सकते है ? अपने स्वार्थ के लिए भावी प्रजा को सकट मे डाल देना राजनीतिक बुद्धिमत्ता नही है । अतएव मैं युद्ध का ही प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए नही कहता । मेरा कथन सिर्फ यही है कि हमारा हक हर हालत मे मिलना चाहिए । आप जिस विधि से उचित समझे, हमारा हक दिलावे ।

कृष्ण—यह तो मैं समझ गया, लेकिन दुर्योधन के हाथ मे इस समय सत्ता है। मुझे विश्वास नही होता कि वह राज्य का लोभ छोड देगा। ऐसी दशा मे तुम मुझे किस मार्ग का अवलम्बन करने के लिए परामर्श देते हो।

अर्जुन—आपका विचार यथार्थ है। वास्तव मे सत्ता मनुष्य को गिरा देती है। यद्यपि सत्ता दूसरो की सेवा के लिए होनी चाहिए, मगर सत्ता प्राप्त होने पर मनुष्य मे अहंभाव आ जाता है और इस कारण सत्ताधीश घोर अनर्थ भी कर डालता है। दुर्योधन के हाथ मे इस समय सत्ता है अगर वह अपनी सत्ता का दुरुपयोग न करता तो हमे दखल देने की कोई आवश्यकता नही थी। लेकिन वह सत्ता का दुरुपयोग करता है—सत्ता के वल से हने दबाना चाहता है। अतएव हमें प्राण देकर भी अपने अधिकारो की रक्षा के लिए तत्पर रहना होगा।

कृष्ण—यह तो ठीक है। मगर मैं जा रहा हू। अगर भीष्म और द्रोण को सन्देश कहना हो तो कहो।

अर्जुन—आपके द्वारा ही अगर उन्हे सन्देश न भेजूंगा तो फिर किस के साथ भेजूंगा ? आप कृपा कर मेरे काका धृतराष्ट्र से कहना कि आप आखों से अन्धे है मगर हृदय से अन्धे मन वनें। आपके लिए यह उचित है कि आप हम पाण्डवो और दुर्योधन को समान समझे। अगर आप पक्षपात में पड़ गये हैं और दुर्योधन को अधिक तथा हमे न्यून मान कर अपने वडप्पन में कलंक लगा रहे हैं तो अभी

तक हुआ सो हुआ लेकिन अब ऐसा उपाय करो, जिससे कुल का विनाश न हो।

काका से यह कहने के साथ ही आप भीष्म और द्रोण से यह कहना कि अर्जुन ने आपको प्रणाम किया है। वह आपके उपकारों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। वैसे तो आप सत्य के पक्षपाती हैं और हमसे स्नेह करते है, लेकिन ऐसे नाजुक प्रसंग पर चुप्पी साधना अपनी वीरता और अपने क्षत्रियत्व को कलक लगाना है। आपने ऐन मौके पर मौन रह कर सत्य और स्नेह की रक्षा नहीं की है। अब भी आप सावधान हो। दुर्योधन आपके बल के भरोसे ही सेना सजा रहा है और आप उसके अन्याय को जानते हुए भी उसे सहयोग देने के लिए तैयार हुए हैं। यह सर्वथा अनुचित हैं।

इतना कहकर अर्जुन ने कहा—आप मेरी तरफ से यह सन्देश कह देना। अन्त मे मैं यही कहता हू कि मेरी बुद्धि अल्प है और आपकी बुद्धि सागर के समान अथाह। अतएव आप जो भी कुछ करेंगे, हम उसमें अपना कल्याण मानेंगे और आपके किये कार्य के विरुद्ध कदापि कुछ भी नही कहेगे।

अर्जुन के यह कह चुकने के पश्चात् कृष्ण ने युधिष्ठिर से पूछा—आपका क्या विचार है?

युधिष्ठिर—मैंने आपकी शरण में रहकर आपका उपदेश सुना हैं। मैं जानता हूं कि बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ भी आपके विचार सुनकर नम्र हो जाते है और अपना पक्ष

छोड देते हैं । आपके विचार हृदय को इस प्रकार प्रभावित कर देते है कि उनके विरुद्ध कोई कुछ भी नही कह सकता । अतएव आप जो कुछ करेंगे, मुझे स्वीकार होगा ।

युधिष्ठिर ने भीम, नकुल और सहदेव से पूछा—तुम्हारा क्या विचार है ? सभी ने कृष्ण पर अपना विश्‌-वास प्रकट किया और उनके निर्णय को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की ।

अन्त मे द्रौपदी की वारी आई । उससे पूछा गया—देवी तुम्हारा क्या विचार है ? इस प्रश्न के उत्तर मे द्रौपदी ने अपने केश हाथ मे लेकर कृष्ण से जो कुछ कहा था, वह कथन इतना उग्र था कि उससे मुर्दा-हृदय मे भी एक वार जान आ सकती थी । उसने ऐसी उग्रता भरी वात कह कर भी अन्त मे यही कहा—आप मेरे केशो का विचार अवश्य रखे । यो तो मैं आपके साथ ही हू, आप जो कुछ करेगे, हमारे हित मे ही होगा और वह सब मुझे स्वीकार होगा ।

इस प्रकार द्रौपदी सहित सभी पाण्डवो ने कृष्णजी पर अपना पूर्ण विश्वास प्रकट किया । परिणाम इसका यह हुआ कि महाभारत सग्राम मे पाण्डवो को ही विजय प्राप्त हुई । यद्यपि युद्ध मे कृष्ण नि शस्त्र थे, फिर भी कृष्ण पर ही सबने विश्वास प्रकट किया । इसी विश्वास की बदौ-लत उन्होने विजय पाई थी । इस घटना के प्रकाश में हमे अपने कर्त्तव्य का निर्णय करना चाहिए। आपको किस पर विश्वास रखना चाहिए ? सासारिक सकट जब आपके मस्तक पर मडरा रहे हो और

जब आपका अधिकार दूसरे ने अपहरण कर लिया हो तब आपको वीतराग भगवान् पर अचल आस्था रखनी चाहिये आपको उनका निर्णय स्वीकार करना चाहिए। ऐसा करने से आपकी विजय होगी।

११ : सच्ची शिक्षा

सौ कौरव और पाच पाडव एक ही जगह और एक ही आचार्य से अभ्यास करते थे। सब राजकुमारो मे युधिष्ठिर पढने मे मन्द गिने जाते थे। शिक्षक, युधिष्ठिर पर बहुत नाराज भी होते थे और उपालभ भी देते थे—तू सब राजकुमारो मे बडा है, भविष्य मे राज्याधिकारी होने वाला है, फिर भी पढने मे दत्तचित न होना क्या तुम्हे शोभा देता है ? गुरु का यह उपालभ युधिष्ठिर नम्रतापूर्वक सहन कर लेते थे और शिष्टतापूर्वक उत्तर देते थे कि आपकी तो मुझ पर कृपा है, परन्तु मेरी बुद्धि ही मन्द है। अतएव मुझे याद नही रहता। गुरु ने कहा—अगर तुम बराबर अभ्यास नही करोगे तो मुझे उपालभ मिलेगा। मुझे उपालभ से बचाने के लिए अभ्यास करो तो अच्छा है। युधिष्ठिर बोले–आप उपालभ के पात्र नही बनेगे। मै पढता नही हू तो इसमे आपका क्या दोष है ? दोष तो मेरी

मन्दबुद्धि का है और इसके लिए स्वय मैं ही उपालभ का पात्र हूं।

एक दिन सब राजकुमारो के अभ्यास की परीक्षा लेने के लिए पाडु राजा ने एक परीक्षक भेजा। परीक्षा ली जाती है तो होशियार छात्रों को आगे और मन्द छात्रो को पीछे रखा जाता है। इस पद्धति के अनुसार युधिष्ठिर सब राजकुमारों मे बड़े और राज्य के उत्तराधिकारी होने पर भी, पढने मे कमजोर होने के कारण सबसे पीछे खड़े किये गये। इस पर युधिष्ठिर को क्रोध आना स्वाभाविक था, परन्तु उन्हे क्रोध नही आया। उन्होने सोचा—मैं पढ़ने मे मन्द हूं और इस कारण पीछे रखना ही ठीक है।

परीक्षक परीक्षा लेने आया। सब राजकुमारों को देखने के बाद परीक्षक ने शिक्षक से कहा—युधिष्ठिर सबसे बडा है, फिर भी उसे सबके पीछे क्यों रखा है?

शिक्षक ने कहा—युधिष्ठिर अभ्यास करने मे बहुत मन्द है और इसी कारण उसे पीछे रखा गया है।

परीक्षक ने युधिष्ठिर की परीक्षा लेते हुए प्रश्न किया तुमने क्या सीखा है?

युधिष्ठिर—अभी संयुक्त अक्षर सीख रहा हूं और वाक्य बनाने का अभ्यास करता हूं।

यह सुनकर परीक्षक ने कहा—इतने बड़े हो गये हो

श्रौर इतने वर्ष पढ़ते–पढते हो गये हैं, फिर भी अब तक वाक्य बनाना नही आता ! ठीक बताओ कि तुम क्या सीखे हो ?

युधिष्ठिर ने पट्टी के ऊपर 'कोप मा कुरु' लिख दिया श्रौर परीक्षक के सामने रखते हुए कहा—इतना सीखा है ।

पहिले भारतवर्ष मे संस्कृत भाषा प्रचलित थी । लोग सस्कृत भाषा सीखते थे । आज तो सस्कृत भाषा का स्थान अंग्रेजी ने ले लिया है और सस्कृत भाषा को लोग Dead Language अर्थात् मृतभाषा कहते हैं । अंग्रेजी भाषा जानने वाले को अच्छी नौकरी मिलेगी, ऐसा कुछ लोग मानते है और कुछ लोग उसे सस्कृत भाषा की अपेक्षा अच्छी और समृद्ध भी मानते हैं । किन्तु यह मान्यता भ्रमपूर्ण है । मातृभाषा की बेकद्री करना और विदेशी भाषा की कद्र करना भूल है । तुम्हारे हृदय मे अपनी माता का स्थान ऊंचा है या दासी का ? अगर तुम्हारे हृदय मे माता के लिए उच्च स्थान है तो मातृभाषा के लिए भी ऊचा स्थान होना चाहिए । मातृभाषा माता के स्थान पर है और विदेशी भाषा दासी के स्थान पर । दासी कितनी ही सुरूपवती और सुघड़ क्यों न हो, माता का स्थान कदापि नही ले सकती ।

प्राचीन समय मे इस देश मे संस्कृत भाषा प्रचलित थी और इसी भाषा मे शिक्षा दी जाती थी । आज की तरह उस समय विदेशी भाषा का महत्त्व या प्रभुत्व नहीं था । अतएव युधिष्ठिर ने सस्कृत भाषा मे, अपनी पट्टी पर

पर 'कोप मा कुरु' अर्थात् क्रोध मत करो, ऐसा लिखा था ।

युधिष्ठिर की पाटी पर लिखा हुआ यह वाक्य पढ-कर परीक्षक ने कहा—'बस, इतना ही आता है ?

युधिष्ठिर—अभी तो इतना भी ठीक तरह नही आता !

परीक्षक—(क्रुद्ध होकर) इतना भी अभी याद नही हुआ ?

युधिष्ठिर—बाहर से तो इतना लेख याद हो गया है, परन्तु अन्दर से याद नही हुआ ।

यह सुनकर परीक्षक और अधिक कुपित हो गया । उसने क्रोध मे आकर युधिष्ठिर को मारना आरम्भ किया । यद्यपि युधिष्ठिर राजपुत्र था और चाहता तो परीक्षक को उचित दण्ड दिला सकता था, परन्तु उसने क्रोध का उत्तर क्रोध से नही वरन् शान्ति से दिया अर्थात् युधिष्ठिर पूर्ववत् प्रसन्नचित्त ही बना रहा । युधिष्ठिर को मार खाने के बाद भी प्रसन्नचित बैठे देखकर परीक्षक ने शिक्षक से कहा—कैसा है यह कि मारने पर भी प्रसन्न दिखाई देता है ! शिक्षक ने कहा—युधिष्ठिर की ऐसी ही प्रकृति है । ऐसी प्रकृति वाले को पढाया भी कैसे जाय ! परीक्षक ने युधि-ष्ठिर से पूछा—तुम्हे इतना पीटा गया फिर भी तुमने क्रोध नही किया ! इससे तो यह जान पडता है कि तुम पाटी पर लिखे वाक्य को अमल मे ला रहे हो ! इस कथन के उत्तर में युधिष्ठिर ने बतलाया—अभी मैं इस वाक्य को

सिद्ध नही कर सका हू । मैं ऊपर से तो क्रोध नही कर रहा था मगर भीतर ही भीतर मुझे क्रोध आ रहा था। मैं मन मे यह सोच रहा था कि मुझे मारने वाला यह होता कौन है ? अर्जुन और भीम सरीखे बलवान् मेरे भाई है और भविष्य मे मैं राज्याधिकारी होने वाला हू । फिर मुझे पीटने वाला यह होता कौन है ? इस प्रकार मेरे हृदय मे क्रोध की अग्नि भडकी थी। अतएव अभी मैं कोप मा कुरु इस वाक्य को सिद्ध नही कर सका हू । आप मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं इसे सिद्ध कर सकू !

युधिष्ठिर के ये नम्र वचन सुनकर परीक्षक गद्गद् हो गया और कहने लगा—युधिष्ठिर ! वास्तव मे तुमने सच्ची शिक्षा ग्रहण की है । तुमने सक्रिय ज्ञान प्राप्त किया है । लोग वाक्यो को कठस्थ तो कर लेते है मगर हृदय मे नही उतारते । तुमने अपना ज्ञान हृदय तक पहुचाकर क्रिया मे परिणत किया है, अतएव तुम्हारा थोडा-सा भी ज्ञान सक्रिय होने के कारण सच्चा ज्ञान है ।

आज जगत् मे ऐसे सक्रिय ज्ञान की आवश्यकता है । तोता रटंत ज्ञान से इष्टसिद्धि नही हो सकती इष्टसिद्धि तो सक्रिय ज्ञान से ही हो सकती है, अतएव सक्रिय ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है । परीक्षक युधिष्ठिर की सहिष्णुता तथा सत्यवादिता से अत्यन्त प्रसन्न होकर कहने लगा—हे युधिष्ठिर ! तू क्रोध विजेता और सत्यभाषी है, अतएव ससार को भी जीत सकेगा । युधिष्ठिर इस प्रकार सहनशील तथा सत्यभाषी होने के कारण ही आगे चल कर धर्मराज के रूप में प्रसिद्ध हुए ।

२० : विद्वान् की सेवा

राजशेखर नामक एक पण्डित बहुत संकटमय अवस्था में था। खाने के लिए उसे भरपूर अन्न भी नही मिलता था। ऐसी दु.खद अवस्था मे भी उसने धीरज नही छोड़ा। उसने विचार किया—अगर मै पुरुषार्थ करूगा तो मेरी दरिद्रता दूर हो जायेगी। इस प्रकार विचार कर वह आजीविका की पूर्ति के लिए धारा नगरी मे (वर्तमान धार मे) आया।

एक दिन—राजशेखर पण्डित मिट्टी के सिकोरे मे खराब अनाज साफ कर रहा था। राजा भोज ने घूमने जाते समय यह दृश्य देखा। यह देखकर राजा समझ गया कि यह कोई विद्वान् पुरुष जान पड़ता है। उसकी विद्वत्ता की जाच करने के लिए उसे लक्ष्य करके राजा भोज ने संस्कृत में कहा—जो लोग अपना पेट भी नही भर सकते वे इस ससार मे जीवित रहे तो क्या, और जीवित न रहे तो क्या ?

राजा का यह कथन सुनकर राजशेखर के हृदय को बडा आघात लगा। उसने संस्कृत भाषा मे ही उत्तर दिया जो शक्तिशाली होकर भी दूसरों की सहायता नही करते,

वे इस ससार में जीवित रहे तो क्या, और जीवित न रहे तो क्या ?

राजशेखर का करारा उत्तर सुनकर भोज को विश्वास हो गया कि यह कोई विद्वान् पुरुष है। मगर इतना विद्वान् होने पर भी यह इतना गरीब क्यो है ? यह जानने के लिए भोज ने पूछा—किस कारण तुम्हारी ऐसी दशा हुई है ? राजशेखर ने कहा—तुम सरीखे उदार राजा सब जगह नही हैं। इसी कारण मेरी यह दशा हुई है। यह रहस्यपूर्ण उत्तर सुनकर राजा ने मन में विचार किया—अब मुझे इस विद्वान् की पूरी-पूरी सहायता करनी ही चाहिये।

इस प्रकार विचार कर राजा हाथी से उतर पडा और हाथी राजशेखर को दे दिया। राजशेखर सोचने लगा—मुझे तो पेटभर खाना नही मिलता ! अब मैं इस हाथी को अपने घर कैसे बांधू ! इस प्रकार विचार कर राजशेखर ने हाथी के मुख के पास अपने कान लगा दिये और अपना सिर इस तरह हिलाने लगा, मानो हाथी पडित के कान मे कुछ कह रहा हो ! यह विचित्र दृश्य देखकर राजा ने पूछा—'क्या हाथी कुछ कह रहा है ?

राजशेखर—जी हा। हाथी मुझसे कह रहा है कि मुझे लेकर तुम बाधोगे कहा ? अतएव भलाई इसी मे है कि तुम राजा को फिर भेट रूप मे मुझे सौंप दो। ऐसा करने से मैं भी आनन्द मे रहूंगा और राजा द्वारा जो धन तुम्हें पुरस्कार में मिलेगा, उसे पाकर तुम भी आनन्द में रहोगे।

राजा भोज राजशेखर का आशय समझ गया। उसने राजशेखर को बहुत-सा धन देकर सुखी बना दिया।

अपने पास शक्ति हो तो प्रत्येक समर्थ व्यक्ति को दूसरो के दुःख दूर करने मे उसका व्यय करना चाहिए। दूसरो की सहायता करने वाला ही दूसरो से सहायता लेने का अधिकारी है।

२१ : साख

आज मुनाफा न लेने वाली या मर्यादित मुनाफा लेने वाली दुकान कहीं हो तो उससे जनता को बडी जबर्दस्त शिक्षा मिल सकती है।

प्रतापगढ मे पन्नालालजी मोगरा नामक एक सज्जन थे। वह श्री राजलालजी महाराज के बड़े भक्त थे। एक दिन उन्होंने मुनिजी से कहा—महाराज, आजकल व्यापार नही चलता, इसलिए धर्मकार्य करने मे भी मन नही लगता। मुनिजी ने उत्तर दिया—तुम श्रावक होकर दुःख मानते हो, यह आश्चर्य की बात है। लोभ मे पडकर दुगने ड्योढे करना चाहते हो, इसी कारण तुम्हे लगता है कि व्यापार नही चलता। पन्नालालजी के मन मे मुनिजी की

बात बैठ गई। उसी समय उन्होने एक आना प्रति रुपया से अधिक नफा न लेने की मर्यादा कर ली। वह कपड़े की दुकान करते थे। आरम्भ मे तो उन्हें कुछ असुविधाओं का सामना करना पड़ा परन्तु कुछ दिन बाद ऐसा विश्वास जमा कि लोग उन्ही की दुकान से खरीद करने लगे। भील भी उन्ही के ग्राहक बन गये। पन्नालालजी की ऐसी प्रतिष्ठा जमी कि लाखो रुपया खर्च करने पर भी वैसी न जमती इस प्रकार उनका व्यापार भी खूब चमक उठा और प्रतिष्ठा भी चमक उठी। लोगो मे भी यह बात फैल गई कि पन्नालाल झूठ नही बोलते।

२२ : सत्यवादी

सत्य मार्ग पर चलना, तलवार की धार पर चलने के समान कठिन भी है और फूलो के बिछौने के समान सरल भी। इसमे प्रकृति की भिन्नता का अन्तर है। ऐसे मनुष्य भी है, जो अकारण ही असत्य बोलते रहते हैं और सत्य-व्यवहार को तलवार की धार पर चलने के समान कठिन मानते हैं। उनका विश्वास है कि सत्य व्यवहार करने वाला मनुष्य ससार मे जीवित ही नही रह सकता। दूसरे ऐसे भी मनुष्य हो चुके है, जो असत्य व्यव-

हार करने की अपेक्षा, मृत्यु को श्रेष्ठ मानते है। सत्य-व्यवहार उनके लिए फूलो की सेज है। फिर उस मार्ग मे उन्हे चाहे कितने ही कष्ट क्यों न हो, किन्तु, वे उसकी परवाह किये बिना ही, प्रसन्नता-पूर्वक अपने मार्ग पर चलते रहते है।

जो मनुष्य सत्य-मार्ग का पथिक होता है, उस पर शत्रु भी विश्वास करता है और यह बात ध्रुव सत्य है कि वह शत्रु से भी विश्वासघात नही करता। इसके लिए महाभारत में वर्णित एक कथा का उदाहरण दिया जाता है।

जिस समय महाभारत-युद्ध मे दुर्योधन की प्रायः सारी सेना और सब भाई नि शेष हो गये, सौ भाइयों मे से एक दुर्योधन ही जीवित बचा, उस समय दुर्योधन ने सोचा—मैं अकेला क्या कर सकता हूं ? पाण्डवो के पास इस समय भी पर्याप्त शक्ति है और मैं अपने भाइयो मे से अकेला हूं। यह सोचकर प्राण बचाने के लिये वह एक तालाब मे जा छिपा। कई दिन तक इसी प्रकार छिपा रहने के पश्चात् उसने सोचा—मैं क्षत्रिय हूं। उद्योग करना मेरा परम कर्त्तव्य है। अतः कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए कि जिससे मेरी मृत्यु भी न हो और मैं भी पूरी शक्ति के साथ अकेला ही पाडवों से युद्ध कर सकू। सोचते सोचते, उसके विचार मे यह बात आई कि युधिष्ठिर सरल-हृदय है और सदैव सत्य भाषण करते हैं, अतएव उन्ही से कोई ऐसी युक्ति पूछनी चाहिए, जिससे मैं अजेय हो जाऊ यह सोचकर दुर्योधन जल से बाहर निकला और युधिष्ठिर

के पास जाकर पूछने लगा—महाराज ! मुझे कोई ऐसी युक्ति बताइये, जिससे मैं अजेय हो जाऊं और भीम या अर्जुन जिनका मुझे विशेष भय है, मेरा कुछ न बिगाड़ सके। युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—राजन् ! यह सिद्धि तो तुम्हारे घर मे ही है, कही बाहर जाने की आवश्यकता नही है। माता गाधारी बडी सती है। यदि वे एक-दृष्टि से तुम्हारे खुले-शरीर को देख ले तो तुम्हारा शरीर वज्र के समान कठोर हो जाए। किन्तु शरीर के जिस भाग पर उनकी दृष्टि न पड़ेगी, वह कच्चा रह जाएगा।

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर दुर्योधन प्रसन्न हुआ। सोचने लगा—अब क्या है, अभी जाकर माता गाधारी के सामने से नग्न होकर निकल जाऊंगा। बस फिर तो अर्जुन और भीम मेरा कुछ भी न बिगाड़ सकेंगे।

दुर्योधन यह सोचता हुआ अपने घर की ओर जा रहा था। मार्ग मे उसे श्रीकृष्ण मिले। उन्होने दुर्योधन के हृदय की बात जानकर कहा—दुर्योधन ! यह युक्ति तो धर्मराज युधिष्ठिर ने अच्छी बतलाई और इससे तुम्हारा सारा शरीर वज्रमय बन भी जायेगा, किन्तु बिलकुल नग्न होकर तुम्हे अपनी माता के पास जाना उचित नही है। लज्जा की रक्षा के लिए कम से कम एक कमल कौपीन तो अवश्य लगा लेना।

पहले तो इसके लिए दुर्योधन कुछ आनाकानी करता रहा, किन्तु श्रीकृष्ण के नीति बतलाने पर उसने यह बात स्वीकार करली। वह अपनी माता के पास गया और उससे सारी कथा कही। गान्धारी यह सुनकर चौकी। उसे नही

मालूम था कि मुझमें ऐसी शक्ति मौजूद है । किन्तु युधिष्ठिर सदव सत्य बोलते है, कभी असत्य भाषण नही करते, अत: अविश्वास करने का कोई कारण भी न था । गांधारी ने एक दृढ दृष्टि से दुर्योधन को देख लेना स्वीकार किया । तब दुर्योधन एक कमल–कौपीन लगाकर उसके सामने आ खडा हुआ । गाधारी ने एक दृढ दृष्टि से दुर्योधन के शरीर की ओर देख लिया । इससे उसका सारा शरीर तो वज्र के समान कठिन हो गया, किन्तु जो स्थान ढका हुआ था, वह कच्चा रह गया । दुर्योधन ने सोचा कि इस स्थान के कच्चा रह जाने से मेरी क्या क्षति हो सकती है ? यह स्थान तो धोती के भीतर रहता है, इस पर कौन चोट करने जाता है । यह विचार कर वह बाहर निकल आया और पाडवो के पास जाकर दूसरे दिन भीम से गदा—युद्ध करने की बात तय की ।

गाधारी के नेत्रो मे ऐसी शक्ति होने का कारण उसका पतिव्रत-धर्म ही था । उसने अपने नेत्रो से कभी किसी परपुरुष को बुरी दृष्टि से नहीं देखा था । पतिव्रता स्त्री के नेत्रो मे यह शक्ति होती है कि यदि वह किसी को पुत्र की तरह प्रेम की दृढ़ दृष्टि से देख ले, तो उसका शरीर वज्रमय हो जाय और यदि क्रोध की दृष्टि से देख तो भस्म हो जाय ।

प्राय: पूर्वकाल के लोगो की वाणी मे वह शक्ति होती थी कि वे जिसके लिये जो कुछ कह देते थे, वही हो जाता था । उनका आशीर्वाद या शाप, मिथ्या नही होता था । वे लोग सत्य का पालन करते थे और बात-बात

मैं न तो किसी को आशीर्वाद ही देते थे, न शाप ही। आज के लोग दिन–रात दूसरे का बुरा-भला चाहा करते हैं अर्थात् आशीर्वाद या शाप दिया करते हैं, परन्तु कुछ नहीं होता। इसका कारण यही है कि सत्य को न पहिचानने से उनकी वाणी निस्तेज हो जाती है। यदि सत्य को पहिचान लें तो न तो वे इस प्रकार किसी का भला बुरा ही चाहें और न चाहा हुआ भला–बुरा निष्फल ही हो।

दूसरे दिन दुर्योधन और भीम का गदा-युद्ध हुआ। भीम ने अपनी पूरी शक्ति से दुर्योधन के सिर, पीठ, छाती, भुजा आदि स्थानो पर गदा-प्रहार किन्तु सब निष्फल। गदा लगती और टकरा कर लौट आती, दुर्योधन का बाल भी बांका न होता। इसी समय भीम को अपनी प्रतिज्ञा याद आई कि मैंने द्रोपदी चीर-हरण के समय, दुर्योधन की जङ्घा चूर्ण करने की प्रतिज्ञा की थी। बस, फिर क्या था, तत्क्षण उसने अपनी गदा का प्रहार दुर्योधन की जङ्घा पर किया जङ्घा कच्ची तो रह गई थी, गदा लगते ही चूर्ण हो गई और दुर्योधन गिर पड़ा।

यह कथा बहुत लम्बी है, अतः इसे यही छोड कर विचारना है कि युधिष्ठिर का यह व्यवहार कैसा कहा जा सकता है, जो शत्रु को भी उचित और सत्य सलाह ही देते हैं।

जो मनुष्य सत्य–व्रत के पालने वाले हैं, वे अपनी शरण मे आये हुए शत्रु के साथ भी दुष्टता का व्यवहार नही करते। शरण मे आया व्यक्ति, जो सलाह पूछता है, उसे बिना किसी प्रकार भेद-भाव रखे और बिना किसी

मालूम था कि मुझमें ऐसी शक्ति मौजूद है । किन्तु युधिष्ठिर सदव सत्य बोलते है, कभी असत्य भाषण नही करते, अतः अविश्वास करने का कोई कारण भी न था । गांधारी ने एक दृढ दृष्टि से दुर्योधन को देख लेना स्वीकार किया । तब दुर्योधन एक कमल—कौपीन लगाकर उसके सामने आ खड़ा हुआ । गाधारी ने एक दृढ दृष्टि से दुर्योधन के शरीर की ओर देख लिया । इससे उसका सारा शरीर तो वज्र के समान कठिन हो गया, किन्तु जो स्थान ढका हुआ था, वह कच्चा रह गया । दुर्योधन ने सोचा कि इस स्थान के कच्चा रह जाने से मेरी क्या क्षति हो सकती है ? यह स्थान तो धोती के भीतर रहता है, इस पर कौन चोट करने जाता है । यह विचार कर वह बाहर निकल आया और पाडवों के पास जाकर दूसरे दिन भीम से गदा—युद्ध करने की बात तय की ।

गाधारी के नेत्रो मे ऐसी शक्ति होने का कारण उसका पतिव्रत-धर्म ही था । उसने अपने नेत्रो से कभी किसी परपुरुष को बुरी दृष्टि से नही देखा था । पतिव्रता स्त्री के नेत्रो मे यह शक्ति होती है कि यदि वह किसी को पुत्र की तरह प्रेम की दृढ दृष्टि से देख ले, तो उसका शरीर वज्रमय हो जाय और यदि क्रोध की दृष्टि से देख तो भस्म हो जाय ।

प्रायः पूर्वकाल के लोगो की वाणी मे वह शक्ति होती थी कि वे जिसके लिये जो कुछ कह देते थे, वही हो जाता था । उनका आशीर्वाद या शाप, मिथ्या नही होता था । वे लोग सत्य का पालन करते थे और बात-बात

थे न तो किसी को आशीर्वाद ही देते थे, न शाप ही। आज के लोग दिन-रात दूसरे का बुरा-भला चाहा करते है अर्थात् आशीर्वाद या शाप दिया करते हैं, परन्तु कुछ नही होता। इसका कारण यही है कि सत्य को न पहिचानने से उनकी वाणी निस्तेज हो जाती है। यदि सत्य को पहिचान लें तो न तो वे इस प्रकार किसी का भला बुरा ही चाहे और न चाहा हुआ भला-बुरा निष्फल ही हो।

दूसरे दिन दुर्योधन और भीम का गदा-युद्ध हुआ। भीम ने अपनी पूरी शक्ति से दुर्योधन के सिर, पीठ, छाती, भुजा आदि स्थानों पर गदा-प्रहार किन्तु सब निष्फल। गदा लगती और टकरा कर लौट आती, दुर्योधन का बाल भी बांका न होता। इसी समय भीम को अपनी प्रतिज्ञा याद आई कि मैंने द्रोपदी चीर-हरण के समय, दुर्योधन की जङ्घा चूर्ण करने की प्रतिज्ञा की थी। बस, फिर क्या था, तत्क्षण उसने अपनी गदा का प्रहार दुर्योधन की जङ्घा पर किया जङ्घा कच्ची तो रह गई थी, गदा लगते ही चूर्ण हो गई और दुर्योधन गिर पड़ा।

यह कथा बहुत लम्बी है, अतः इसे यही छोड कर विचारना है कि युधिष्ठिर का यह व्यवहार कैसा कहा जा सकता है, जो शत्रु को भी उचित और सत्य सलाह ही देते हैं।

जो मनुष्य सत्य-व्रत के पालने वाले हैं, वे अपनी शरण मे आये हुए शत्रु के साथ भी दुष्टता का व्यवहार नही करते। शरण मे आया व्यक्ति, जो सलाह पूछता है, उसे बिना किसी प्रकार भेद-भाव रखे और बिना किसी

प्रकार के ईर्ष्या-द्वेष के ठीक-ठीक बतला देते हैं। यह नहीं नही देखते कि शरणागत शत्रु है या मित्र।

युधिष्ठिर यह जानते थे कि दुर्योधन से मेरा युद्ध चल रहा है। मेरे भाई भीम और अर्जुन को हराने के लिए ही, वह मुझ से सलाह पूछने आया है। इस समय यदि वे चाहते तो कोई ऐसी राय बतला सकते थे, जिससे स्वयं दुर्योधन अपना नाश अपने हाथ से कर लेता। किन्तु युद्धिष्ठिर ने ऐसा न करके स्वच्छ-हृदय से, सच्ची और लाभदायक सम्मति ही दी। ऐसा करने वाले, सत्यमूर्ति-युधिष्ठिर के सत्यव्रत की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

२३ : शरणागत-रक्षा

आप उन वीर क्षत्रियो की सन्तान है, जिन्होंने दूसरो की रक्षा के लिये अपने शरीर का मांस काट कर दे दिया पर शरणागत का बाल भी बांका न होने दिया। क्या आप लोग उस वीर का नाम जानते हैं? उस वीर का नाम था—राजा मेघरथ।

एक दिन की बात है, राजा मेघरथ अपने धर्मस्थान मे बैठा हुआ था। एक भयभ्रान्त कबूतर उड़ता हुआ उनकी गोद मे आ गिरा। बोला—राजन्! मैं आपकी शरण में हूं, मेरी रक्षा कीजिये। राजा ने आश्वासन देते हुए कहा—तुम किसी प्रकार से मत डरो, मैं तुम्हारी हर प्रकार से रक्षा करूंगा।

इतने मे एक शिकारी (पारधी) दौड़ता हुआ आया। वह लंगोट पहने हुए था। उसका शरीर काला, ओंठ मोटे, केश बिखरे हुए और आंखे लाल थी। वह बोला—राजा मेरा शिकार दे। राजा ने शान्ति से कहा—'भाई, मैं इसे नहीं दे सकता। यह मेरी शरण में आ गया।'

शिकारी—'बस बस, मेरा शिकार फेक दो! नही तो ठीक न होगा।'

आजकल के जैसा कोई राजा होता तो उसे धक्के देकर उसी वक्त निकलवा देता, पर मेघरथ राजा ऐसा न था। वह दुष्टों पर भी दया करने वाला और क्रूरो को भी सुधारने वाला था। राजा ने उससे पूछा—'भाई! इसका क्या करोगे?

शिकारी—'क्या करूगा, अपना दु.ख मिटाऊँगा, मुझे भूख लग रही है।'

राजा—'भूख लग रही है, तो तुझे खाने को देता हूं, चाहे सो लेले।'

शिकारी—क्या तू मुझे धर्म का दान देना चाहता है? मैं धर्म का नही लेता, मैं अपने उद्योग से अपना पेट भरता हूं।

राजा—'बहुत अच्छा, सशक्त गृहस्थ को भीख तो लेनी ही नही चाहिये। मैं तुझे भीख नही देता, पर चीज लेकर चीज देता हूं। मुझे यह कबूतर पसन्द आ गया, मैं इसके बदले में तू मांगे सो देने को तैयार हूं।'

शिकारी—ऐसा ? अच्छा, मैं मांगूंगा वह देगा ?

राजा—'बराबर।'

शिकारी—देखना, अपनी जबान से फिर मत जाना। मैं ऐसी-वैसी चीज मांगने वाला नही हूं, या मुझे अपना शिकार दे दे।'

राजा—'कबूतर को छोड़कर, चाहे सो मांग ले, सब कुछ देने को तैयार हूं।'

शिकारी—'अच्छा तो मुझे इस कबूतर के बराबर अपने शरीर का मास दे दे।'

मित्रो ! राजा मेघरथ, अपनें शरीर को नाशवान् समझकर इस बात को कबूल करता है और अपने शरीर का मांस काट कर दे देता है।

कई जगह इस कथा में आये हुए पारधी के स्थान पर बाज का भी वर्णन पाया जाता है।

जिनके पूर्वज एक प्राणी की रक्षा के लिये अपने शरीर का मांस काट कर देना कबूल कर लेते हैं, पर प्राणी की हिंसा नही होने देते, अब उन्ही की संतान अपने तुच्छ मौज-शौक के लिये हजारो प्राणियो के नाश को देखकर भी हृदय मे दया न लावे तो उसे क्या कहना चाहिये ?

आपके पूर्वज, बिना चर्बी का, देश का बना हुआ कपडा पहनते थे, जिसे आज के लोग खादी के नाम से पुकारते हैं। खादी के उपयोग से न केवल पैसे की ही बचत होती है, पर धर्म भी बचता है। विलायती कपड़ो का जब इस देश मे प्रचार नही था तब लाखो मनुष्य इसी धन्धे के द्वारा अपना पेट भर लेते थे। इतिहास कहता है, कि बाद मे अंग्रेजो ने उन बेचारे गरीबो के अंगूठे कटवा लिये और अपने देश (विलायत) के वस्त्रो का यहा प्रचार बढा दिया। मिल भी यहा बन गये। इन मिलो से भी देश के मनुष्यो की कम क्षति नही हुई। सैकडो मनुष्यो की रोटी पर कुछ मनुष्य ही हाथ साफ करने लगे और बाकी भूखो मरने लगे। देश का सौभाग्य समझिये कि देश के कई हितैषियों और नेताओ ने इस भयंकर अत्याचार को पहचाना और चर्खे का पुनर्निर्माण किया। चर्खे के द्वारा आज फिर सैकड़ों भाई-बहनो को रोटी हाथ आने लग गई है। जो भाई खादी का उपयोग करते हैं; वह गुप्त रीति से इन गरीब भाई-बहनो को मदद पहुचाकर पुण्योपार्जन करते हैं ऐसा आज के नेता स्पष्ट समझाते हैं। उनका कथन है कि खादी सादी और देश की आजादी है।

२४ : भक्त

बंगाल मे चैतन्य प्रभु नाम के एक भक्त हो गये हैं। उन्होने बहुत से ऐसे देवी-भक्तों को, जो पशु-बलिदान के पक्षपाती थे, बहुत प्रभावशाली उपदेश देकर उनसे देवी के नाम पर निरपराध पशुओं का बलिदान करने की खोटी और महाकर्मबन्धन कराने वाली कुप्रथा छुडाकर, बहुत जीवो के प्राणो की रक्षा की है। साथ ही उन देवी-भक्तो को महापाप से बचाया है। उनके उपदेश का असर बंगाल निवासियों पर इतना पड़ा कि वहां के बहुत से मनुष्य उनके मत के अनुयायी बन गये। चैतन्य प्रभु के शिष्यों मे कई करोड़पति भी थे। चैतन्य प्रभु गरीबो और अमीरों में कोई भेद नहीं रखते थे। इनके गरीब शिष्य जिस प्रकार भिक्षा मांगने जाया करते, उसी प्रकार ये धनवान् करोड़पति शिष्यो को भी यही काम सौपते थे। इनके शिष्य केवल यही भिक्षा मांगते थे, 'मित्रो ! परमेश्वर का नाम लो।' जिस समय लोग करोड़पतियो के बच्चों को साधुवेश में देखते तो उनका हृदय प्रेम से उमड़ पड़ता और शक्ति से विशेष वस्तु द्वारा भी उनका आदर-सत्कार करने में अपना अहोभाग्य मानते थे। किन्तु जब इनको कोई स्त्री या पुरुष आहारादि की भिक्षा

देने को तैयार होता, तब ये कहते कि हमे इस भिक्षा की जरूरत नही है, अन्तरात्मा जिससे तृप्त हो, ऐसी ईश्वर के स्मरणरूपी भिक्षा दीजिये ।

चैतन्य प्रभु एक बार दक्षिण में गये । एक दिन उन्होने गीता-पाठ करने वाले एक पण्डित के पास बैठे हुए एक श्रोता को आंखो से अविरल अश्रुधारा बहाते देखा । वह था किसान । चैतन्य प्रभु ने उनसे पूछा—भक्त ! तू क्या समझा ? किसान ने कहा—महाराज, भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को जो वाणी सुनाई, मेरे ऐसे भाग्य कहा कि मैं उसे सुनता ? आज मैं उस वाणी को सुनकर धन्य-धन्य हुआ हू । इसी आनन्द से मेरा हृदय उछल रहा है, बाकी मैं कुछ नही समझता । उस कृषक के हृदय मे जैसा आन्तरिक प्रेम था, गीतापाठी पण्डित के हृदय मे भी वैसा प्रेम न था । □

२५ : सत्संकल्प की विजय

शिवाजी मे हिन्दू धर्म की रक्षा करने और भारत को मुसलमानो से वचाने की तीव्र भावना थी । इस भावना से प्रेरित होकर शिवाजी ने कैसे-कैसे प्रयत्न किये और कितने

संकट झेले, यह एक लम्बी कथा है। यहां सिर्फ यही बतलाया है कि भावना यदि तीव्र हो, संकल्प अगर अटल हो तो विघ्न भी किस प्रकार सहायक बन जाते हैं !

एक बार शिवाजी ने किसी किले पर हमला किया। उस किले की रक्षा के लिए बादशाह की ओर से देशपाण्डे नामक सरदार नियुक्त किया गया था। शिवाजी ने बहुत जोर मारा, अपनी सब शक्ति लगा दी फिर भी वे किले को न जीत सके। देशपाण्डे वीर भी था और चतुर भी था। इस कारण शिवाजी सफल न हो सके। निराश होकर वे सोचने लगे—अब क्या करना चाहिए ? आखिर विजय का कोई उपाय न देखकर उन्होने अपने विरोधी वीर देशपाण्डे के हाथ मर जाना ही ठीक समझा।

यह निश्चय करके शिवाजी रात्रि के समय अकेले किले में घुस गये। देशपान्डे को पता चला कि शिवाजी किले मे आये है। वह हाथ में तलवार लेकर शिवाजी के पास आया और कहने लगा—आप मुझे धोखा देने आये हैं, मगर याद रखिए, मैं धोखा खाने वाला नही हूं। आप वापिस लौट जाइए। कल सग्राम क्षेत्र में मिलिएगा।

शिवाजी ने देशपाण्डे से कहा—मैं आपको ठगने नही आया। मैं चाहता हूं, आप अपने हाथो मेरा सिर काट लें।

देशपाण्डे शिवाजी का उत्तर सुनकर चकित रह गया। वह स्वप्न में भी ऐसे उत्तर की सम्भावना नही कर सकता था। उसने पूछा—आखिर आप ऐसा क्यो कह रहे हैं ?

शिवाजी—मैं जो कुछ भी कर रहा हूं, अपने स्वार्थ के लिए नही। हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति की रक्षा के लिए ही मैं यह सब प्रयत्न कर रहा हूं। पर आपके कारण मेरे इस कार्य मे रुकावट पड़ गई है। ऐसी दशा मे जीवित रहकर भी क्या करूगा? आप जैसे वीर के हाथ से मेरी मृत्यु हो जाय तो मैं अपने जीवन को निरर्थक नही समझूंगा।

देशपाण्डे क्षत्रिय नही, ब्राह्मण था, फिर भी वीर था। वीर पुरुष पर किसी भी बात का असर जल्दी होता है। शिवाजी की बात सुनकर देशपाण्डे का दिल पिघल गया। उसे अपने पर लज्जा आई। उसने कहा—मैं अपने स्वार्थ के लिए ही आपके काम में बाधक हो रहा था। आपने अपने धर्म और देश के लिए घोर सकट सहे हैं और सह रहे हैं। मैं देश और धर्म के लिए कुछ भी नही कर रहा हूं बल्कि जो कर रहा है उसके कार्य मे बाधक बन रहा हू। वास्तव मे आप गौ–ब्राह्मण के प्रतिपालक हैं। आपने मेरे नेत्र खोल दिये। अब मैं बाधक नही बनूगा। आज से मेरा भी वही मार्ग होगा, जो आपका होगा।

जिसका संकल्प सत् है, अटल है और जो अपनी सम्पूर्ण शक्तिया अपने सकल्प के लिए समर्पित कर देता है, उसे सफलता मिलती ही है।

□

२६ : गुप्त-दान

लखनऊ के नवाब आसफुद्दौला के विषय में सुना है कि वह बड़ा दानी था और गुप्त रूप से दान किया करता था। जब कोई मनुष्य उसके महल के पास से थाली में कुछ लेकर निकलता तो वह किसी युक्ति से थाली मे सोने की मुहर डाल दिया करता था। थाली ले जाने वाले को पता तक नही चलता था।

जब वह मनुष्य घर पहुच कर थाली मे मुहर पडी देखता होगा तो उसे कितनी खुशी होती होगी?

नवाव की ऐसी दानशीलता देखकर किसी ने उससे कहा—आप मर्यादा से ज्यादा उदारता दिखलाते है। तब नवाब ने कहा—मुझे लोग उदार या दानी न कहे, इसलिए मैं गुप्त रूप से दिया करता हूं। इस सम्बन्ध मे एक कहावत प्रसिद्ध है :—

कैसे सीखे शेखजी, ऐसी देना-देन ?
ज्यो-ज्यो कर नीचा करो, राखो नीचे नैन।
देने वाला और है, भेजत हैं दिन रैन।
लोग नाम हमरो कहै, ताते नीचे नैन।

किसी ने नवाब से कहा—आप इस तरह दान देना कहा से सीखे हैं ? जब कोई तुम्हारे सामने हाथ लम्बा करता है तो आप नीची आखें क्यों कर लेते हैं ?

नवाब ने उत्तर दिया—दान देते वक्त कोई दूसरा ही है। वही लोगों के लिए दान भेजता है। उसी का पुण्य मेरे द्वारा दान दिलाता है। मैं तो निमित्त मात्र हूं। फिर भी लोग समझते हैं कि मैं ही दान देता हू। इसी कारण मेरी आंखे नीची हो जाती हैं।

❀ ❀ ❀

सुनते है, एक बार राणा भीमसिह संकट मे पड़ गये। तब किसी ने कहा—आप अपनी दानशीलता कुछ कम कर दीजिये।

राणा ने उत्तर दिया—मैं भोजन कम कर सकता हूं पर दान देना कम नही कर सकता।

इन्हे कहते हैं दानवीर।

२७ : प्राणदान

जापान की एक वृद्धा माता की कहानी बड़ी ही स्फूर्ति देने वाली है। उसके एक ही पुत्र था और कोई सन्तान नहीं थी। एक बार जापान के ऊपर जब किसी दूसरे देश

ने आक्रमण किया तो सेना की भर्ती शुरु हुई। वृद्धा के पुत्र ने भी भर्ती होने के लिए अपना नाम लिखवाया।

जापान में उस समय ऐसा नियम था कि किसी भी व्यक्ति को सेना में भर्ती करने से पहले दो बातों की जांच-पड़ताल कर ली जाती थी। भर्ती होने वाले के घर में कितने आदमी हैं और उसकी घरू व्यवस्था कैसी है ?

वृद्धा के लडके के संबध में जब यह जांच की गई तो पता चला कि लड़के की माता है, मगर वह बूढी है और उसकी सेवा करने वाला उसके घर में दूसरा कोई नही है। इस आधार पर लडके को सेना में भर्ती नही किया गया। लड़के ने सैनिक अधिकारी से अपने प्रार्थना-पत्र को अस्वीकृत करने का कारण पूछा तो उसे यही कारण बतला दिया गया। अधिकारी ने कहा—तुम अपनी बूढी माता के एकलौते बेटे हो। अपनी माता की सेवा करो। तुम युद्ध मे चले जाओगे तो तुम्हारी माता की सेवा कौन करेगा ?

लड़का निराश होकर घर लौट आया। उसने उदास चित्त से अपनी माता से कहा—मां, मेरे लिए तो अब तुम्हारी ही सेवा का काम रहा।

मां—क्यो, तू तो देश की सेवा के लिए युद्ध में जाने को कहता था न ?

लडका—मुझे सेना मे भर्ती नहीं किया।

मां—क्यो ?

लड़का—तुम्हारे कारण। मेरे सिवाय तुम्हारी सेवा और कौन करेगा ?

वृद्धा बहुत विचारशीला थी। उसे अपने पुत्र की बात सुनकर बहुत दुःख हुआ। वह सोचने लगी—इस पुत्र द्वारा होने वाली देश सेवा में मैं बाधक हो रही हूं! क्यों न इस बाधा को दूर कर दूं? इस प्रकार विचार करके उसने, जब पुत्र बाहर गया था, आत्महत्या कर ली। मरने से पहले उसने सैनिक अधिकारी के नाम एक पत्र लिखा। उसमे यह स्पष्ट कर दिया कि मैं देश के हित मे बाधक हो रही हूं और देशहित मे बाधक होकर जीवित रहना मुझे पसद नहीं है। अतएव मैं मृत्यु का आलिंगन करके देश-सेवा की बाधा को दूर करती हू। मेरे पुत्र को देश-सेवा के लिए सेना मे अवश्य भर्ती कर लिया जाय, यही मेरी एक मात्र अंतिम कामना है।

धन्य है वह देश, जिसमें ऐसी त्यागशीला माताएं मौजूद हो! भला ऐसा देश क्यो नही उन्नति के शिखर पर पहुचेगा ?

सचमुच व्यक्ति के लाभ-हानि से देश की लाभ-हानि बड़ी चीज है। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह पहले समूह की भलाई को देखे और फिर अपनी भलाई को। स्मरण रखना चाहिए कि समूह के कल्याण मे ही व्यक्ति के कल्याण का बीज है।

●

२८ : हाय गहने

(१)

मैं जब गृहस्थ-अवस्था मे था, तब की बात है। मेरे गांव में एक बूढे ने विवाह करना चाहा। एक विधवा बाई की एक लड़की थी। बूढे ने वृद्धा के सामने विवाह का प्रस्ताव उपस्थित किया मगर उसने और उसकी लड़की दोनो ने उसे अस्वीकार कर दिया। कुछ दिनो के बाद उस बूढ़े की रिश्तेदार कोई स्त्री उस बाई के पास आई और उसे बहुत से जेवर दिखलाते हुए कहा—तुम्हारी लड़की का विवाह उनके साथ हो जायगा तो इतना जेवर पहनने को मिलेगा। लालच मे आकर विधवा ने अपनी लड़की का विवाह उस बूढे के साथ कर दिया।

(२)

मेवाड की भी एक ऐसी ही घटना है। एक धनी वृद्ध के साथ एक कन्या का विवाह होना निश्चित हुआ। समाज-सुधारकों ने लड़की की माता को ऐसा न करने के लिए समझाया। लड़की की माता ने कहा—पति मर जायगा तो क्या हुआ, मेरी लड़की गहने तो खूब पहनेगी।

मित्रो ! आप ही बतलाएं, उक्त दोनो विवाह किसके साथ हुए ?

'धन के साथ !"

'पति के साथ तो नही ?'

'नही'

धन ही इन कन्याओ का पति बना !

२१ : करुणा

काशीनरेश की रानी का नाम करुणा था । एक दिन उसे वरुणा नदी मे स्नान करने की इच्छा हुई । उसने महाराज से स्नान के लिए आज्ञा मांगी । महाराज स्त्रियो को कोठरी मे बन्द रखने के पक्ष में नही थे । वे चाहते थे कि स्त्रियां भी सुखपूर्वक प्राकृतिक छटा का अवलोकन करें और प्रकृति की पाठशाला में कुछ सीखे । अतएव उन्होने बिना किसी आनाकानी के महारानी को आज्ञा दे दी ।

महारानी अपनी सौ दासियो के साथ, रथ पर सवार होकर नदी पर पहुची । वरुणा के तट पर गरीबो की झोंपडियां बनी हुई थी । उनमें कुछ मस्त फकीर भी रहते थे ।

रानी ने तटनिवासियो को कहला भेजा—महारानी स्नान करना चाहती हैं, इसलिए थोड़ी देर के लिए सब लोग अपनी-अपनी झोपडी छोड़कर बाहर चले जाएं। सब लोगों ने ऐसा ही किया। महारानी अपनी सखियों के साथ वरुणा में किलोल करने लगी। उसने यथेष्ट जलक्रीडा की। महारानी जब स्नान करके बाहर निकली तो उसे ठण्ड लगने लगी। उसने चम्पकवती नामक दासी से कहा—जाओ, सामने पेड़ों पर से सूखी लकड़िया ले आओ। उन्हे जलाओ। मैं तापूंगी।

चम्पकवती लकडिया लेने गई किन्तु कोमलता के कारण लकडिया न तोड सकी। वह वापस लौट आई और अपनी कमजोरी प्रकट करके क्षमायाचना करने लगी। महारानी बोली—खैर, जाने दो, मगर तापना जरूरी है। सामने बहुत-सी झोंपडियां खड़ी हैं। इन मे से किसी को आग लगा दो। अपना मतलब हल हो जायगा।

चम्पकवती समझदार दासी थी। उसने कहा—महारानीजी, आपकी आज्ञा सिर माथे, परन्तु आप इस विचार को त्याग दीजिए यह अच्छी बात नही है। गरीबों का सत्यनाश हो जायेगा! वे गर्मी-सर्दी के मारे मर जाएंगे। उनकी रक्षा करने वाली ये झोपडिया ही हैं।

महारानी की त्यौरियां चढ गई। बोली—बड़ी दयावती आई है कही की! अगर इतनी दया थी तो लकड़ियां क्यों न ले आई? अच्छा मदना, तू जा और किसी भी एक झोंपड़ी मे आग लगा दे।

मदना दासी गई और उसने महारानी की आज्ञा का पालन किया। झौपड़ी धांय-धांय धधकने लगी। महारानी कुछ दूरी पर बैठकर तापने लगी। उसकी ठण्ड दूर हुई। शरीर मे गर्मी आई। चित्त में शान्ति हुई। फिर महारानी रथ में बैठ कर राजमहल के लिए रवाना हो गई।

महारानी ने एक झौंपड़ी के जलाने की आज्ञा दी थी। मगर पास-पास होने के कारण, हवा के प्रताप से एक की आग दूसरे तक पहुंची और इस प्रकार तमाम झौपड़ियां जलकर राख का ढेर बन गई। लोग अपनी झौपडियां के पास आये, तब उन्होने वहां जो दृश्य देखा तो सन्न रह गये। झौंपड़ियों के स्थान पर राख का ढेर देखकर उनके शोक का पार न रहा। वे रोने और चिल्लाने लगे। किसी ने कहा—हाय ! हमारा सर्वस्व भस्म हो गया। दूसरे ने कहा—हाय ! अब हम कहां आश्रय लेंगे, गर्मी-सर्दी से बचने का एक ही ठिकाना था, सो छिन गया ! अब हमारी क्या गत होगी !

पहले ही कहा जा चुका है कि वहां कुछ मस्त फक्कड़ भी रहते थे। उन्होने रोने-चिल्लाने वालों को ढाढस बंधाया और समझाया—मूर्खो ! रोने से झौंपड़ी खड़ी नही हो जायेगी। हमारे साथ चलो और राजा को फरियाद करो।

लोग राजा से फरियाद करने चले। आगे-आगे बाबाजी और पीछे-पीछे गरीबों की फौज। लोगों ने उन्हें जाते देखकर पूछा—भाई, आज किधर चढाई करने जाते हो ? जब उन्हे कारण बतलाया गया तो उन्होंने बिना

मागी सलाह देते हुए कहा—बावले हो गये हो क्या ! महा-रानी ने झौपड़िया जला दी तो कौनसी सोने की लका जल गई ? घास-फूस की कमी तो है नही, फिर खड़ी कर लेना। छोटी-सी बात के लिए महाराज के पास पहुंचना क्या भली बात है ?

गरीब बेचारे अपढ । वे लोगो की इन बातो का कुछ भी उत्तर न दे सके । फकीरो ने कहा—जरा सोच-समझ कर बात कही होती तो ठीक था । आज इन गरीबो की झौपड़ियां जलाई गई हैं, कल महारानी तरग मे आकर तुम्हारे महलो मे आग लगवा देगी । क्या यह अत्याचार नहीं है ? जो आज छोटा अत्याचार कर सकता है, उसे कल बड़ा अत्याचार करते क्या देर लगेगी ? इसके अति-रिक्त इन गरीबो के लिए अपनी झौपडियां उतनी ही मूल्य-वान् हैं, जितने मूल्यवान् आपके लिए अपने महल है । इस-लिए यह कोई साधारण घटना नही है । हम तो कहते है कि तुम भी हमारे साथ चलो और जोरदार शब्दो में राजा से इस अत्याचार के विरुद्ध प्रार्थना करो ।

बात लोगों की समझ में आ गई । कल हमारे महल ही जलाये जाने लगेंगे ! अतः हम लोगो को भी इनका साथ देना चाहिए और इस अत्याचार को अन्तिम बना देना चाहिए ।

इस प्रकार लोगो का एक बडा भारी झुण्ड राजमहल के चौक में आ खड़ा हुआ । महाराज ने जनता का कोला-हल सुनकर महल के झरोखे में से बाहर की ओर झाका

तो बड़ी-सी भीड़ दिखाई दी। उन्होंने पूछा—तुम लोग इकट्ठे होकर क्यो आये हो ?

प्रजा—महाराज, गरीबो का सत्यनाश हो गया। अब यह बेचारे किस प्रकार अपने गर्मी-सर्दी के दिन बिताएंगे !

राजा—क्यो ? क्या हुआ ?

प्रजा—अन्नदाता, महारानीजी स्नान करने गई थीं। उन्हे ठण्ड लगी। तापने के लिए उन्होने एक झौंपड़ी में आग लगवाई और हवा के वेग से तमाम झौपड़िया जल कर भस्म हो गई है। ये बेचारे गृहहीन हो गये !

राजा—ऐसा अत्याचार हुआ ! अच्छा ठहरो।

काशी नरेश ने चम्पकवती दासी को महारानी को बुला लाने का आदेश दिया।

चम्पकवती महारानी के पास गई। उसने हाथ जोड़ कर कहा—महारानीजी, अन्नदाता आपको याद कर रहे हैं।

महारानी—आज इस वक्त क्यो ?

चम्पकवती—मैंने जो कहा था, आखिर वही हुआ।

महारानी—तूने क्या कहा था और क्या हुआ ?

चम्पकवती—मैंने नदी तट की झौंपड़िया न जलाने के लिए प्रार्थना की थी। आपने न मानी। तमाम झौपड़िया भस्म हो गईं। अब लोगो ने अन्नदाता के सामने फरियाद की है।

महारानी—तो क्या मुझे बुलाया है ?

चम्पकवती—जी हां ।

महारानी—प्रजा के सामने मुझे ।

चम्पकवती—जी हा ।

महारानी—महाराज नशे में तो नही हैं ! प्रजा के सामने मेरा फैसला होगा ?

चम्पकवती—मैं तो अन्नदाता की आज्ञा पालने आई हूं ।

आखिर महारानी, महाराज के सामने उपस्थित हुई । महाराज ने पूछा—रानीजी, यह लोग जो फरियाद कर रहे हैं, सो क्या सच है ?

महारानी—महाराज, बात तो सच है ।

महाराज—तो इसका दण्ड ?

महारानी—मैं महारानी हूं । मुझे दण्ड ?

महाराज—न्याय किसी का व्यक्तित्व नही देखता महारानी । वह राजा और प्रजा के लिए समान है । न्याय अगर लिहाज करेगा तो ब्रह्माण्ड उलट जायेगा ।

महारानी—अगर ऐसा है तो अपने खर्चे से इनकी झोपड़ियां बनवा दी जाए ।

महाराज—मगर प्रश्न तो धन का है । झोपड़ियां खड़ी करने के लिए धन कहा से आएगा ?

महारानी चकित थी । उसने कहा—महाराज, रुपयों की क्या कमी है ?

महाराज—रुपये क्या मेरे खून से या तुम्हारे खून से पैदा हुए हैं ? खजाने का रुपया भी तो इन्ही का है । इनके खून की कमाई से ही वह भरा गया है । जुल्म करें हम लोग और दण्ड भरा जाय इनके पैसों से ? यह तो दूसरा जुल्म हो जाएगा ।

महारानी समझ गई । बोली—अन्नदाता अब मेरी समझ मे आ गया । आप चाहे वही दण्ड दीजिए, मैं सब तरह तैयार हू ।

राजा ने गम्भीर होकर कहा—अच्छा, अपने हाथो से मजदूरी करो । उसीसे अपना पेट पालो । जो कुछ बचत कर सको उससे झोपडिया बनवा दो । जब झोपडियां तैयार हो जाए, तब महल मे पाव धरना ।

महाराज का न्याय सुनकर प्रजा सन्न रह गई । उसने इस फैसले की कल्पना ही नही की थी । लोगो ने चिल्ला कर कहा—अन्नदाता, हमारा न्याय हो चुका । अब हमारा कोई दावा नही है । कृपा कर महारानीजी को इतना कड़ा दण्ड न दीजिए ।

महारानी बोली—महाराज, आप लोगो की बातो मे न आइए । आपका न्याय अमर हो । आपका न्याय उचित है । अब इसे न लौटाइए । मैं प्रसन्न हू ।

प्रजा—नही महाराज, हम अपनी महारानीजी को ऐसा दड नही दिलवाना चाहते। अब हम कुछ भी नही चाहते। हमारी फरियाद वापस लौटा दीजिए।

महाराज—प्रजाजनो! तुम्हारी भक्ति की मैं कद्र करता हू, पर न्याय के समक्ष मैं विवश हूं। महारानी भी यही चाहती है।

महारानी—अन्नदाता, आज का दिन बडे सौभाग्य का दिन है। आज मैं अपने पति पर गर्व कर सकती हूं। आपने न्याय की रक्षा की है। अब मुझे आज्ञा दीजिए। मैं जाती हू।

महारानीजी ने अपने बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र उतार दिये। साधारण पोशाक पहन कर वह महल से विदा होने लगी।

राजघराने की स्त्रिया और प्रजा की स्त्रिया उन्हें रोकने लगी। रानी ने किसी की न सुनी। रानी ने कहा—बहिनो, मुझे रोको मत। अगर तुम्हारी मेरे साथ साहनु-भूति है तो तुम भी मजदूरी करो। मेरी सहायता करो। मैंने भीषण अत्याचार किया है। उसके फल से मुह मोडना अच्छा नही है। यह अभक्ष्य अपराध है।

स्त्रियो ने कहा—मगर आपका कष्ट हमसे नही देखा जाता।

महारानी—कष्ट! कष्ट कैसा! क्या सीता और

द्रौपदी ने कष्ट नही झेले ? आज उनका नाम-स्मरण आते ही श्रद्धाभक्ति से मस्तक क्यों झुक जाता है ? अगर धर्म और न्याय के लिए उन्होंने कष्ट न उठाये होते और राजमहल में रह कर भोगविलास का जीवन बिताया होता तो कौन उन्हें याद करता ? मैं चक्की चलाऊंगी, चर्खा कातूंगी और अपने अपराध का प्रायश्चित्त करूंगी ।

भाइयो और बहनो ! आपने महारानी करुणा की बात सुनी । उसके जरा से विलास की बदौलत लोगो को कितना कष्ट हुआ !

आप कलकत्ता जाते है और सोना खरीद लाते हैं । बहनें उनकी बंगड़िया बना कर पहनती और अभिमान करती हैं । पर कभी उन्होंने यह भी सोचा है कि ये बंगड़ियां कितने गरीबो के सत्यानाश से बन कर तैयार हुई है ? हाय ! हाय ! और तो क्या कहूं, आपने जो कपड़े पहने है, इन्हे देखो । इनमे चर्बी लगी है । न जाने कितने पशुओ को पील कर उनका क्रूरता-पूर्वक कत्ल करके वह चर्बी निकाली गई होगी । क्या आपका हृदय इतना कठोर है कि गरीबों और मूक पशुओ की इस दुर्दशा को देखकर भी नहीं पिघलता ?

३० : खादी

खादी शुद्ध वस्त्र है। इसमे चर्बी का उपयोग नहीं होता। इसीसे काम चलाना बुरा नही है, यही गरीबो की रक्षक है।

हेमचन्द्राचार्य जब साभर गये, तब उन्हे धन्ना नामक सेठ की स्त्री ने हाथ की कती हुई और हाथ की बुनी खादी भेंट की। वह बहुत प्रसन्न हुए और उसे पहना। जब राजा कुमारपाल, जो आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य था, दर्शन करने आया, तब उसने आचार्य को खादी पहने देखकर कहा—महाराज, आप हमारे गुरु हैं। आपको यह मोटी और खुरदरी खादी पहने देखकर मुझे लज्जा आती है। हेमचन्द्राचार्य बोले—'भाई तुम्हे खादी पहने देख कर लज्जा नही आनी चाहिए। लज्जा तो भूख के मारे मरने वाले गरीब भाइयों को देखकर आनी चाहिए!

हेमचन्द्राचार्य के इन शब्दो ने राजा कुमारपाल पर अद्भुत प्रभाव डाला। वह स्वय-खादी भक्त बन गया। उसने चौदह वर्ष तक प्रति वर्ष एक करोड़ रुपया गरीबो की स्थिति सुधारने में व्यय किया।

मित्रो! सोचिये, खादी ने क्या कर दिखाया! कितने गरीबो की रक्षा की? आप खादी से क्यों डरते हैं? क्या राज की तरफ से रोक-टोक है? दीवान साहब! क्या खादी पहनना आपके राज्य में निषिद्ध है?

३१ : शिवाजी की सच्चरित्रता

एक बार शिवाजी किसी जंगल की गुफा मे बैठे थे। उनका एक सिपाही किसी सुन्दर स्त्री को जबर्दस्ती उठा लाया। उसने सोचा था—इसे महाराज शिवाजी के भेट करूगा तो महाराज मुझ पर प्रसन्न होगे। लेकिन जब उस रोती-कलपती हुई रमणी की आवाज शिवाजी के कानों में पडी तो वे उसी समय गुफा से बाहर निकल आये। उन्होंने देखते ही सिपाही से कहा—'अरे कायर! इस बहिन को यहां किसलिए लाया है?'

शिवाजी के मुंह से 'बहिन' शब्द सुनते ही सिपाही चौक उठा। वह सोचने लगा—'गजब हो गया जान पड़ता है। मैं इसे लाया किसलिए था और होना क्या चाहता है! चौबेजी छब्बे बनने चले तो दुबे ही रह गये!' सिपाही कुछ नही बोला। वह नीची गर्दन किये लज्जित भाव से मौन रहा। शिवाजी ने कडक कर कहा—जाओ, इस बहिन को पालकी मे बिठला कर आदर के साथ इसके घर पहुंचा आओ।'

मित्रो! एक सच्चे वीर्यशाली और चरित्रवान् व्यक्ति के सत्कार्य को देखो। अबलाओ पर दूसरो द्वारा किये जाने वाले अत्याचारो का निवारण करना वीर पुरुष का कर्त्तव्य है, न कि उन पर स्वय अत्याचार करना। इस कथा से तुम बहुत कुछ सीख सकते हो।

३२ : वीरवर दुर्गादास

शिवाजी का पुत्र शम्भाजी था। वह शिवाजी से ज्यादा वीर, धीर और गम्भीर था परन्तु वह सुरा और सुन्दरी के फेर मे पड़ गया था। सुरा अर्थात् मदिरा और सुन्दरी अर्थात् वेश्याओ से उसे वहुत प्रेम हो गया था।

उन दिनो भारत का सम्राट् औरङ्गजेव था। राठौर दुर्गादास एक वार शम्भाजी के पास दक्षिण मे आया। शम्भाजी शराव के शौकीन थे ही। उन्होंने एक प्याला भर कर दुर्गादास के सामने किया। दुर्गादास ने कहा—क्षमा कीजिये, मुझे तो इसकी आवश्यकता नहीं है। मैंने तो इसे माता को समर्पण कर दिया है और अर्ज की है कि माता! तू ही इसे ग्रहण कर सकती है। मुझ में इसे ग्रहण करने की शक्ति कहां।

दुर्गादास ने जो कुछ कहा उससे शम्भाजी रूठ गया। दुर्गादास वहां से रवाना होकर शहर के वाहर किसी वगीचे मे ठहर गया।

मध्य रात्रि का समय था। चारों ओर वातावरण मैं निस्तब्धता छाई हुई थी। लोग निद्रा की गोद में वेसुध हो

विश्राम कर रहे थे । ऐसे समय मे दुर्गादास को नीद नहीं आ रही थी । वह इधर से उधर करवट बदल रहा था । इसी समय उसके कानो में एक आर्त्तनाद सुनाई पड़ा । 'हाय ! कोई बचाने वाला नहीं है बचाओ ! दौड़ो रक्षा करो ! रक्षा करो ! हाय रे !

दुर्गादास तत्काल उठकर खड़ा हो गया । उसके कानों मे फिर वही करुण-क्रन्दन सुनाई दिया । दुर्गादास ने सोचा— 'किसी अबला की आवाज जान पड़ती है । चलकर देखना चाहिए, बात क्या है?' इस प्रकार सोचकर वे बाहर निकले । इसी समय एक अबला दौड़ी आई और चिल्लाने लगी— 'रक्षा करो ! बचाओ !'

वीर दुर्गादास (सान्त्वना देते हुए) कहा—वहिन, इधर आ जाओ ।

स्त्री को ढाढस बन्धा । वह अन्दर आकर बैठ गई ।

कुछ ही समय बीता था कि हाथ में तलवार लिये शभाजी दौडते हुए वहा आये । वह बोले—इस मकान में हमारा एक आदमी आया है ।

दुर्गादास—शभाजी, जरा सोच विचार कर बात करो ।

शंभाजी—(पहिचान कर) ओह दुर्गादास ! भाई, तुम्हारे इधर हमारा एक आदमी आया है । उसे हमे लौटा दो ।

दुर्गादास—यहा कोई आदमी तो आया नही हैं, एक औरत आई है ।

मिला था । दुर्गादास को कैद हुआ देख उसे बड़ी खुशी हुई। वह वादशाह से वोली—दुर्गादास मेरा पक्का दुश्मन है। उसे मेरे सुपुर्द कर दीजिये । मैं उसे सीधा करूंगी ।

वादशाह गुलेनार की उगली के इशारे पर नाचता था । उसने दुर्गादास को वेगम के सुपुर्द कर दिया ।

वेगम को स्वर्ण अवसर मिल गया । वह रात्रि के समय सोलहों सिगार करके जहां दुर्गादास कैद था, वहा पहुंची । अपने साथ वह एक लडके को लेती गई थी । लडके के हाथ मे नगी तलवार देकर उसने कहा—देखो, भीतर कोई न आने पावे ।

वेगम दुर्गादास के पास जाकर वोली—आपको मैंने तकलीफ दी है । इसके लिए माफ कीजिए । मैं आप पर फिदा थी इसलिए बादशाह को कह-सुन कर आपको कैद करवाया है । आपके कैद होने का यह कारण है कि मैं ऐशो-आराम से आपके साथ रहू । आपकी खूबसूरती ने आपको कैद करवाया है । मैं तैयार होकर आई हू ।

दुर्गादास—मेरी मां, क्षमा करो । तुम मेरी मां के समान हो । मैं पराई स्त्रियो को दुर्गा के समान समझता हूं । तमाम स्त्रियां जगजननी का अवतार हैं । मुझे माफ करो, वेगम !

गुलेनार—जानते हो दुर्गादास, तुम किससे बात कर रहे हो ?

दुर्गादास—मैं नारीरूप मे एक माता से बात कर रहा हूँ।

गुलेनार—देखो, कहना मानो। सब तकलीफों से छुटकारा पा जाओगे। दिल्ली की यह बादशाहत मेरे हाथ मे है। मैं इस बादशाह को नही चाहती। अगर तुम मेरा कहना मान लोगे तो रात ही रात में बादशाह को कत्ल करवा डालूंगी। दिल्ली की बादशाहत तुम्हारे हाथ मे होगी।

दुर्गादास—मुझे इस प्रकार बादशाहत की जरूरत नही है। तुम्हारी बादशाहत तुम्ही को मुबारक हो।

गुलेनार—देखो, खूब समझ-बूझ लो। जैसे बादशाहत देना मेरे हाथ मे है, उसी तरह तुम्हारा सिर उतरवा लेना भी मेरे हाथ की बात है।

दुर्गादास—मुझे बडी खुशी होगी, अगर मेरा सिर दुर्गारूप तुझ देवी के चरणो मे लौटेगा।

दुर्गादास और बेगम के बीच इस प्रकार बातचीत हो रही थी। कार्यवश बादशाह का सिपहसालार उधर होकर जा रहा था। उसने रुक कर दोनो की बातें सुनी तो वह दग रह गया। दुर्गादास के प्रति उसके दिल मे आदर का भाव जागृत हो गया।

बेगम कही दुर्गादास की गर्दन न उतार ले, इस भाव से वह भीतर चला गया। दुर्गादास के चरणों में गिर कर उसने कहा—'दुर्गादास, तुम इन्सान नही, पीर हो, कोई पैगम्बर हो।'

शभाजी—जी हा, उसी को तो मांग रहा हूं।

दुर्गादास—मै उसे हर्गिज नही दे सकता। वह मेरी शरण मे है।

शभाजी—तुम्हे उससे क्या प्रयोजन है ?

दुर्गादास—प्रयोजन क्या है ? कुछ भी नही। मगर कह रहा हू, वह मेरी शरण में आई है। मै क्षत्रिय हूं। शरणागत की रक्षा करना मेरा परम धर्म है। तुम क्षत्रिय होकर भी क्या यह नही जानते ?

शभाजी—मै सब कुछ जानता हूं। सब कुछ समझता हूं। मेरी चीज मुझे लौटा दो, वर्ना ठीक न होगा।

दुर्गादास—मै अपने धर्म से च्युत कैसे होऊं ?

शभाजी—तुम्हारे हाथ मे तलवार नही है। तलवार होती तो दो हाथ अभी दिखाता।

दुर्गादास व्यग की हसी हंस कर बोले—उस अबला के हाथ मे तलवार है, इसलिए तुम उस पर वार करना चाहते हो !

शभाजी—इतनी धृष्टता ! अच्छा अपनी तलवार हाथ मे लेकर जरा अपना कौशल तो दिखलाओ। आज तुम्हे अपनी शूरवीरता का पता चल जायगा।

दुर्गादास—मैं नारीरूप मे एक माता से बात कर रहा हूं ।

गुलेनार—देखो, कहना मानो । सब तकलीफों से छुटकारा पा जाओगे । दिल्ली की यह बादशाहत मेरे हाथ में है । मैं इस बादशाह को नही चाहती । अगर तुम मेरा कहना मान लोगे तो रात ही रात मे बादशाह को कत्ल करवा डालू गी । दिल्ली की बादशाहत तुम्हारे हाथ में होगी ।

दुर्गादास—मुझे इस प्रकार बादशाहत की जरूरत नही है । तुम्हारी बादशाहत तुम्ही को मुबारक हो ।

गुलेनार—देखो, खूब समझ-बूझ लो । जैसे बादशाहत देना मेरे हाथ में है, उसी तरह तुम्हारा सिर उतरवा लेना भी मेरे हाथ की बात है ।

दुर्गादास—मुझे बडी खुशी होगी, अगर मेरा सिर दुर्गारूप तुझ देवी के चरणो मे लौटेगा ।

दुर्गादास और बेगम के बीच इस प्रकार बातचीत हो रही थी । कार्यवश बादशाह का सिपहसालार उधर होकर जा रहा था । उसने रुक कर दोनो की बाते सुनी तो वह दग रह गया । दुर्गादास के प्रति उसके दिल मे आदर का भाव जागृत हो गया ।

बेगम कही दुर्गादास की गर्दन न उतार ले, इस भाव से वह भीतर चला गया । दुर्गादास के चरणो में गिर कर उसने कहा—'दुर्गादास, तुम इन्सान नही, पीर हो, कोई पैगम्बर हो ।'

मिला था । दुर्गादास को कैद हुआ देख उसे बड़ी खुशी हुई। वह बादशाह से बोली—दुर्गादास मेरा पक्का दुश्मन है। उसे मेरे सुपुर्द कर दीजिये । मैं उसे सीधा करूगी ।

बादशाह गुलेनार की उगली के इशारे पर नाचता था । उसने दुर्गादास को बेगम के सुपुर्द कर दिया ।

बेगम को स्वर्ण अवसर मिल गया । वह रात्रि के समय सोलहो सिगार करके जहा दुर्गादास कैद था, वहा पहुंची । अपने साथ वह एक लडके को लेती गई थी । लडके के हाथ में नगी तलवार देकर उसने कहा—देखो, भीतर कोई न आने पावे ।

बेगम दुर्गादास के पास जाकर बोली—आपको मैंने तकलीफ दी है । इसके लिए माफ कीजिए । मैं आप पर फिदा थी इसलिए बादशाह को कह-सुन कर आपको कैद करवाया है । आपके कैद होने का यह कारण है कि मैं ऐशो-आराम से आपके साथ रहू । आपकी खूबसूरती ने आपको कैद करवाया है । मैं तैयार होकर आई हू ।

दुर्गादास—मेरी मा, क्षमा करो । तुम मेरी मां के समान हो । मैं पराई स्त्रियो को दुर्गा के समान समझता हूं । तमाम स्त्रियां जगजननी का अवतार हैं । मुझे माफ करो; बेगम ।

गुलेनार—जानते हो दुर्गादास, तुम किससे बात कर रहे हो ?

दुर्गादास—मैं नारीरूप में एक माता से बात कर रहा हूँ।

गुलेनार—देखो, कहना मानो। सब तकलीफों से छुटकारा पा जाओगे। दिल्ली की यह बादशाहत मेरे हाथ में है। मैं इस बादशाह को नही चाहती। अगर तुम मेरा कहना मान लोगे तो रात ही रात मे बादशाह को कत्ल करवा डालूंगी। दिल्ली की बादशाहत तुम्हारे हाथ मे होगी।

दुर्गादास—मुझे इस प्रकार बादशाहत की जरूरत नही है। तुम्हारी बादशाहत तुम्ही को मुबारक हो।

गुलेनार—देखो, खूब समझ-बूझ लो। जैसे बादशाहत देना मेरे हाथ में है, उसी तरह तुम्हारा सिर उतरवा लेना भी मेरे हाथ की बात है।

दुर्गादास—मुझे बडी खुशी होगी, अगर मेरा सिर दुर्गारूप तुझ देवी के चरणो मे लौटेगा।

दुर्गादास और बेगम के बीच इस प्रकार बातचीत हो रही थी। कार्यवश बादशाह का सिपहसालार उधर होकर जा रहा था। उसने रुक कर दोनो की बातें सुनी तो वह दग रह गया। दुर्गादास के प्रति उसके दिल मे आदर का भाव जागृत हो गया।

बेगम कही दुर्गादास की गर्दन न उतार ले, इस भाव से वह भीतर चला गया। दुर्गादास के चरणों मे गिर कर उसने कहा—'दुर्गादास, तुम इन्सान नही, पीर हो, कोई पैगम्बर हो।'

बेगम चौंकी। वह बोली—सिपहसालार, तुम यहां कैसे ?

सिपहसालार—इस पैगम्बर को सिर झुकाने के लिए।

गुलेनार—इतनी गुस्ताखी ?

सिपहसालार—यह बदतमीजी ?

गुलेनार—जबान सम्भाल ! किससे बात कर रहा है?

सिपहसालार—मैं सब सुन चुका। अपनी अक्लमंदी रहने दो।

असत्य स्वभावतः निर्बल होता है। बेगम थर-थर कांपने लगी। सेनापति ने दुर्गादास को मुक्त कर दिया और जोधपुर की ओर रवाना करने लगा।

दुर्गादास ने कहा—मैं बादशाह का बन्दी हूं। तुम मुझे मुक्त कर रहे हो। कदाचित् बादशाह जान गये तो तुम विपदा मे पड जाओगे। बादशाह तुम्हारा सिर उतार लेगे।

सेनापति—आप निश्चिन्त रहे। मेरा सिर उतारने वाला कोई नही।

इधर दुर्गादास रवाना हुआ और उधर बेगम गुलेनार ने जहर का प्याला पीकर अपने प्राण त्यागे।

बादशाह को सब समाचार मिले। उसने शम्भाजी को कैद कर बुलाया। अन्त मे शम्भाजी बडी बुरी तरह मारा गया। △

३३ : रक्षाबन्धन

रक्षाबन्धन के त्यौहार के विषय मे हिन्दू शास्त्रों मे जो कथा लिखी हुई है, उसका संक्षेप इस प्रकार है:—

राजा बलि दैत्यो का राजा था। उसने दान, यज्ञ आदि क्रियाओ से अपने तेज की इतनी वृद्धि की कि देव-राज इन्द्र भयभीत हो गया। उसने सोचा—'अपने तेज के प्रभाव से बलि इन्द्रासन पर बैठ जायगा और मुझे इन्द्रपद से भ्रष्ट कर देगा। इन्द्र ने अपने बचाव का उपाय खोजा। जब उसे कोई कारगर उपाय नजर नही आया तो वह विष्णु की शरण मे गया। विष्णु से उसने प्रार्थना की-'प्रभो ! रक्षा कीजिये। दैत्य हमे दुःख दे रहे हैं। वे हमारा राज्य छीनना चाहते हैं।' विष्णु ने इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार की। उन्होने वामन रूप धारण किया और वे बलि के द्वार पर जा पहुचे। राजा बलि अति दानी था मगर साथ ही अभिमानी भी था। विष्णु ने दान की याचना की। बलि ने कहा—कहो, क्या मागते हो ?

वामन—विष्णु बोले—रहने के लिए सिर्फ साढे तीन पैर जमीन।

बलि ने उनके ५२ अंगुल के छोटे स्वरूप को देखकर हंसते-हसते कहा—इतना ही क्या मांगा ? कुछ तो और मागते ।

वामन—इतना दे दोगे तो बहुत है ।

राजा बलि ने स्वीकृति दे दी । विष्णु ने अपने वामन-रूप की जगह् विशालरूप धारण किया । उन्होने अपनी तीन लम्बी डगों मे स्वर्ग, नरक और पृथ्वी-तीनो लोक नाप लिए । इसके बाद बलि से कहा—तीन पैर तो हो गये, अब आधे पैर-भर जमीन और दे !

बेचारा बलि किंकर्त्तव्यवि मूढ बन गया । वह और जमीन कहा से लाता । परिणाम यह हुआ कि वह अधिक जमीन न दे सका । तब विष्णु ने उसके सिर पर पैर रख-कर उसे पाताल मे भेज दिया ।

इस प्रकार दैत्यो द्वारा होने वाले उपद्रवो को मिटा-कर विष्णु ने भारत-भूमि को सुरक्षित बनाया ।

जैन शास्त्रों मे इस त्यौहार की कथा इस प्रकार है:—

विष्णुकुमार नाम के एक जैन मुनि बड़े तेजस्वी और महापुरुष थे । उनके समय मे चक्रवर्ती राजा का राज्य था । उनके प्रधान का नाम नमूची था । राजा ने वचनबद्ध होकर एक बार सात दिन के लिए राज्य के समस्त अधिकार नमूची को दे दिये । नमूची कट्टर नास्तिक और प्रबल द्वेषी था । उसे साधु शब्द से भी चिढ होती थी । वह अपने राज्य मे से समस्त साधुओ को निकालने लगा । साधु बड़े

सकट मे पडे । तब विष्णुकुमार मुनि नमूची के पास गये और बोले—भाई, अन्य साधुओ को अपने राज्य मे रहने दे या न रहने दे, परन्तु मैं तो राजा का भाई हूं । कम से कम मुझे तो साढे तीन पैर जमीन रहने के लिए दे दे ।

नमूची ने कहा—मैं साधु मात्र से घृणा करता हू । अपने राज्य मे एक भी साधु को रहने देना नही चाहता । पर तुम राजा के भाई हो, अतएव तुम्हे साढ़े तीन पैर जमीन देता हू ।

नमूची के वचन देने पर विष्णुकुमार मुनि नें अपनी विशिष्ट विक्रिया शक्ति से तीन पैरो मे ही तीन लोक नाप लिये । बाकी जमीन न बचने से अन्त मे नमूची के प्राणो का अन्त हुआ और साधुओ के कष्ट-निवारण से सम्पूर्ण भारत मे खुशी मनाई गई ।

आपने हिन्दू शास्त्रो और जैन शास्त्रो की कथाए सुनी । दोनो कथाओ मे कितनी समानता है, यह कहने की आवश्यकता नही है । विष्णु ने दैत्य राजा का विनाश कर इन्द्र की रक्षा की और जैन कथा के अनुसार विष्णुकुमार मुनि ने नमूची को दण्ड देकर साधुओ की रक्षा की । परन्तु मैं इन दोनो कथाओ से प्रतिध्वनित होने वाला रूपक आध्यात्मिक दृष्टि से घटाता हू ।

इन्द्र का अर्थ है—आत्मा । इन्दतीति-इन्द्रः—आत्मा । इस प्रकार अनेक स्थलो पर आत्मा के अर्थ मे इन्द्र शब्द का प्रयोग किया गया है । इस इन्द्र (आत्मा) को अहकार रूपी दैत्य हराता है । तब इन्द्र घबराकर आत्मबल रूपी

विष्णु से प्रार्थना करता है—त्राहि माम् त्राहि माम्—मेरी रक्षा करो—मुझे बचाओ। मेरी नैया पार लगाने वाले तुम्ही हो। आत्मबल अपनी विशेष शक्ति रूप पैर फैला कर स्वर्ग, नरक और पृथ्वी को नाप लेता है। जब आधे पैर की आवश्यकता और रहती है, तब सिद्ध स्थान प्राप्त कर, आनन्द कर देता है।

३४ : रक्षाबन्धन का महत्त्व

रक्षा का डोरा साधारण डोरा नही है। यह ऐसा बन्धन है कि उसमे बंध जाने के पश्चात् फिर कर्त्तव्य से विमुख होकर छुटकारा नही मिल सकता। रक्षा के बन्धन से सिर्फ हाथ ही नही बधता मगर वह हृदय का बन्धन है, वह आत्मा का बन्धन है, वह प्राणो का बन्धन है, वह कर्त्तव्य का बन्धन है, वह धर्म का बन्धन है। राखी के उस साधारण से प्रतीत होने वाले बन्धन मे कर्त्तव्य की कठोरता बंधी है, सर्वस्व का उत्सर्ग बधा है। राखी बंधवाने वाले को प्राण तक अर्पण करने पड़ते हैं।

नागौर (मारवाड) के राजा के राज्य पर एक बार बादशाह ने चढाई की। उनकी पुत्री ने अपने पिता से आज्ञा

लेकर एक क्षत्रिय को भाई बनाने के लिए राखी भेजी। यद्यपि उस क्षत्रिय का नागौर के राजा से मनमुटाव था, दोनो मे परस्पर शत्रुता थी, फिर भी वह राखी का तिरस्कार नही कर सका। राखी का तिरस्कार करना अपनी वीरता का तिरस्कार करना है, अपने कर्त्तव्य की अवहेलना करना है, पवित्र मर्यादा का अतिक्रमण करना है और कायरता का प्रकाश करना है। यह सोचकर क्षत्रिय ने राखी स्वीकार कर ली। बादशाह ने जब नागौर पर चढाई की तब उस वीर क्षत्रिय ने अपनी बहादुर सेना के साथ बादशाह की सेना पर धावा बोल दिया।

बादशाह की फौज पराजित हुई। नागौर के राजा ने उस क्षत्रिय का उपकार माना। दोनो का विरोध शान्त हुआ। नागौरपति ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर देना चाहा। जब कन्या के पास यह सवाद पहुचा तो उसने कहा—वह मेरा भाई है। मैंने राखी भेज कर उन्हे अपना भाई बनाया है। भाई के साथ बहिन का विवाह संबध कैसे हो सकता है ?

३५ : कृष्णाकुमारी का बलिदान

कृष्णाकुमारी की बात अधिक पुरानी नही है । वह मेवाड के राणा भीमसिह की कन्या थी । कहा जाता है कि उसकी सगाई पहले जोधपुर की गई थी पर कारणवश बाद मे जयपुर कर दी गई । जोधपुर वाले चाहते थे कि उसका विवाह हमारे यहा हो और जयपुर वालो की भी यही इच्छा थी ।

कृष्णाकुमारी अपने समय मे राजस्थान की अद्वितीय सुन्दरी समझी जाती थी । उसके सौन्दर्य की महिमा चारों ओर फैली हुई थी । ऐसी स्थिति मे उसे कौन छोड़ना चाहता ? जिस पर प्रतिष्ठा का भी प्रश्न था ।

विवाह की निश्चित तिथि पर जयपुर और जोधपुर वाले दोनो ही ब्याहने जा पहुचे । जयपुर वालो ने कहलाया—अगर कृष्णाकुमारी हमे न दी गई तो रण-भेरी बज उठेगी ।' जोधपुर वालो ने कहलाया—'अगर कृष्णाकुमारी का विवाह हमारे यहां न किया गया तो हम मेवाड को धूल मे मिला देगे !'

राणा भीमसिह कायर था । वह मरने से डरता था ।

उसे उन खूखार भेडियो को कुछ भी जवाब देने की हिम्मत न हुई। वह मन ही मन घुल रहा था। उसे समझ नही पड़ता था कि इस समय क्या करना चाहिए और क्या नही? आखिर किसी ने उसे सलाह दी—इस विपदा का कारण राजकुमारी कृष्णाकुमारी है। अगर इसे मार दिया जाय तो झगड़ा ही खत्म हो जाय! फिर न रहेगा बांस, न बजेगी बासुरी।

प्रताप के शुद्ध वंश में कलंक लगने वाले और मातृ-भूमि के उन्नत मस्तक को नीचा करने वाले कायर राणा ने यह सलाह मान ली।

सलाह को कार्य में परिणत करने के लिए हृदयहीन डरपोक राणा ने अपनी प्यारी पुत्री को दूध मे विष मिला-कर अपने ही हाथों से पीने के लिए प्याला दे दिया। भोली-भाली कुमारी को कुछ पता न था। उसने समझा—'सदा दासी दूध का प्याला लाकर देती है, आज प्रेम के कारण पिताजी ने दिया है।' कृष्णाकुमारी विषमिश्रित दूध पी गई पर उस पर जहर का तनिक भी असर न हुआ। दूसरे दिन उस हत्यारे राणा ने फिर विषमय दूध का प्याला दिया। कुमारी को किसी प्रकार की शका तो थी ही नही, वह फिर उसे गटागट पी गई। आज भी विष का प्रभाव नही हुआ। तीसरे दिन फिर यही घटना घटने वाली थी कि किसी प्रकार कुमारी के कान मे बात पड गई। उसने सोचा—'हाय! मुझे मालूम ही नही हुआ, अन्यथा पिताजी को इतना कष्ट न देती। मेरी ही बदौलत मेरी मातृ-भूमि

बादशाह के नौकर आते और साड़ी कितनी बुनी जा चुकी है, इस बात की खबर बादशाह को देते। बादशाह सोचता—चलो, दो-चार दिन मे पूरी हो जाएगी। मगर साड़ी पूरी तैयार नही हुई। भला इस प्रकार वह तैयार हो भी कैसे सकती थी? रानी को इस तरह करते-करते छह मास बीत गये। साडी फिर भी अधूरी की अधूरी ही रही।

कुछ दिन के बाद उसके पति को इस घटना की खबर मिली। उसने सोचा—मेरी पत्नी अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए कितना कष्ट भोग रही है!' उसके हृदय मे अपूर्व उत्साह पैदा हुआ। उसने सेना एकत्र की। अब की बार वह प्राणपण से लड़ा और उसने सफलता पाई। उसे पत्नी भी मिली और हालैंड का राज्य भी मिला।

३७ : माता का महत्त्व

मैंने एक पुस्तक में वनराज चावड़ा की कथा पढी थी। वह गुजरात मे बड़ा वीर हो गया है। उन दिनो उसकी शूरवीरता की धाक थी। उसके शौर्य की यशोगाथा सर्वत्र सुनाई पड़ती थी। मारवाड़ के राजाओ पर वनराज चावड़ा की गहरी धाक थी। एक बार मारवाड़ वालो ने सोचा—

हमारे मारवाड़ मे भी एक वनराज चावड़ा होना चाहिए । उन्होने मिल कर यह फैसला किया कि वनराज चावड़ा पैदा करने के लिए वनराज चावड़ा के पिता की आवश्यकता होगी । जब वे यहां आएं तो किसी वीर क्षत्रियाणी के साथ उनका विवाह करके वनराज चावड़ा पैदा कर लिया जाय । फैसला तो हो गया, पर उन्हे मारवाड़ में किस प्रकार लाया जाय, यह समस्या खड़ी हुई । एक भाट ने कहा—'आज्ञा हो तो वनराज के पिता को मैं मारवाड़ मे ले आऊ ?'

भाट की बात सभी ने स्वीकार की । भाट चला और वनराज के पिता के पास पहुचा । वनराज के पिता कविता के बहुत शौकीन थे । भाट ने उन्हे वीर-रस का प्रवाह बहा देने वाली सुन्दर भाव-पूर्ण कविताए सुनाई । उन्होंने प्रसन्न होकर यथेष्ट माग लेने वाली आज्ञा दे दी । भाट ने हाथ जोड कर कहा—'महाराज ! मैं आप ही को चाहता हूं ।

राजा—मुझे ?

भाट—जी हां, अन्नदाता !

राजा उसी समय सिहासन से उतर पड़ा । लोगो ने वहुतेरा समझाया, पर वह न माना । सच्चे क्षत्रिय वीर अपने वचन के पालन के लिए प्राण दे देना खिलवाड़ समझते थे । वे आप लोगो की तरह कहकर और हस्ताक्षर करके मुकर जाने वाले नही थे । अन्त मे वनराज का पिता और भाट घोडों पर सवार होकर चल दिये । मार्ग मे एक जगल आया । वहां एकान्त देखकर बनराज के पिता ने

पर घोर संकट आ पडा है । अगर मैं पुरुष होती तो युद्ध मे प्राण निछावर करके मातृभूमि की सेवा करती । मगर खैर, आज विषैला दूध पिलाने आयेगे तो उसे पीकर मातृभूमि का सकट टालने के लिए अपनी जीवन–लीला समाप्त कर दूगी ।

आखिर वही हुआ । कृष्णा ने विषमिश्रित दूध का प्याला पीकर अपने प्राण दे दिये । आज मेवाड के इतिहास में उसका नाम सुनहरे अक्षरो मे लिखा हुआ है ।

३६ : आत्मविश्वास

हालैण्ड मे एक वादशाह राज्य करता था । उसकी रानी वहुत सुन्दर थी । रानी के सौन्दर्य पर मोहित होकर दूसरे वादशाह ने, जो हालैण्ड के वादशाह का चाचा लगता था—चढाई कर दी । हालैण्ड का वादशाह अर्थात् आक्रमणकारी का भतीजा हार कर भाग गया । विजेता वादशाह राजमहल मे गया । उसने अपने भतीजे की पत्नी से कहा—'प्रिये, तू तनिक भी मत घवराना । मैं तेरे सौन्दर्य पर मोहित हू । तेरे लिए ही मैंने यह लड़ाई लड़ी है । अब मैं तुम्हारी प्रसन्नता प्राप्त कर सुख-भोग करना चाहता हू ।

तुम्हारा पति हार कर भाग गया है। उसके लिए चिन्ता मत करो। अब मुझे ही अपना पति समझकर सुख-पूर्वक रहो।'

रानी सती थी। उसने सोचा—सच्ची-सच्ची बात कहने से इस समय काम नही चलेगा।' अपने सतीत्व की रक्षा के लिए उसने नीति से काम लेने का निश्चय किया। वह नम्र-भाव से, हसती हुई कहने लगी—'आपका कथन ठीक है, पर मै आपसे एक वचन ले लेना चाहती हू। वह यह है कि जब तक मै अपने हाथ से साडी बुन कर और उसे पहन कर आपके पास न आऊं, तब तक आप मुझ से दूर रहे। अगर आप यह न मानेगे और बलात्कार करेगे तो मै प्राण त्याग दूगी।'

प्राण त्याग देने को उद्यत हो जाने पर कौन-सा काम नही हो जाता ? मनुष्य का परिपूर्ण प्रताप ही तो कठिन से कठिन काय मे सफलता दिलाता है।

बादशाह ने समझा—दो-चार दिन मे साड़ी तैयार हो जायेगी, तब तक बलात्कार करने से क्या लाभ ? चिड़िया पिंजरे मे फस चुकी है, उड़ कर कहा जायेगी ?

बादशाह ने वचन दे दिया। रानी ने बुनने के लिए ताना तैयार किया और बुनना आरम्भ कर दिया। पर वह दिन को साड़ी बुनती और रात के समय कुछ न कुछ खराबी निकाल कर दासियो द्वारा एक-एक तार जुदा करवा देती।

बादशाह के नौकर आते और साड़ी कितनी बुनी जा चुकी है, इस बात की खबर बादशाह को देते। बादशाह सोचता—चलो, दो-चार दिन मे पूरी हो जाएगी। मगर साड़ी पूरी तैयार नही हुई। भला इस प्रकार वह तैयार हो भी कैसे सकती थी ? रानी को इस तरह करते-करते छह मास बीत गये। साडी फिर भी अधूरी की अधूरी ही रही।

कुछ दिन के बाद उसके पति को इस घटना की खबर मिली। उसने सोचा—मेरी पत्नी अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए कितना कष्ट भोग रही है !' उसके हृदय मे अपूर्व उत्साह पैदा हुआ। उसने सेना एकत्र की। अब की बार वह प्राणपण से लड़ा और उसने सफलता पाई। उसे पत्नी भी मिली और हालैंड का राज्य भी मिला।

३७ : माता का महत्त्व

मैंने एक पुस्तक में वनराज चावड़ा की कथा पढी थी। वह गुजरात मे बड़ा वीर हो गया है। उन दिनो उसकी शूरवीरता की धाक थी। उसके शौर्य की यशोगाथा सर्वत्र सुनाई पड़ती थी। मारवाड़ के राजाओ पर वनराज चावड़ा की गहरी धाक थी। एक बार मारवाड़ वालों ने सोचा—

हमारे मारवाड़ मे भी एक वनराज चावड़ा होना चाहिए । उन्होने मिल कर यह फैसला किया कि वनराज चावड़ा पैदा करने के लिए वनराज चावडा के पिता की आवश्यकता होगी । जब वे यहा आएं तो किसी वीर क्षत्रियाणी के साथ उनका विवाह करके वनराज चावड़ा पैदा कर लिया जाय । फैसला तो हो गया, पर उन्हे मारवाड़ मे किस प्रकार लाया जाय, यह समस्या खडी हुई । एक भाट ने कहा—'आज्ञा हो तो वनराज के पिता को मैं मारवाड़ मे ले आऊं ?'

भाट की बात सभी ने स्वीकार की । भाट चला और वनराज के पिता के पास पहुचा । वनराज के पिता कविता के बहुत शौकीन थे । भाट ने उन्हे वीर-रस का प्रवाह बहा देने वाली सुन्दर भाव-पूर्ण कविताए सुनाई । उन्होने प्रसन्न होकर यथेष्ट माग लेने वाली आज्ञा दे दी । भाट ने हाथ जोड़ कर कहा—'महाराज ! मैं आप ही को चाहता हू ।

राजा—मुझे ?

भाट—जी हां, अन्नदाता !

राजा उसी समय सिहासन से उतर पडा । लोगो ने बहुतेरा समझाया, पर वह न माना । सच्चे क्षत्रिय वीर अपने वचन के पालन के लिए प्राण दे देना खिलवाड समझते थे । वे आप लोगो की तरह कहकर और हस्ताक्षर करके मुकर जाने वाले नहीं थे । अन्त मे वनराज का पिता और भाट घोडों पर सवार होकर चल दिये । मार्ग मे एक जगल आया । वहां एकान्त देखकर वनराज के पिता ने

पूछा—'भाई, मैं चल रहा हूं मगर मुझे ले जाकर करोगे क्या ? अगर कोई आपत्ति न हो तो बताओ ।

भाट ने कहा—अन्नदाता ! मारवाड़ में एक वनराज की आवश्यकता है । आप वनराज के जनक है । आप इस आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं । इसी उद्देश्य से आपको कष्ट दे रहा हूं ।

राजा—बात तो तुम्हारी ठीक है, पर अकेला मैं क्या करूंगा ? वनराज पैदा करने के लिए वनराज की मा भी तो चाहिए ।

भाट—महाराज, वहां किसी वीर क्षत्रियाणी से आपका विवाह कर देंगे ।

राजा—मगर वनराज पैदा करने के लिए ऐसी माता से काम नही चलेगा । उसके लिए कैसी माता चाहिए, सो मैं बताता हू । यह वनराज की माता की कहानी है । एक बार मैं रानी के महल मे गया । उस समय वनराज छह महीने का बच्चा था । मै रानी के साथ कुछ विनोद करने लगा । रानी ने मना करते हुए कहा—आप इस समय ऐसा न कीजिए । मै पर-पुरुषों के सामने अपनी आबरू खराब करना नही चाहती ।

मैने रानी से पूछा—यहा मेरे सिवाय और कौन पुरुष है ?

रानी ने पालने की ओर इशारा करके कहा—यह सो रहा है न ?

मैंने कहा—'वाह री सती ! एक छह महीने के बच्चे का इतना ख्याल करती है ! और मैंने उसके कन्धो के ऊपर अपने हाथ रख दिये ।

वनराज ने उसी समय अपना मुह फेर लिया । रानी ने कहा—देखा आपने ? आप जिसे अबोध बालक समझते हैं, उसने मुह फेर लिया ! हाय ! पर-पुरुष के आगे मेरी इज्जत चली गई । आपने उसे पुरुष नही, मास का पिंड समझा और मुझे बेआबरू कर दिया !

दूसरे दिन वनराज की माता ने विष-पान करके प्राण त्याग दिये ।

तुम्हारे यहां मारवाड मे ऐसी कोई वीरांगना मिल सकेगी ?

भाट ने कहा—यह तो मुश्किल है महाराज !

राजा—तो बतलाओ वनराज कैसे पैदा होगा ?

भाट ने वनराज को गुजरात लौट जाने की प्रार्थना की । वह निराश हो मारवाड़ लौट आया ।

३८ : क्रोध

दो चिडिया आपस मे लडने लगी । उनमे इतनी उग्र लडाई हुई कि एक-दूसरे की चोंच मे चोंच डाल कर, क्रोध मे पागल होकर दोनो आपस मे उलझती हुई नीचे आ गिरी । न वह उसकी चोच छोडे, न वह उसकी । दोनो एक दूसरी को पकड कर फसी रही । इस प्रकार वहुत देर हो गई । आखिर एक कुत्ता वहां आया । उसने अपने पजे का झपट्टा मारा । दोनो के प्राण-पखेरू उड़ गये ।

मित्रो ! वात साधारण है, छोटी-सी जान पड़ती है। पर इसके रहस्य का विचार कीजिए । बताइए उन चिड़ियों के मरने में दोप किसका है ?

विचार कीजिए, क्या उन चिडियो को घर बांटना था ? क्या उन्हे धन-दौलत का वंटवारा करना था ? असीम आकाश मे स्वच्छन्द विचरण करने वाली चिड़ियां, कुत्ते की क्या विसात, क्या शेर के भी हाथ आ सकती हैं ? फिर वे दोनो कुत्ते के द्वारा कैसे मारी गई ? क्रोध के कारण । क्रोध ने उनका नाश कर डाला । अगर वे क्रोध में पागल होकर अपना आपा न भूल गई होती तो कुत्ते की क्या मजाल कि वह उनकी परछाई भी पा सके ।

३९ : ब्रह्मचारी पितामह

एक बार भीष्म से किसी ने कहा—आपने विवाह न करके बहुत बुरा किया है। इससे भारत को बहुत हानि पहुची है। अगर आप विवाह करते तो आपकी सतान भी आपकी ही तरह पराक्रमी और वीर्यवान होती पर आपके विवाह न करने से भारत ऐसी सतान से वचित रह गया। यही भारत की बडी हानि है।

भीष्मकुमार ने कहा—मैं विवाह करता तो मेरी सतान भी मेरे जैसी होती, यह नही कहा जा सकता। क्षीरसागर मे विष भी हो सकता! मगर मेरे ब्रह्मचर्य को आदर्श मानकर न मालूम कितने व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करेगे और इस प्रकार अपना तथा जगत् का कल्याण करेगे।

गंगकुमार का विचार पहले ब्रह्मचर्य पालने का नही था। किन्तु उन्होने सोचा—जहा तक मै आजीवन ब्रह्मचर्य न पालूंगा वहा तक पिता की इच्छा पूरी नही हो सकती। इस प्रकार अपने पिता की इच्छा की पूर्ति के लिए उन्होने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया। इस कथा से यह भी विदित हो जायेगा कि पिता का क्या धर्म है और पुत्र का क्या कर्त्तव्य है?

सत्यवती उर्फ मत्स्यगंधा या योजनगंधा को देखकर राजा शान्तनु ने उसके साथ वार्तालाप किया और मन ही मन यह भी निश्चय कर लिया कि इस सर्वोत्कृष्ट कन्या के साथ विवाह कर इसे रानी बना लेना चाहिए। अब वह यह सोचने लगे कि इस विचार को कार्य रूप मे किस प्रकार परिणत किया जाय ? राजा ने पूछा—'तुम किसकी कन्या हो ?' कन्या ने उत्तर दिया—'सुदास की।'

राजा अपनी सत्ता से सुदास को अपने पास बुला सकता था पर केवल हुक्म चलाना बुद्धि का कार्य है, हृदय का कार्य तो धर्म का विचार करना है। राजा शान्तनु धर्म का विचार कर स्वयं याचक बनकर सुदास के पास गया। राजा ने उसे दाता बनाया और आप स्वय याचक बना। यहा पर देखने योग्य है कि कन्या के पिता का क्या कर्त्तव्य है ? सुदास यह सोच सकता था कि मै अपनी कन्या राजा को दे दूगा तो मेरा वैभव बढेगा और मै धनवान् बन जाऊगा। पर वह इस प्रलोभन में नही पड़ा। उसने अपनी कन्या का भावी हित देखा और एक राजा द्वारा मगनी करने पर भी उसने राजा से कहा—मैं अपनी कन्या आपको देने मे असमर्थ हू। आपका पुत्र गगकुमार विकट वीर है। राज्य का स्वामी वही बनेगा और मेरी कन्या से उत्पन्न हुआ पुत्र राज्य का अधिकारी नही हो सकेगा। वह इधर-उधर मारा-मारा भटकता फिरेगा। अतएव मैं अपनी कन्या आपको देने के लिए लाचार हू।' वास्तव मे माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि वे अपनी सतान के हित पर पहले ध्यान दें। उन्हे अपने स्वार्थ-साधन का जरिया न बनावें।

सुदास का उत्तर सुनकर राजा सोचने लगा—'यद्यपि यह कन्या मुझे अत्यन्त प्रिय है, किन्तु इसके लिए अपने प्रिय पुत्र गगकुमार का अधिकार कैसे छीना जा सकता है? मै अपनी इच्छा को दबाये रखूगा, पर गगकुमार के अधिकार का अपहरण न करूंगा।'

भाति-भाति के विचारो मे डूबता-उतराता हुआ राजा राजमहल की ओर लौट आया। वह सुदास की कन्या की मंगनी करने के लिए पश्चात्ताप करने लगा। दूसरी ओर उसका हृदय सुदास की कन्या की ओर अत्यन्त आकृष्ट हो गया था और इस कारण वह सुन्दरी कन्या उसके मानस-चक्षुओं के सामने पुनः प्रकट होकर राजा को चिन्तातुर बनाये हुए थी। इसी चिन्ता का मारा राजा दिनोदिन क्षीण होता जा रहा था।

पिता की चिन्ता का कारण मन्त्रियो द्वारा जान कर गगकुमार ने अपने पिता का कष्ट दूर करने के उद्देश्य से सुदास के पास जाने का निर्णय किया। मन्त्रियो ने कहा—सुदास को यहां क्यो न बुला लिया जाय ? आपका उसके पास जाना नही सोहता ! गगकुमार ने कहा—जब हम उसकी कन्या लेना चाहते है तो धर्म-विरुद्ध कार्य नही करना चाहिए। अत: उसी के घर जाना उचित है। इस प्रकार निर्णय कर गंगकुमार मन्त्रियो के साथ सुदास के घर चला। गगकुमार और मन्त्रियो को अपने घर की ओर आता देख सुदास ने सोचा—मैंने महाराज को अपनी कन्या देना स्वीकार नही किया है, शायद इस कारण मुझे दड देने के

देकर वह सत्यवती के साथ विवाह कर सकता था। पर उसने ऐसा नही किया। उसने सोचा—मैं अपनी कामना की पूर्ति के खातिर पुत्र के अधिकार का अपहरण कैसे कर सकता हू! इस विचार के वशवर्ती होकर उसने अपनी इच्छा का दमन करना न्यायसगत समझा, पर पुत्र के अधिकार को छीनना उचित न समझा। इसी प्रकार जहा पिता-पुत्र एक दूसरे के हित का ही विचार करते है, वहां कभी आपसी वैमनस्य या सघर्ष उत्पन्न नही होता। वृद्ध और युवक इसी भाति हिलमिल कर चले तो उत्थान और शान्ति के साथ-साथ आनन्द का सर्वत्र प्रचार हो सकता है।

गगकुमार ने सुदास ने कहा—पिता के हित के यज्ञ मे मैने अपना सर्वस्व होम दिया है, इस कारण सुदास! मै तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हू कि मै राज्य स्वीकार नही करूगा और तुम्हारी पुत्री से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही राज्य का अधिकारी होगा।

गंगकुमार की यह प्रतिज्ञा सुनकर सुदास कहने लगा—'आप वास्तव मे वीर पुरुष हैं। आप जैसी प्रतिज्ञा और कौन कर सकता है! पर मुझसे एक भूल हो गई है। आपका पुत्र भी आप ही जैसा पराक्रमी होगा। आप राज्य स्वीकार नही करेंगे पर आपका पुत्र मेरी पुत्री के पुत्र को राज-सिहासन पर भला कब बैठने देगा? वह यह कहेगा कि राज्य मेरे पिता के अधिकार मे है, अतएव राज्य का असली अधिकारी मै ही हू। मेरे पिता ने यदि राज्य त्याग दिया था तो क्या हुआ? मैने तो कभी राज्य का परित्याग नही किया है। मै अपने उत्तराधिकार को क्यो त्याग दू ?

इस प्रकार कह कर आपका पुत्र मेरी पुत्री के पुत्र को राज्य सिहासन पर न बैठने दे, यह सभव है। ऐसी परिस्थिति में अपनी कन्या आपके पिताजी को सौप देना मेरे लिए शक्य नही है।'

जो लोग अपनी कन्या को धन के लोभ मे फसकर बेच डालते है उन्हे सुदास के कथन पर विचार करना चाहिए। एक साधारण श्रेणी का आदमी धीवर भी अपनी कन्या के अधिकार के संरक्षण के लिए कितने उन्नत विचार रखता है। उच्च श्रेणी और उच्च-कुलीन होने का दावा करने वालो को अपनी पुत्री के अधिकारो के सबध मे कितने उच्चतर विचार रखने चाहिए।

सुदास का यह कथन सुनकर गंगकुमार ने कहा—"तुमने ठीक कहा है। तुम्हे मेरे भावी पुत्र का भय है पर यदि मैं विवाह ही नही करूगा तो पुत्र कहा से आयेगा? अतएव मैं देव, गुरु और धर्म की साक्षी से प्रतिज्ञा करता हू कि मैं जीवन-पर्यन्त विवाह नही करूगा। मैं जीवन भर ब्रह्मचारी रहूगा।

गंगकुमार ने विवाह करने का भी त्याग किया था, पर आज इससे ठीक विपरीत अवस्था दिखाई देनी है। आज अनेक लोलुप विवाह करके भी अनैतिक सम्बन्ध जोडने से नही हिचकते! और यूरोप की तो लीला ही निराली है। वहां विवाह के बधन को ही बुरा समझा जाता है और कहा जाता है—स्वेच्छा से बधन मे पड़ना भला कौनसी बुद्धिमत्ता है! इस धारणा के कारण वहां स्वैर विहार का

लिए तो ये लोग नही आ रहे ! पर मैने उन्हे कोई अनुचित्त उत्तर नही दिया । ऐसी अवस्था मे अगर प्राण जाए, तो चले जाए, मुझे डर किस बात का है !

गगकुमार ने सुदास से कहा—'अपना सौभाग्य समझो कि पिताजी तुम्हारी कन्या चाहते है और तुम्हारे जामाता बन रहे हैं । नातेदारी के लिहाज से तुम मेरे नाना बन रहे हो । फिर भी तुम इस संबध को अस्वीकार क्यो कर रहे हो ? सुदास ने उत्तर दिया—इस सबध मे आप ही बाधक हैं । यदि आप यह प्रतिज्ञा करे कि सत्यवती (मत्स्य-गंधा) का पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा, तो महाराज के साथ अपनी कन्या का विवाह करने मे मुझे तनिक भी आनाकानी नही है ।

सुदास का उत्तर सुनकर गगकुमार सोचने लगे—'आज वास्तव मे यज्ञ का अवसर उपस्थित है ।' लोग यज्ञ का अर्थ सिर्फ आग मे घी होमना करते हैं पर सच्चा यज्ञ क्या है, इस विषय में कहा गया है —

श्रोत्रादीनीन्द्रियान्यन्ये सयमाग्निषु जुह्वति,
शब्दादिविषयानन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।
सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे,
आत्मसयमयोगाग्नी जुह्वति ज्ञानदीपिते ।

आज श्रोत्र आदि इन्द्रियो को पिता के हित के लिए मैं यज्ञ मे समर्पण करता हू । हे कान ! तू ने बहुत बार सुना है कि गगकुमार युवराज है, पर अब इस कथन का

पिता के हित को अग्नि मे आज उत्सर्ग करना होगा और सत्यवती का पुत्र युवराज है, इस कथन मे आनद मानना होगा ! हे नेत्रों ! तुम राजसी पोशाक को देखकर आनद मानते थे, पर अब इस इच्छा को यज्ञ मे होमना होगा और भाई को राजा के रूप मे देखकर प्रफुल्लित होना पड़ेगा ! ओ जिह्वा ! तू भी अपने विषयो से लोलुपता त्याग दे, क्योकि पिता के हित के लिए तेरे विषयो को भी मैं यज्ञ की सामग्री वनाऊगा ! अरे मस्तक ! तू बहुत दिनो तक उन्नत रहा है पर अब सत्यवती के पुत्र के सामने तुझे झुकना होगा और उसे राजा स्वीकार करना होगा ।

अग्नि में घी का होम करने वालो की कमी नही है पर ऐसा महान् यज्ञ करने वाले विरले ही होते हैं ।

गगकुमार कहता है—हे शरीर ! तू राजा बनना चाहता था पर अब भाई को राजा बनाकर अपने हाथ से उसके ऊपर चवर ढोरने पड़ेंगे । इस प्रकार पिता के हित के लिए अपने स्वार्थ का यज्ञ करना पड़ेगा ।

युवकों के लिए यह एक महान् आदर्श है । देश, धर्म और माता-पिता के लिए ऐसा अनूठा त्याग करने वाले युवको की वात कौन नही मानेगा ?

इसी प्रकार पिता का कर्त्तव्य क्या है ? यह बात राजा शान्तनु के विचारो से देखो । राजा चाहता तो यह वचन दे सकता था कि सत्यवती की कूख से जन्म लेने वाला पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा और यह वचन

देकर वह सत्यवती के साथ विवाह कर सकता था। पर उसने ऐसा नही किया। उसने सोचा—मैं अपनी कामना की पूर्ति के खातिर पुत्र के अधिकार का अपहरण कैसे कर सकता हू! इस विचार के वशवर्ती होकर उसने अपनी इच्छा का दमन करना न्यायसगत समझा, पर पुत्र के अधिकार को छीनना उचित न समझा। इसी प्रकार जहां पिता-पुत्र एक दूसरे के हित का ही विचार करते हैं, वहा कभी आपसी वैमनस्य या सघर्ष उत्पन्न नही होता। वृद्ध और युवक इसी भाति हिलमिल कर चले तो उत्थान और शान्ति के साथ-साथ आनन्द का सर्वत्र प्रचार हो सकता है।

गगकुमार ने सुदास ने कहा—पिता के हित के यज्ञ मे मैंने अपना सर्वस्व होम दिया है, इस कारण सुदास! मै तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हू कि मै राज्य स्वीकार नही करूगा और तुम्हारी पुत्री से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही राज्य का अधिकारी होगा।

गंगकुमार की यह प्रतिज्ञा सुनकर सुदास कहने लगा—'आप वास्तव मे वीर पुरुष है। आप जैसी प्रतिज्ञा और कौन कर सकता है! पर मुझसे एक भूल हो गई है। आपका पुत्र भी आप ही जैसा पराक्रमी होगा। आप राज्य स्वीकार नही करेंगे पर आपका पुत्र मेरी पुत्री के पुत्र को राज-सिहासन पर भला कब बैठने देगा? वह यह कहेगा कि राज्य मेरे पिता के अधिकार मे है, अतएव राज्य का असली अधिकारी मै ही हू। मेरे पिता ने यदि राज्य त्याग दिया था तो क्या हुआ? मैंने तो कभी राज्य का परित्याग नही किया है। मै अपने उत्तराधिकार को क्यो त्याग दू?

इस प्रकार कह कर आपका पुत्र मेरी पुत्री के पुत्र को राज्य सिहासन पर न बैठने दे, यह सभव है। ऐसी परिस्थिति में अपनी कन्या आपके पिताजी को सौप देना मेरे लिए शक्य नही है।'

जो लोग अपनी कन्या को धन के लोभ मे फंसकर बेच डालते है उन्हे सुदास के कथन पर विचार करना चाहिए। एक साधारण श्रेणी का आदमी धीवर भी अपनी कन्या के अधिकार के सरक्षण के लिए कितने उन्नत विचार रखता है। उच्च श्रेणी और उच्च-कुलीन होने का दावा करने वालो को अपनी पुत्री के अधिकारो के सबध मे कितने उच्चतर विचार रखने चाहिए।

सुदास का यह कथन सुनकर गगकुमार ने कहा—"तुमने ठीक कहा है। तुम्हे मेरे भावी पुत्र का भय है पर यदि मैं विवाह ही नही करूगा तो पुत्र कहा से आयेगा ? अतएव मैं देव, गुरु और धर्म की साक्षी से प्रतिज्ञा करता हू कि मैं जीवन-पर्यन्त विवाह नही करूगा। मैं जीवन भर ब्रह्मचारी रहूगा।

गंगकुमार ने विवाह करने का भी त्याग किया था, पर आज इससे ठीक विपरीत अवस्था दिखाई देती है। आज अनेक लोलुप विवाह करके भी अनैतिक सम्बन्ध जोडने से नही हिचकते ! और यूरोप की तो लीला ही निराली है। वहां विवाह के बंधन को ही बुरा समझा जाता है और कहा जाता है—स्वेच्छा से बधन मे पड़ना भला कौनसी बुद्धिमत्ता है ! इस धारणा के कारण वहा स्वैर विहार का

मिलता था कि हम धर्म के गुलाम नही है—शास्त्र के दास नही हैं। हमे जो रुचिकर है, वही शास्त्र है। हमें केवल अर्थशास्त्र की जानकारी है और वह भी इस रूप मे कि किस प्रकार पराया धन अपना बना लिया जाय। हम धनोपार्जन के लिए कहां जाए ? दुनिया कमावे और हम उसका उपभोग करें बस यही अर्थशास्त्र का मर्म है।

श्री कृष्ण के जन्मकाल की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराने के लिए सबके अत्याचारो का वर्णन न करके केवल कंस के अत्याचारो का ही उल्लेख करूगा। कंस एक प्रबल अत्याचारी था। उसके अत्याचारो का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह अपने पिता को कारागार के सीखचों मे बंद करके स्वय राजा बन बैठा था। कस के इस कार्य से प्रसन्न होकर और उसे वीर समझ कर जरासघ ने अपनी कन्या उसे व्याह दी। जरासघ का दामाद बन जाने के कारण उसका साहस और अधिक बढ गया। अब वह समझने लगा कि जगत् मे मैं ही हू—मेरा मुकाबिला करने वाला ससार मे और कोई नही है।

जैन शास्त्र कहता है—कस का अन्याय देखकर उसके भाई अतिमुक्त ने यह निश्चय किया—'जो अपने पूजनीय पिता को कैद करके आप राजा बना है और प्रजा पर घोर से घोर अत्याचार कर रहा है, उसके आश्रय मे रहना और उसके अन्याय के विष से विषैले टुकडे खाना आत्मा का हनन करना है। जगल में रहना और निरवद्य एवं नीरस आहार पर निर्वाह करना बेहतर और श्रेयस्कर है। कस के

पास रहकर अन्याय का प्रसाद लेना मेरे लिए उचित नही है।' ऐसा विचार कर अतिमुक्त ने दीक्षा ग्रहण की और वे मुनि बन गये। एक बार अतिमुक्त मुनि भिक्षा के लिए या कस की राजचर्या जानने के लिए कस के महल मे गये। वहां कस की रानी जीवयशा मदान्ध होकर मुनि का उपहास करने लगी। उपहास के साथ वह मुनि के प्रति कटुक शब्दों का भी प्रयोग करने लगी। वह बोली—'वाह-वाह!' यह देखो राजघराने मे पैदा हुए हैं! कुल को कलक लगाते हुए इन्हे लाज नही आती! हाथ से कमाकर नही खाया जाता, इसलिए भीख मागने के लिए दर-दर भटकते फिरते हैं। इन्हे लज्जित होना चाहिए सो तो होते नही, उल्टा हमें लाज मरना पडता है।'

जीवयशा की कठोर वाणी सुनकर मुनि ने उत्तर दिया—'मेरी भर्त्सना करने के बदले अगर तुमने अपने पापों को देखा होता तो तुम्हारा कल्याण होता। जीवयशा! अपने दोष देखने की निर्मल दृष्टि विरले ही पाते हैं और जिन्हे यह दृष्टि प्राप्त है, वे निस्सदेह भाग्यशाली हैं। दूसरों के दोषो को देखने और गुणो को दोष समझ लेने से अन्तःकरण मलिन बनता है, पर स्वदोष दर्शन से निर्मलता आती है। फिर भी अगर तुम्हे दूसरे के दोष ही देखने हैं, तो पति को क्यो नही देखती, जो पिता को कारागार मे बद करके राजा बन बैठा है और जिसने अपनी संतान के सामने एक सुन्दर आदर्श उपस्थित कर दिया है! इस दुराचार का विचार आते ही लज्जा से मस्तक झुक जाना चाहिए।

तुम अपनी जिस देवकी का सिर गूंथ रही हो उसके

प्रचार हो रहा है। अनेक पुरुष और युवतियां वहां न विवाह करते हैं, न ब्रह्मचर्य ही पालते है ! इससे दुराचार और तज्जन्य अनर्थ फैल रहे है। यह पतन का पंथ है। पर तुम्हारे सामने तो भीष्म का भव्य आदर्श विद्यमान है। अतएव ब्रह्मचर्य की आराधना और साधना में ही अनेक महान् मगल निहित है।

गंगकुमार की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुना तो सुदास और सत्यवती स्तब्ध रह गये। गगकुमार ने ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा की थी, इस कारण उनका नाम ही 'भीष्म' पड़ गया। अन्त मे भीष्म सत्यवती को अपने पिता के पास ले गये। सत्यवती का राजा शान्तनु ने यथाविधि पाणिग्रहण किया। भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया। उन्होने विवाह नही किया था, फिर भी ब्रह्मचर्य के कारण वे जगत् मे 'पितामह' के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हुए।

४० : श्रीकृष्ण

जब कृष्ण का जन्म हुआ था, तब भारत धर्म से शून्य-सा हो रहा था। चारो ओर अधर्म का प्रचंड प्रताप फैला हुआ था। उस समय राजा पापी थे, यह कहना

पर्याप्त नही है, क्योकि पाप कोई स्थूल वस्तु नही है । वह किसी के हृदय मे ही जन्मता है और जिसके हृदय मे जन्मता है, उसके द्वारा जगत् में त्राहि-त्राहि मच जाती है । जब कृष्ण जन्मे थे, तब भी ऐसा ही हो रहा था । अधर्म और अत्याचार के कारण सर्वत्र हाहाकार मच रहा था । एक ओर कस कहता था—मैं राजा हू, राजा-परमात्मा का प्रतिनिधि ! मेरा वाक्य परमात्मा का अमिट आदेश है । मेरी कृति परमात्मा की कृति है । दूसरी ओर मदांध जरासध हुकारता था, और तीसरी ओर दिल्लीपति दुर्योधन गरजता था । वह कहता था—मैं ईश्वर का अंश हू, विश्व के ऐश्वर्य पर मेरा एकाधिपत्य है । ऐश्वर्य मेरे लिए है । जगत् की मूल्यवान् वस्तुए मेरे लिए हैं । ससार की समस्त सम्पत्ति मेरे उपयोग के लिए है ! इसी प्रकार शिशुपाल रुक्मकुमार, कालीकुमार और कालीनाग भी अहकार के पुतले बने बैठे थे । उनके उच्छृखल अत्याचारो का पृथ्वी पर नगा नाच हो रहा था । ससार मे धर्म भी कोई चीज है, न्याय की भी यहा सत्ता है, यह बात उन्हे समझ ही नही पड़ती थी। अगर कोई धर्म का नाम उनके सामने लेता था तो कहते थे—"धर्म क्या है ? हम जो कहते हैं, जो करते हैं, वही धर्म है, क्योकि हम ईश्वर के अश है ! धर्म निर्बलो का सहारा है, अनाथो का नाथ है । हम न निर्बल हैं, न अनाथ हैं । हम से और धर्म से क्या वास्ता ? हमारे राजदड को देखते ही धर्म और न्याय नौ-दो-ग्यारह हो जाते हैं । अतएव यहा न धर्म की दुहाई कारगर हो सकती है और न नीति की ।' उस समय के नीतिज्ञ विद्वानो ने इन अभिमानी राजाओं को समझाने का प्रयत्न किया था, परन्तु सबको यही उत्तर

मिलता था कि हम धर्म के गुलाम नही है—शास्त्र के दास नही हैं। हमे जो रुचिकर है, वही शास्त्र है। हमें केवल अर्थशास्त्र की जानकारी है और वह भी इस रूप मे कि किस प्रकार पराया धन अपना बना लिया जाय। हम धनोपार्जन के लिए कहा जाए ? दुनिया कमावे और हम उसका उपभोग करें बस यही अर्थशास्त्र का मर्म है।

श्री कृष्ण के जन्मकाल की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराने के लिए सबके अत्याचारों का वर्णन न करके केवल कंस के अत्याचारो का ही उल्लेख करूंगा। कंस एक प्रबल अत्याचारी था। उसके अत्याचारों का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह अपने पिता को कारागार के सीखचो मे बद करके स्वय राजा बन बैठा था। कस के इस कार्य से प्रसन्न होकर और उसे वीर समझ कर जरासघ ने अपनी कन्या उसे व्याह दी। जरासघ का दामाद बन जाने के कारण उसका साहस और अधिक बढ गया। अब वह समझने लगा कि जगत् में मैं ही हू—मेरा मुकाबिला करने वाला ससार मे और कोई नही है।

जैन शास्त्र कहता है—कस का अन्याय देखकर उसके भाई अतिमुक्त ने यह निश्चय किया—'जो अपने पूजनीय पिता को कैद करके आप राजा बना है और प्रजा पर घोर से घोर अत्याचार कर रहा है, उसके आश्रय मे रहना और उसके अन्याय के विष से विषैले टुकडे खाना आत्मा का हनन करना है। जगल में रहना और निरवद्य एव नीरस आहार पर निर्वाह करना बेहतर और श्रेयस्कर है। कंस के

पास रहकर अन्याय का प्रसाद लेना मेरे लिए उचित नही है।' ऐसा विचार कर अतिमुक्त ने दीक्षा ग्रहण की और वे मुनि बन गये। एक बार अतिमुक्त मुनि भिक्षा के लिए या कस की राजचर्या जानने के लिए कस के महल मे गये। वहां कस की रानी जीवयशा मदान्ध होकर मुनि का उपहास करने लगी। उपहास के साथ वह मुनि के प्रति कटुक शब्दों का भी प्रयोग करने लगी। वह बोली—'वाह-वाह !' यह देखो राजघराने में पैदा हुए हैं ! कुल को कलक लगाते हुए इन्हे लाज नही आती ! हाथ से कमाकर नही खाया जाता, इसलिए भीख मागने के लिए दर-दर भटकते फिरते हैं। इन्हे लज्जित होना चाहिए सो तो होते नही, उल्टा 'हमे लाज मरना पड़ता है।'

जीवयशा की कठोर वाणी सुनकर मुनि ने उत्तर दिया—'मेरी भर्त्सना करने के बदले अगर तुमने अपने पापों को देखा होता तो तुम्हारा कल्याण होता। जीवयशा ! अपने दोष देखने की निर्मल दृष्टि विरले ही पाते हैं और जिन्हे यह दृष्टि प्राप्त है, वे निस्सदेह भाग्यशाली है। दूसरों के दोषो को देखने और गुणो को दोष समझ लेने से अन्तःकरण मलिन बनता है, पर स्वदोष दर्शन से निर्मलता आती है। फिर भी अगर तुम्हे दूसरे के दोष ही देखने हैं, तो पति को क्यो नही देखती, जो पिता को कारागार में बद करके राजा बन बैठा है और जिसने अपनी संतान के सामने एक सुन्दर आदर्श उपस्थित कर दिया है। इस दुराचार का विचार आते ही लज्जा से मस्तक झुक जाना चाहिए।

तुम अपनी जिस देवकी का सिर गूंथ रही हो उसके

पुत्र द्वारा ही तुम्हारा पति मारा जायेगा और तुम्हे वैधव्य की व्यथा भोगनी पडेगी । अन्याय का फल उसी समय तुम्हारी समझ मे आएगा ।

अतिमुक्त मुनि की खरी बात सुनकर जीवयशा घबराई और सोचने लगी—'मैंने वृथा ही इन मुनि को छोड़ा ।' देवकी के पुत्र द्वारा उसके पति का हनन होगा, यह सुनकर उसके रौंगटे खडे हो गए । चेहरे पर उदासी छा गई । जीवयशा अपना मुंह लटकाए उदास बैठी थी कि उसी समय अहकार मे चूर कंस भी उसके समीप उसी महल में आ पहुचा । रानी को उदास देखकर कंस ने कहा—'प्रिये! इस असामयिक उदासी का कारण क्या है? सदा प्रफुल्लित रहने वाले तुम्हारे चेहरे पर उदासीनता क्यो झलक रही है ? जब तुम उदासीन रहोगी तो संसार मे प्रसन्नता किसके हिस्से आएगी ? बताओ, उदासी का क्या कारण है ?'

जीवयशा ने कहा—नाथ ! मेरी उदासीनता का गहरा कारण है । यह कारण इतना भयकर है कि मुंह से कहते भी नही बनता ।

कस—आखिर कहे बिना कैसा चलेगा ? उसका प्रतिकार करना होगा । बिना कहे प्रतिकार कैसे होगा ?

जीवयशा—आज आपके भाई अतिमुक्त अनगार यहाँ आये थे । मैंने उनका उपहास किया और कुछ कठोर वचन भी मुंह से निकल गये । उन मुनि ने मुझे कुछ शिक्षा देने के साथ अत्यन्त अनिष्टसूचक भविष्यवाणी की है । उसका

स्मरण आते ही कलेजा मुंह को आता है। उन्होने कहा है—'देवकी का पुत्र तेरे पति का नाश करेगा।' यह सुनकर मेरी चिन्ता का पार नही है।

जीवयशा का कथन सुनकर कस ने अट्टहास किया, मानो होनहार को वह अपने अट्टहास से उडा देना चाहता हो। उसने जीवयशा से कहा—'बस इसी बात से इतनी चिन्ता हो गई! भला, इन बाबा जोगियों की बात का क्या ठिकाना? वे तो इसी तरह की ऊल जलूल बातें गढ़ कर दूसरो के मन मे भ्रम घुसेड़ देते हैं। बेचारे देवकी के लड़के की क्या मजाल कि वह मुझे मार सके। कदाचित् मारने का प्रयत्न भी करता, तो यह और भी अच्छा हुआ कि हमे पहिले से मालूम हो गया। यह तो उदासी के बदले प्रसन्नता की बात है। देवकी का पुत्र मुझे नष्ट करे, उससे पहले मैं देवकी का ही काम तमाम कर देता हूं। न रहेगा बास, न बजेगी बासुरी। इसमे चिन्ता की बात ही क्या है?'

जीवयशा को सान्त्वना देकर कंस राजसभा मे आया। उस समय राजसभा मे एक विद्वान् आया। कंस के पूछने पर उसने बताया—मैं ज्योतिष-शास्त्र मे पारगत हूं। कस ने कहा—मुझे ज्योतिष-शास्त्र पर विश्वास नही है। पर ज्योतिषी ने कहा—'किसी शास्त्र की प्रामाणिकता, किसी के विश्वास पर अवलम्बित नही है। ज्योतिष-शास्त्र अगर प्रमाण है, तो आपके अविश्वास के कारण उसकी प्रामाणिकता नष्ट नही हो सकती। कस ज्योतिर्विद की स्पष्टवादिता

से कुछ आकृष्ट-सा हुआ। उसने कहा—'अगर आप ज्योतिष-शास्त्र को प्रमाण मानते हैं तो यह बताइये कि मेरी मृत्यु किसके हाथ से होगी ?'

आज ज्योतिप-शास्त्र के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की भ्रातिया फैली है। मेरे खयाल से इनके दो कारण हैं—प्रथम तो ज्योतिष का अविकल ज्ञान नहीं रहा है और दूसरे ज्योतिष लोग लोभ के चगुल मे पड़े हुए हैं। साठ वर्ष के बूढे के साथ बारह वर्ष की लड़की का लग्न जोड़ने वाला कोई ज्योतिषी ही तो होगा ! इस प्रकार लोभ ने इस विद्या को नष्ट-भ्रष्ट सा कर डाला है। आर्थिक लोभ से प्रेरित होकर किसी भी शास्त्र का दुरुपयोग करना उसका अपमान करने के समान है। गणित विद्या सच्ची है, यह शास्त्र भी मानता है, और जो लोग निस्पृह हैं, उसका गणित आज भी सही उतरता है। लेकिन लोभी लोगो ने गणित को बदनाम कर दिया है।

कंस की सभा मे आया हुआ ज्योतिपी लोभी नहीं था। लोभी मे निर्भयता नही होती। अतएव ज्योतिषी ने कस को साफ-साफ कह दिया—'आपके घर में एक ऐसा महापुरुष जन्मेगा, जो आपको नष्ट करेगा।'

कस—'उसका लक्षण क्या होगा ?'

ज्योतिपी—'वह गोकुल मे रह कर बड़ा होगा। गायों से प्रेम करेगा और जगल मे जाकर गाये चराएगा। वह

अपने हाथ मे बांसूरी रखकर जनता को उसकी मधुर ध्वनि से मोहित कर लेगा । तुम उसे मार डालने का प्रयत्न भी करोगे, पर ज्यो-ज्यो तुम प्रयत्न करोगे, त्यो-त्यो उसका बल बढता जाएगा । उसे नष्ट करने मे कोई समर्थ न हो सकेगा और वह तुम्हारा नाश करने मे समर्थ होगा ।'

ज्योतिषी और मुनि की मिलती हुई भविष्य-वाणी सुनकर कस का कलेजा एक बार काप उठा । उसके सामने मृत्यु नाचने सी लगी । पर दूसरे ही क्षण उसकी नास्तिकता ने उसके विचारो को ढक लिया । अविश्वास का त्राण उसे प्राप्त हो गया । वह सोचने लगा—'ये लोग बडे ठग और धूर्त हैं । मेरा लडका ही क्या मुझे मार सकता है ?'

भविष्यवाणी सुनकर कस को सावधान हो जाना चाहिए था । उसे अन्याय और अधर्म के मार्ग से विमुख होकर न्याय और धर्म के प्रशस्त पथ की ओर उन्मुख होना चाहिए था । पर कहा है—'विनाशकाले विपरीत बुद्धि ।' कस के सम्बन्ध मे यह उक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है । अन्त मे कस ने ज्योतिषी से कहा—तुम्हारी धूर्तता की यहा दाल नही गलेगी । मैं तुम्हे कैद करता हू । मेरा काल जन्मेगा और मुझे मार डालेगा, तब वही तुम्हे कारागार से मुक्त भी कर देगा, अन्यथा मैं तो तुम्हारा काल होता ही हू ।

राजा लोग कारागार को अपनी रक्षा का सफल साधन समझते हैं । उन्हे न्याय-अन्याय की परवाह नही होती । जिस पर उनका कोप हुआ, उसी को जेल के सींखचों में

कन्या को मार डालना अत्यन्त भीषण कृत्य है । ऐसा करने से घोर पाप लगता है, पुण्य क्षीण होता है और जगत् मे अपकीर्ति होती है । यद्यपि कस पाप-पुण्य को नहीं मानता था पर जगत् मे अपकीर्ति फैल जाने का उसे भय था । इसके अतिरिक्त उसने यह भी सोचा कि ऐसा करने से लोग मुझे डरपोक समझेगे । अतएव उसने देवकी को मार डालने का विचार त्याग दिया । इसके बदले उसने दूसरा उपाय सोचा—देवकी का विवाह कर दिया और उसके गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न हो, उसे उसी समय तलवार से मौत के घाट उतार दिया जाय । ऐसा करने से मैं अपने काल का भी नाश कर सकूगा मेरा अपयश भी न होगा और डरपोक भी नही कहलाऊगा ।

ऐसा निश्चय करके उसने वसुदेव के साथ देवकी का विवाह कर दिया । यद्यपि कस के हृदय मे दूसरी बात थी, उसका हृदय कुटिलता से भरा हुआ था, लेकिन ऊपर से उसने वसुदेव के साथ खूब कपट स्नेह प्रकट किया और वसुदेव की खूब सेवा की । वसुदेव ने इससे प्रसन्न होकर कह दिया—आप जो चाहे, वही मैं आपको दूंगा ! कंस जानता था—वसुदेव क्षत्रिय हैं और जो बात मुह से निकालेंगे उसका अवश्य पालन करेंगे । अतएव कस ने कहा—'यदि आप मुझ पर कृपा रखते है तो मैं आपसे यह चाहता हू कि मेरी बहन देवकी के गर्भ से जो बालक उत्पन्न हो वे सब मुझे सौप दिये जाय और मैं अपनी इच्छा के अनुसार उनका उपयोग कर सकू ।' वसुदेव के हृदय में लेशमात्र भी यह आशका नही थी कि कंस अपनी बहन के बालको को

मार डालेगा। अतएव उन्होने सहज भाव से स्वीकृति दे दी। कंस यह स्वीकृति पा कर मानो निहाल हो गया। उसमे जान-सी आ गई।

वसुदेव जैसे सत्यवादी के छ बालक मारे जावे, यह नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध मे शास्त्र मे कहा है—सुलसा के मृत-पुत्र होते थे। उसने देव की उपासना की। देव ने कहा—'मृत बालक को जीवित कर देना मेरे सामर्थ्य से बाहर है। मगर तुम्हारे मरे हुए बालको के बदले मैं ऐसे बालक ला दूंगा, जिनकी समानता कोई बालक नही कर सकेगा। इस प्रकार जब देवकी के बालक होता, तभी सुलसा के भी होता और देव सुलसा का मरा हुआ बालक देवकी के यहां रख कर देवकी का जीवित बालक सुलसा के पास पहुचा देता था। इस तरह देवकी के छ. बालक सुलसा के यहा पहुच गये। सुलसा के जो मरे हुए बालक आते थे, वे कस के सामने ले जाये जाते थे। कस उन्हे मरा हुआ देख कर और यह सोचकर कि यह मेरे डर के मारे मर गये है, अभिमान से फूल उठता था। फिर भी उसे सतोष न होता और वह उन मरे हुए बालको को ही पछाड डालता।

सातवी बार वह महापुरुष आया, जिसका आज जन्म-दिन है। ऐसा बालक देवकी के गर्भ मे आने के कारण उसे शुभ सूचक स्वप्न आये। देवकी का शरीर इस प्रकार चमकने लगा जैसे काच की हंडी मैं दीपक रखने से वह चमकने लगती है। देवकी और वसुदेव चकित थे। उन्हे लक्षणो से यह मालूम हो गया था कि कोई महापुरुष गर्भ में आया

वंद कर देते है और अपने आपको सुरक्षित मान बैठते हैं। मगर सत्ता का यह दुरुपयोग कब तक उनकी रक्षा कर सकता है ?

कस का कथन सुनकर ज्योतिपी ने कहा—'आपके निर्णय मे मीन-मेख हो ही कैसे सकती है ? मुझे अपनी विद्या पर पूर्ण श्रद्धा है। अगर मेरी विद्या सच्ची ठहरे तो ही मुझे जीवित रहना चाहिए, नही तो जेल मे सडकर मर जाना ही अच्छा है।'

कंस ने उस ज्योतिषी को जेल के हवाले कर दिया।

भागवत के अनुसार नारद ने कस को समझाया था और देवकी के पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु वतलाई थी। नारद ने कहा था—तुम जल्दी सभल जाओ, अन्याय को त्यागो और नीति तथा धर्म के अनुसार अपने कर्त्तव्य का पालन करो। ऐसा करते हुए अगर मृत्यु भी आ जाएगी, तो शान्ति से मर सकोगे।'

कस ने नारद से कहा—'महाराज, यह मेरा सद्भाग्य है कि मेरी मृत्यु की सूचना मुझे अभी से मिल गई है। भावी अनिष्ट की सूचना पहले ही मिल जाना निस्सदेह सौभाग्य ही समझना चाहिए। ऐसा होने से पहले ही उसके निवारण की व्यवस्था की जा सकती है। मैं इस वात से जरा भी भयभीत नही हू कि देवकी का पुत्र मुझे मारेगा। मैं शूरवीर क्षत्रिय हू। मौत मेरे लिए खेल है। दूसरे का प्राण ले लेना मेरे वांए हाथ का काम है। आपने मुझे

मार डालेगा । अतएव उन्होने सहज भाव से स्वीकृति दे दी । कंस यह स्वीकृति पा कर मानो निहाल हो गया । उसमे जान-सी आ गई ।

वसुदेव जैसे सत्यवादी के छ बालक मारे जावे, यह नही हो सकता । इस सम्बन्ध मे शास्त्र मे कहा है—सुलसा के मृत-पुत्र होते थे । उसने देव की उपासना की । देव ने कहा—'मृत बालक को जीवित कर देना मेरे सामर्थ्य से बाहर है । मगर तुम्हारे मरे हुए बालको के बदले मैं ऐसे बालक ला दूगा, जिनकी समानता कोई बालक नही कर सकेगा । इस प्रकार जब देवकी के बालक होता, तभी सुलसा के भी होता और देव सुलसा का मरा हुआ बालक देवकी के यहा रख कर देवकी का जीवित बालक सुलसा के पास पहुंचा देता था । इस तरह देवकी के छः बालक सुलसा के यहा पहुच गये । सुलसा के जो मरे हुए बालक आते थे, वे कस के सामने ले जाये जाते थे । कस उन्हे मरा हुआ देख कर और यह सोचकर कि यह मेरे डर के मारे मर गये हैं, अभिमान से फूल उठता था । फिर भी उसे सतोष न होता और वह उन मरे हुए बालको को ही पछाड डालता ।

सातवी बार वह महापुरुष आया, जिसका आज जन्म-दिन है । ऐसा बालक देवकी के गर्भ मे आने के कारण उसे शुभ सूचक स्वप्न आये । देवकी का शरीर इस प्रकार चमकने लगा जैसे कांच की हंडी मैं दीपक रखने से वह चमकने लगती है । देवकी और वसुदेव चकित थे । उन्हे लक्षणो से यह मालूम हो गया था कि कोई महापुरुष गर्भ में आया

कन्या को मार डालना अत्यन्त भीषण कृत्य है। ऐसा करने से घोर पाप लगता है, पुण्य क्षीण होता है और जगत् में अपकीर्ति होती है। यद्यपि कस पाप-पुण्य को नही मानता था पर जगत् मे अपकीर्ति फैल जाने का उसे भय था। इसके अतिरिक्त उसने यह भी सोचा कि ऐसा करने से लोग मुझे डरपोक समझेगे। अतएव उसने देवकी को मार डालने का विचार त्याग दिया। इसके वदले उसने दूसरा उपाय सोचा—देवकी का विवाह कर दिया और उसके गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न हो, उसे उसी समय तलवार से मौत के घाट उतार दिया जाय। ऐसा करने से मैं अपने काल का भी नाश कर सकूगा मेरा अपयश भी न होगा और डरपोक भी नही कहलाऊगा।

ऐसा निश्चय करके उसने वसुदेव के साथ देवकी का विवाह कर दिया। यद्यपि कस के हृदय में दूसरी बात थी, उसका हृदय कुटिलता से भरा हुआ था, लेकिन ऊपर से उसने वसुदेव के साथ खूव कपट स्नेह प्रकट किया और वसुदेव की खूब सेवा की। वसुदेव ने इससे प्रसन्न होकर कह दिया—आप जो चाहे, वही मैं आपको दूगा! कंस जानता था—वसुदेव क्षत्रिय हैं और जो वात मुह से निकालेंगे उसका अवश्य पालन करेगे। अतएव कस ने कहा—'यदि आप मुझ पर कृपा रखते है तो मैं आपसे यह चाहता हू कि मेरी वहन देवकी के गर्भ से जो वालक उत्पन्न हो वे सव मुझे सौंप दिये जाय और मैं अपनी इच्छा के अनुसार उनका उपयोग कर सकू।' वसुदेव के हृदय में लेशमात्र भी यह आशका नही थी कि कंस अपनी वहन के वालको को

मार डालेगा । अतएव उन्होने सहज भाव से स्वीकृति दे दी। कंस यह स्वीकृति पा कर मानो निहाल हो गया । उसमे जान-सी आ गई ।

वसुदेव जैसे सत्यवादी के छ बालक मारे जावें, यह नही हो सकता । इस सम्बन्ध मे शास्त्र में कहा है—सुलसा के मृत-पुत्र होते थे । उसने देव की उपासना की । देव ने कहा—'मृत बालक को जीवित कर देना मेरे सामर्थ्य से बाहर है । मगर तुम्हारे मरे हुए बालको के बदले मैं ऐसे बालक ला दूंगा, जिनकी समानता कोई बालक नही कर सकेगा । इस प्रकार जब देवकी के बालक होता, तभी सुलसा के भी होता और देव सुलसा का मरा हुआ बालक देवकी के यहा रख कर देवकी का जीवित बालक सुलसा के पास पहुंचा देता था । इस तरह देवकी के छ. बालक सुलसा के यहा पहुच गये । सुलसा के जो मरे हुए बालक आते थे, वे कस के सामने ले जाये जाते थे । कस उन्हे मरा हुआ देख कर और यह सोचकर कि यह मेरे डर के मारे मर गये हैं, अभिमान से फूल उठता था । फिर भी उसे सतोष न होता और वह उन मरे हुए बालको को ही पछाड़ डालता ।

सातवी बार वह महापुरुष आया, जिसका आज जन्म-दिन है । ऐसा बालक देवकी के गर्भ में आने के कारण उसे शुभ सूचक स्वप्न आये । देवकी का शरीर इस प्रकार चम-कने लगा जैसे क [illegible] हंडी में दीपक रखने से वह चमकने लगती है । देवव [illegible] वसुदेव चकित थे । उन्हे लक्षणो से यह मालूम हो गया था कि कोई महापुरुष गर्भ में आया

है । देवकी को इस प्रकार तेजपूर्ण देखकर कस भी समझ गया कि अव मेरा काल वताया जाने वाला वालक गर्भ में आया है । कई ग्रंथकारो ने लिखा है कि कंस ने देवकी और वसुदेव को वेडी और हथकडी से जकड़ दिया था और कारागृह मे डाल दिया था । दोनो पर सख्त पहरे का प्रवंध किया था । उस मुसीवत मे पडे हुए वसुदेव, देवकी से कहने लगे—यह सव मेरे वचनवद्ध होने का परिणाम है । संसार मे पतिव्रता महिलाएं तो और भी होगी, लेकिन देवकी तुम जैसी पतिव्रता का होना दुर्लभ है । तुमने अपने पति के वचन की रक्षा के लिए अपने लाडले लाल भी मरने के लिए कस के हाथ मे सौंप दिये । तुमने अपना सर्वस्व निछावर कर मेरे धर्म की रक्षा की है । सचमुच तुम इस ससार की सारभूत विभूति हो । आर्य-ललनाएं तुम्हारा अनुकरण कर संसार मे पतिव्रता-धर्म की रक्षा करेंगी ।

देवकी ने नम्रता पूर्वक मधुर स्वर मे कहा—नाथ, इसमे मेरा क्या है ? यह शरीर भी आपका है । वालक तो जैसे आपके, वैसे ही मेरे हैं । मैं वालको को जितना प्यार करती हू, उतने ही आपको भी वे प्यारे है । वल्कि माता की अपेक्षा पिता को पुत्र से अधिक स्नेह होता है । दुर्योधन की माता गांधारी ने दुर्योधन का मोह त्याग दिया था, लेकिन धृतराष्ट्र पुत्र-मोह न छोड सके थे । इस प्रकार पिता को पुत्र से अधिक प्रेम होता है । जव अधिक प्रेम-परायण आपने ही उन वालकों को दे दिया, तव मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? इसके अतिरिक्त आपके कार्य मे किसी प्रकार का विसवाद खड़ा करना मेरे लिए उचित भी नही है ।

जिस सत्य की रक्षा के लिए वसुदेव ने अपने सुकुमार और प्यारे बच्चे काल के हाथ मे सौप दिये, उस महान् सत्य को आप भी अपनायें और 'तं सच्च भगवओ' इस शास्त्र वाक्य पर पूर्ण श्रद्धा रखिये। स्मरण रखिए, बुद्धि एक प्रकार की वचना है। उसकी दौड बहुत थोड़ी है। सत्य इतना महान् और उच्च है कि वह बुद्धि की परिधि मे नही समा सकता। पत्थर तोलने की तराजू पर कदाचित् सुई तुल सकती है पर बुद्धि की तराजू पर सत्य नही तुल सकता। बुद्धि से तर्क-वितर्क उत्पन्न होता है और तर्क-वितर्क सत्य की परछाई भी नही पा सकती। प्रगाढ श्रद्धा के कंटकाकीर्ण पथ पर चलते रहने से सत्य के सन्निकट पहुंचना पडता है। अतएव श्रद्धा को बुद्धि के वस्त्र पहनाओ। विचार करो—सत्य की आराधना के लिए वसुदेव और देवकी ने अपने प्यारे पुत्र भी अर्पण कर दिये, तो सत्य का अनुसरण करने के लिए हम क्या नहीं त्याग सकते? अगर ससार मे सर्वत्र सत्य की प्रतिष्ठा हो जाय और प्रत्येक व्यवहार मे सत्य भगवान् के दर्शन होने लगें तो ससार का यह नारकीय रूप नष्ट हो सकता है। वकीलो को घर बैठ कर और कोई उच्चतर आजीविका खोजनी पडे और कचहरी, कच-हरी (सिर के बाल हरने वाली) न रह जाय। वकीलो और अदालतों के आधिपत्य से ससार में शान्ति के बदले अशान्ति का ही प्रसार हुआ है। यह सब सत्य से विमुख होने का परिणाम है। जब हृदय-रूपी कुसुम में सत्य के सौरभ का सचार होगा, तभी हृदय मे कृष्ण का जन्म हो सकेगा।

देवकी ने वसुदेव से कहा—पुत्र जैसे मेरे थे वैसे ही आपके भी थे। जैसा दु.ख मुझे हुआ है वैसा ही दु ख आपने भी अनुभव किया है। किन्तु आप पुरुष हैं आपमें सहन-शक्ति अधिक है। मैं स्त्री हू मुझमे इतनी सहन-शीलता और कष्ट-सहिष्णुता नही है। मैंने अब तक छ. बालको का मरण-दुःख झेला है, पर अब कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे इस वार का बालक जीवित बचा रहे।

पुत्र के लिए दु.ख होना स्वाभाविक है। मनुष्य की तो वात ही क्या, उन पक्षियो को भी संतान के वियोग की वेदना असह्य हो जाती है, जिनमे सतान का नाता अत्यन्त अल्पकालीन होता है। यहां एक मैना का बच्चा आया करता था। एक दिन वह उड़कर ऊपर बैठा। उसके मा-बाप भी वहा मौजूद थे। इतने मे ही एक चील ने झपट्टा मारा और वच्चे को उडा ले गई। उस समय उस बच्चे के माता-पिता को इतना दु.ख हुआ और वे ऐसे चिल्लाये कि कुछ कहा नही जा सकता।

देवकी के कथन के उत्तर मे वसुदेव ने कहा—तुम्हारी वात है तो ठीक, पर अब क्या सत्य का परित्याग करना पडेगा ? जिस सत्य धर्म का पालन करने के लिए छह बालक त्याग दिये, अब क्या उसी को त्यागना उचित होगा?

देवकी ने कहा—छह बालक हम लोगो ने सत्य भगवान् की सेवा मे समर्पित किये हैं। तब सत्य से विमुख होने की प्रेरणा मैं नही करती। ऐसा कोई यत्न करने के लिए कह रही हू जिससे धर्म की भी रक्षा हो और पुत्र की

भी रक्षा हो। पुत्र की रक्षा की चिन्ता भी इसी कारण है कि वह महापुरुष होगा और महापुरुष की रक्षा करना ससार की रक्षा करना है। पुत्र प्रेम से प्रेरित होकर नही वरन् ससार के कल्याण की कामना से हमें इस पुत्र की रक्षा करनी चाहिए। ससार मे उत्सर्ग और अपवाद–यह दो विधियां हैं। ऐसा जान पड़ता है कि गर्भस्थ महापुरुष ससार के अपवाद सुनकर भी जगत् का कल्याण करेगा। इसलिए इसकी रक्षा करने के लिए हमे भी अपवाद मार्ग का अव–लबन करना पडे तो अनुचित नही है।

तुम्हारी बात मेरी समझ मे आ रही है। पर यह अत्यन्त कठोर साधना है। महापुरुष की रक्षा करते समय अगर हमारे हृदय मे लेशमात्र भी पुत्र मोह उत्पन्न हो गया, तो हम अपनी साधना से भ्रष्ट हो जाएगे। यह निष्काम कर्म कठिनतम व्यवहार है। बडे-बडे योगी भी इसमे अकृत-कार्य हो जाते है। हमे अपना हृदय विश्व-हित की कामना से लबालब भर लेना होगा, जिससे व्यक्तिगत हित या सुख की अभिलाषा को उसमे तिलभर भी स्थान न मिल सके। हमे आत्मोत्सर्ग की पराकाष्ठा पर पहुचना चाहिए। ऐसा किये बिना हम सत्य की सेवा से विमुख हो जाएगे। पर यह तो समझ मे नही आ रहा है कि क्या यत्न किया जाय?

देवकी ने कहा—गर्भस्थ महापुरुष का महत्त्व मैंने मुनि महापुरुष से जान लिया है। यह महापुरुष जगत् मे सुख एवं शान्ति की सृष्टि करेगा। इसकी रक्षा करने के उद्देश्य से मैंने गोकुल मे रहने वाले राजा नन्द की रानी यशोदा

को अपनी सखी बनाया है। यह मेरी ऐसी सखी है कि मेरी खातिर वह अपनी सतान का त्याग कर सकती है। वह पूर्ण विश्वासपात्र है। साथ ही मुझे यह भी विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हो गया है कि जिस दिन मेरे गर्भ से बालक का जन्म होगा उसी दिन वह भी सतान प्रसव करेगी। अतएव इस महापुरुप को यशोदा के यहा ले जाना चाहिए और यशोदा की सतान यहा ले आना चाहिए।

वसुदेव ने कहा—उपाय तो अच्छा है पर देखना तो यह है कि हम इस समय किस हालत मे है ! हथकडी-वेडी पड़ी हुई हैं। द्वार जडा है, पहरा लग रहा है। ऐसी दशा मे कैसे वाहर निकलना होगा !

देवकी—यह सब तो आखो दिखाई दे रहा है। इतना होते हुए भी अगर हमारी भावना मे सत्य है और इस महापुरुप की रक्षा होनी है, तो ये सब कठिनाइया दूर हो जाएंगी। आप वाहर निकल भी सकेगे और मार्ग भी मिल जायगा। वस, आप तो तैयार हो जाइए।

कई लोग प्रश्न करते है कि पुरुषार्थ वडा है या दैव वडा है ? इस प्रश्न का उत्तर कृष्ण के चरित्र से यह फलित होता है कि दोनो समान हैं और सिद्धि—लाभ के लिए दोनो की समान आवश्यकता है। जैसे दोनों चक्रो से रथ चलता है, उसी प्रकार दोनो के सद्भाव से कार्य सिद्ध होता है। किन्तु इन दोनो मे से उद्योग करना मनुष्य के हाथ में है। अतएव मनुष्य को सतत उद्योगशील रहना चाहिए। भाग्य अनुकूल होगा तो सफलता अवश्य मिलेगी। हा भाग्य

की अनुकूलता की प्रतीक्षा करते हुए निठल्ले बैठे रहना उचित नही है। कौन कह सकता है कि किसका भाग्य किस समय अनुकूल होगा ? आज के लोग अपने काम के लिए तो भाग्य के भरोसे नही बैठे रहते—उद्योगशील रहते हैं, लेकिन धर्म के काम मे भाग्य का भरोसा ताकने लगते है। इसी कारण हानि उठानी पडती है।

वसुदेव ने देवकी का कथन स्वीकार किया। जैसे पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है, उसी प्रकार भाद्रपद, कृष्णा अष्टमी की रात को, अर्द्ध-रात्रि के समय, देवकी ने सुन्दर स्वस्थ और सर्वांग-सम्पन्न बालक को जन्म दिया। बालक का जन्म होते ही देवकी और वसुदेव की हथकड़िया और वेडिया तडाक से टूट कर गिर पडी। देवकी ने वसुदेव से कहा—नाथ, आइए। अब यह महापुरुप आपके उद्योग की परीक्षा करता है।

वसुदेव सोचने लगे—महापुरुष के प्रताप से हथकडी-बेडी टूट गई है, मगर द्वार पर अब भी पहरा मौजूद है। पहरेदारो के सामने बाहर कैसे निकल सकेगे ?

वसुदेव सत्य के लिए इस प्रकार के कष्ट उठा रहे थे, लेकिन आज के लोगो को सत्य बोलने या सत्य पालने मे किस प्रकार की रुकावट है ? फिर क्यो नही उनके जीवन मे सत्य की आभा चमकती ? सत्य की आराधना करने के कारण अगर आपके पैरो मे वेडी भी पड जायगी तो वह उसी प्रकार टूट जायगी जैसे वसुदेव की टूट गई थी। कहावत है, मुर्दे के साथ श्मशान तक जाया जाता है, उसके

साथ जला नही जाता । इसी प्रकार हम लोग भी उपदेश दे सकत हैं इससे अधिक क्या कर सकते हैं ? आपके साथ-साथ घूमने से रहे ।

वसुदेव देवकी से कहने लगे—द्वार पर पहरा लग रहा है । निकलने का क्या उपाय है ? देवकी ने कहा—'उद्योग करना आपका काम है, फिर सफलता मिले या न मिले । प्रयत्न कर देखिए ।'

वसुदेव जाने को तैयार हुए । वे ग्रथानुसार सूप मे और जैन-कथा के अनुसार अपने हाथ मे वालक कृष्ण को लेकर रवाना हुए । द्वार पर पहुचे तो देखते क्या है कि द्वार खुला पड़ा है, और पहरेदार पड़े-पडे खर्राटे ले रहे हैं । वसुदेव ने यह भी महापुरुष का प्रताप समझा । दर-वाजे से वाहर निकल कर आगे बढे । उस समय मूसलाधार पानी वरस रहा था । वादल गड़गड़ा रहे थे, मानो कृष्ण-जन्म के उपलक्ष्य मे इन्द्र का नगाड़ा बज रहा था । बिजली चमक रही थी मानो महापुरुष का जन्मोत्सव मनाने के लिए प्रकृति चपलतापूर्वक नृत्य कर रही थी । झींगुर और मेंढक खुशी-खुशी वोल रहे थे, जैसे कृष्ण-जन्म की खुशी मे संगीत गा रहे हों । ग्रन्थो मे लिखा है—उस समय शेपनाग ने कृष्ण पर छाया की थो और एक देव, वसुदेव के आगे आगे प्रकाश करता जाता था ।

वसुदेव चलते-चलते नगर के द्वार पर आये । देवकी के पुत्र-प्रसव का समय सन्निकट आया जान कर कस ने

नगर-द्वारों पर भारी-भारी ताले डलवा दिये थे। वसुदेव ने नगर के बंद द्वार देखे, पर वे एक क्षण भर के लिये भी रुके नही। उन्होने सोचा—जहां तक जाना सम्भव है, वहां तक तो मुझे जाना ही चाहिए।

दीधा छे दरवाजा, ये आरत मोटी राजा।
हरि अगूठी अड़िया, ताला तो सब झड़िया ।।

वसुदेव जाकर नगर के द्वार से टकराये। जैसे वे द्वार से टकराये और कृष्ण का अगूठा अडा, वैसे ही ताले राख के ढेर की तरह नीचे गिर पड़े। फाटक खुल गये। उस समय और तो सब लोग सो रहे थे, द्वार के ऊपर बने हुए पीजरे मे केवल उग्रसेन जाग रहे थे। ऐसे समय पर शत्रु को नीद आना और मित्रो का जागना स्वाभाविक है। उग्रसेन ने फाटक खुलने की आवाज सुनी।

उग्रसेन कहे कोई, तुम बंधन काटे सोई।
ये वचन सुने सुखदायी, कहे वेग सिधावो भाई ।।

उस समय उग्रसेन ने पूछा—कौन? वसुदेव ने कहा—वही जो तुम्हें बधन से छुड़ावेगा। यह उत्तर सुनकर उग्रसेन अति प्रसन्न हुए और कहा—अच्छा भाई, जल्दी पधारो।

वसुदेव आगे चले। उस घोर अधकारमयी काली निशा मे आधी रात्रि के समय, वर्षा और बिजली की विपदा के होते हुए, कौन घर से निकल सकता था? लेकिन वसु-

एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी थी कि कुछ बड़े होते ही वे कम्बल और लकड़ी लेकर गायें चराने के लिये जाया करते थे। जन्माष्टमी मनाने के लिए आज आप बढ़िया-बढ़िया वस्त्र पहनते है पर जिसकी जन्माष्टमी मनाते हैं, वह कैसा सादा था, यह भूल कर भी नही सोचते। भक्त उसके उसी रूप पर मुग्ध है और कहते हैं—

मोर मुकुट कटि काछनी, उरगु जन की माल।
सो बालक मम उर बसो, सदा बिहारीलाल॥

इससे स्पष्ट है कि कृष्ण ने मोर पखों का मुकुट पहना था, चिरमी (घुगची) की माला पहनी थी और कमर मे लगोटी लगा रखी थी। कृष्ण इस सीधे-सादे भेष में रहते थे। कवि कृष्ण के इसी भेष को अपने हृदय मे बसने की भावना व्यक्त करता है।

कृष्ण मे इस तरह की सादगी थी, परन्तु आजकल तो सादगी घृणा की वस्तु बन गई है। जिनका उत्पन्न किया हुआ अन्न खाकर लोग जीवन-निर्वाह करते हैं, उन किसानों को इस सादगी के कारण भोजन मे पास तक नही बैठने दिया जाता। गाय को मुसीबत माना जा रहा है। मोटरें रखने का स्थान है, पर गाय बाधने को स्थान नही मिलता! तब पीने के समय क्या पीते हो ? गाय का दूध या मोटर का धुंआ ? प्राचीन ग्रन्थो में गाय की महत्ता का खूब बखान किया गया है। गाय "गो" कहलाती है। "गो" पृथ्वी का भी नाम है और गाय का भी नाम है। इसका

तात्पर्य यह है कि जैसे पृथ्वी हमारा आधार है, उसी प्रकार गाय भी हमारे जीवन का आधार है। इसलिए कृष्ण ने गो-रक्षा की थी। कृष्ण ने अपने व्यवहार के द्वारा गाय का जैसा महत्व प्रदर्शित किया है, वैसा विश्व के इतिहास मे किसी ने प्रदर्शित नही किया। आज गाय का आदर नहीं हो रहा है पर प्राचीनकाल के राजा और सेठ अपने-अपने घर मे गायो के झुड रखते थे। उस समय शायद ही कोई ऐसा घर रहा होगा, जहा गाय न पाली जाती हो। उसी युग मे गाय 'गौमाता' कहलाती थी और 'जय गोपाल' की ध्वनि सर्वत्र सुनाई देती थी—अर्थात् गाय पालने वाले की जय बोली जाती थी। मगर आज परम्परा का पालन करने के लिए गाय को कोई माता भले ही कह दे, पर उसका पालना विपत्ति से कम नही समझा जाता। लोग गोवश के ह्रास का कलक मुसलमानो के मत्थे मढते हैं पर मेरी समझ मे हिन्दू लोग अगर गाय को मा समझ कर घर मे आदर के साथ स्थान देते तो गोवश का ह्रास न होता और न कोई उसे मार ही सकता। हिन्दुओ ने गाय की रक्षा नही की, इसीसे गोवश नष्ट होता जाता है। यही नही, मैं तो यहा तक कहूगा कि हिन्दू लोग भी किसी न किसी रूप मे गोवंश के विनाश मे सहायक हो रहे है। उदाहरण के लिए वस्त्र को लीजिए। गाय की चर्बी वाले वस्त्र बडे शौक से पहने जाते हैं। क्या गायो की हत्या किये विना चर्बी निकाली जाती है? चर्बी के लिए वडी क्रूरता से गायो को कत्ल किया जाता है और उन चर्बी वाले वस्त्रो को पहन कर लोग कहते हैं—गोभक्त हैं—गाय हमारी माता है! धन्य है, ऐसे मातृ-भक्त सपूतो को!

देव कृष्ण को लिए हुए जा रहे थे। जब और आगे बढे, तो यमुना सामने आई। वर्षा के कारण उसमे पूर आ रहा था। वसुदेव ने निश्चय किया—भले ही आज मुझे यमुना मे बह जाना पडे, परन्तु जहा तक सम्भव है मै अवश्य जाऊगा। इस प्रकार दृढ सकल्प करके वे यमुना में उतर पड़े। ग्रन्थो में लिखा है कि यमुना पहले तो पूर पर थी, पर कृष्ण के पैर का अगूठा लगते ही यमुना ने मार्ग कर दिया, अर्थात् वह छिछली हो गई।

इतनी सब विघ्न-बाधाओ को पार कर वसुदेव नन्द के घर पहुचे। उसी समय यशोदा के गर्भ से पुत्री उत्पन्न हुई थी। वसुदेव ने पुत्री की जगह कृष्ण को रख दिया और पुत्री को लेकर लौट पड़े। उनके लौट आने पर द्वार आदि फिर पहले की ही तरह बद हो गये। उनके हाथ-पैरो मे पूर्ववत् हथकड़ी-बेडी भी पड गई। यह कैसा दैविक चमत्कार था, सो कहा नही जा सकता।

उधर 'जय कन्हैयालाल की' होने लगी और इधर पहरेदार जागकर लडकी को लेकर कस के पास गये। कस लडकी जन्मी देख कर कहने लगा—'देखो, ये बाबा-जोगी और ज्योतिषी लोग कैसे झूठे होते हैं। और तो और नारद भी अब झूठ बोलने लगे हैं। लड़के के बदले यह लडकी उत्पन्न हुई है।' कस जब अभिमान-भरी ये बाते कह रहा था, तभी वह सद्य.प्रसूता बालिका बोली—'मुझे लड़की कह कर तू क्षणिक सान्त्वना भले ही प्राप्त करले

और ऋषियो-मुनियों को झूठा बता दे, पर तेरा सहार करने वाला अवतीर्ण हो ही चुका है ।'

एक ओर वसुदेव ने उद्योग किया था और दूसरी ओर कस ने । किन्तु वसुदेव का उद्योग प्रशस्त था, वह न्याय और धर्म की प्रतिष्ठा के लिए था, जबकि कस नीति-धर्म को ध्वस करने की चेष्टा कर रहा था । वसुदेव का हेतु शुभ था, अतएव उन्हे देवो की सहायता प्राप्त हो सकी । अगर आप भी इसी प्रकार शुभ हेतु से प्रशस्त प्रयास करेंगे तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि दैविक सहायता कहा से और कैसे मिलती है । कदाचित् कोई कह सकता है कि परमार्थ के लिए हमने अमुक उद्योग किया था, पर वह असफल रहा । उन्हे अपने हृदय की बारीकी से परीक्षा करनी चाहिए । उन्हे मालूम करना चाहिए कि बाह्य और आभ्यन्तर दोनो एक रूप थे, या बाहर परमार्थ था और भीतर स्वार्थ था ? स्वार्थ से मलिन हृदय लेकर दिव्य सहायता की कामना करना ऐसी ही बात है, जैसा कि कहा है—

चाहत मुनि मन अगम सुकृत फल मनसा अघ न अघाती

इसके अनुसार बुरी भावना रख कर भी अच्छे फल की आशा रखना दुराशा मात्र है ।

कृष्ण धीरे-धीरे नन्द के घर बड़े होने लगे । पालने मे पोढे हुए भी उन्होने अनेक महत्त्वपूर्ण और असाधारण काम किये । नन्द के यहां रहते हुए उन्होने जो कुछ किया, उसमें

एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी थी कि कुछ बड़े होते ही वे कम्बल और लकड़ी लेकर गायें चराने के लिये जाया करते थे। जन्माष्टमी मनाने के लिए आज आप बढिया-बढ़िया वस्त्र पहनते हैं पर जिसकी जन्माष्टमी मनाते हैं, वह कैसा सादा था, यह भूल कर भी नही सोचते। भक्त उसके उसी रूप पर मुग्ध हैं और कहते हैं—

मोर मुकुट कटि काछनी, उरगुंजन की माल।
सो बालक मम उर बसो, सदा बिहारीलाल ॥

इससे स्पष्ट है कि कृष्ण ने मोर पंखो का मुकुट पहना था, चिरमी (घुंगची) की माला पहनी थी और कमर मे लगोटी लगा रखी थी। कृष्ण इस सीधे-सादे भेष में रहते थे। कवि कृष्ण के इसी भेष को अपने हृदय मे बसने की भावना व्यक्त करता है।

कृष्ण मे इस तरह की सादगी थी, परन्तु आजकल तो सादगी घृणा की वस्तु बन गई है। जिनका उत्पन्न किया हुआ अन्न खाकर लोग जीवन-निर्वाह करते है, उन किसानो को इस सादगी के कारण भोजन मे पास तक नही बैठने दिया जाता। गाय को मुसीबत माना जा रहा है। मोटरें रखने का स्थान है, पर गाय बाधने को स्थान नही मिलता! तब पीने के समय क्या पीते हो? गाय का दूध या मोटर का धुंआ? प्राचीन ग्रन्थो मे गाय की महत्ता का खूब बखान किया गया है। गाय "गो" कहलाती है। "गो" पृथ्वी का भी नाम है और गाय का भी नाम है। इसका

तात्पर्य यह है कि जैसे पृथ्वी हमारा आधार है, उसी प्रकार गाय भी हमारे जीवन का आधार है। इसलिए कृष्ण ने गो-रक्षा की थी। कृष्ण ने अपने व्यवहार के द्वारा गाय का जैसा महत्व प्रदर्शित किया है, वैसा विश्व के इतिहास मे किसी ने प्रदर्शित नही किया। आज गाय का आदर नहीं हो रहा है पर प्राचीनकाल के राजा और सेठ अपने-अपने घर मे गायो के झुंड रखते थे। उस समय शायद ही कोई ऐसा घर रहा होगा, जहा गाय न पाली जाती हो। उसी युग मे गाय 'गौमाता' कहलाती थी और 'जय गोपाल' की ध्वनि सर्वत्र सुनाई देती थी—अर्थात् गाय पालने वाले की जय बोली जाती थी। मगर आज परम्परा का पालन करने के लिए गाय को कोई माता भले ही कह दे, पर उसका पालना विपत्ति से कम नही समझा जाता। लोग गोवश के ह्रास का कलक मुसलमानो के मत्थे मढते हैं पर मेरी समझ मे हिन्दू लोग अगर गाय को मा समझ कर घर मे आदर के साथ स्थान देते तो गोवंश का ह्रास न होता और न कोई उसे मार ही सकता। हिन्दुओ ने गाय की रक्षा नही की, इसीसे गोवश नष्ट होता जाता है। यही नही, मैं तो यहा तक कहूगा कि हिन्दू लोग भी किसी न किसी रूप मे गोवश के विनाश मे सहायक हो रहे है। उदाहरण के लिए वस्त्र को लीजिए। गाय की चर्बी वाले वस्त्र बडे शौक से पहने जाते हैं। क्या गायो की हत्या किये विना चर्बी निकाली जाती है ? चर्बी के लिए वडी क्रूरता से गायो को कत्ल किया जाता है और उन चर्बी वाले वस्त्रो को पहन कर लोग कहते है—गोभक्त हैं—गाय हमारी माता है। धन्य है, ऐसे मातृ-भक्त सपूतो को।

पर यह न समझ बैठना कि इससे गायो की ही हानि हुई है । इस पद्धति से जहां गोवंश को हानि पहुंची है, वहा मानव-वंश को भी काफी हानि उठानी पडी है, और पड़ रही है । दूध मर्त्यलोक का अमृत कहलाता है । उसकी आजकल बेहद कमी हो गई है । परिणाम यह है कि लोगो में निर्बलता और निर्बलता जन्य हजारों रोग आ घुसे हैं । इसके अतिरिक्त तामसिक भोजन पेट मे जाता है, जिससे सतोगुण का नाश होता जा रहा है ।

कृष्ण के चरित्र से गोरक्षा विषयक बहुमूल्य और उपयोगी शिक्षाए मिलती हैं । गायें चराने के बहाने जंगल मे रहने से वहा जो शिक्षा प्रकृति से मिलती है, वह आजकल के बडे-बडे कालेजो और विश्वविद्यालयो मे भी नही मिलती ।

कृष्ण अपनी मुरली की ध्वनि द्वारा जगत् मे नवीन स्फूर्ति, नवीन चेतना फूंकते रहते थे । उनकी मुरली की ध्वनि अलौकिक सगीत की सृष्टि करती थी । वह ध्वनि कानो को अमृत सी मधुर लगती और उसे सुनकर लोग मुग्ध हो जाते थे ।

कई लोग कृष्ण के चरित्र पर यह अपवाद लगाते है कि उन्होने गोपियो के साथ मर्यादा-विरुद्ध दुराचार किया था । वास्तव मे यदि कृष्ण ने ऐसा किया होता तो उनका जीवन पतित हो जाता, उसमे पवित्रता नही रह जाती । साथ ही ऐसे व्यक्ति का स्मरण करना भी त्याज्य हो जाता है । इस अवस्था मे वह महापुरुष नही रह जाते । भक्ति-सूत्र मे लिखा है—

सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्, निरोधस्तु लोकवेद-व्यापारन्यास ।

इसका मतलब यह है कि विषय-वासना होने पर भक्ति नही रह सकती । परमात्मा की भक्ति और विपय-वासना एक साथ कैसे निभ सकती हैं ? ऐसी अवस्था मे कृष्ण के सम्बन्ध मे यह किसो प्रकार कहा जा सकता है कि उन्होने गोपियो के साथ कोई नीच कृत्य किया था ? जिन लोगो के मस्तिष्क मे मलिन भावना भरी हुई हैं, वे सर्वत्र ही मलिनता की कल्पना कर डालते है । उन्हे पवित्र भावना से किये जाने वाले कार्य मे भी अपवित्रता की गध आती हैं । कृष्ण मर्यादा पुरुषोतम थे । किन्तु विपय-वासना से दूषित व्यक्तियो ने अपनी अपावन भावना के अनुसार कृष्ण की कल्पना कर डाली है । इस कल्पना मे अपना मार्ग प्रशस्त वना लेने की भावना भरी हुई है । इधर कुछ शृङ्गार रस के प्रेमी कवियो ने भी काव्य की मर्यादा का उल्लघन करके कृष्ण का चित्रण किया है और इससे कृष्ण के चरित्र पर आक्षेप करने का अवसर मिल गया है ।

नन्द के घर पलते हुए कृष्ण तरुणावस्था मे प्रविष्ट हुए । अब उन्होने सोचा—सादगी और गोपालन का आदर्श मैंने मानव समाज के सामने उपस्थित कर दिया है । अब ससार में बढ़े हुए पाप का विनाश करना चाहिए । ऐसा सोचकर, कस का आमन्त्रण पाकर या कोई अवसर हाथ लगने पर वे कस के यहां गये । कस के पास जाने के लिए

लोगो ने उन्हे रोका और कस द्वारा मारे जाने का भय बताया, पर कृष्ण असाधारण सत्यशाली पुरुष थे। वे कब भय खाने वाले थे। वे निडर होकर कस के यहा गये। कंस ने उन्हे मार डालने के अनेक प्रयत्न किये, पर उसके सब प्रयत्न निष्फल हुए। हाथी और मल्ल आदि को मार कर कृष्ण, कस के पास पहुचे। कृष्ण को सामने देख कस प्रसन्न हुआ। उसने सोचा—मेरा शत्रु सामने आ पहुचा है, अतएव इसे अभी-अभी समाप्त कर देता हू। वह तलवार हाथ मे लेकर कृष्ण को मारने दौडा। पर कृष्ण ने कस की चोटी पकडी और उसे घुमा दिया। सिर पर वशी का प्रहार कर उसकी जीवन-लीला का अन्त कर दिया।

उस समय कृष्ण भिन्न-भिन्न लोगो को भिन्न-भिन्न रूपों मे दिखाई दिये। कृष्ण ने कस को मार डालने के पश्चात् वसुदेव और उग्रसेन आदि को कारागार से मुक्त किया। भला राजमुकुट किसे अप्रिय लगता है ? सभी राजमुकुट से अपने सिर की शोभा बढाना चाहते है। मगर कृष्ण ने सोचा—'मेरा विरोध किसी व्यक्ति से नही है—पाप से है। अगर कोई पापी पुरुष अपने पुराने पापो के लिए पश्चात्ताप करता है और भविष्य में पापाचरण न करने के लिए प्रतिज्ञावद्ध होता है तो उसे मैं क्षमा कर सकता हूं। कस ने ऐसा नही किया। अतएव उसका प्राणान्त करना पडा। उसके प्राणान्त से राजसिहासन सूना हो गया है। न्याय के अनुसार राज्य उग्रसेन का है और उन्ही को यह मिलना चाहिए।' ऐसा विचार कर कृष्ण ने राज्य पर

स्वयं अधिकार न करके उग्रसेन के सिर पर राजमुकुट स्थापित कर दिया । यह थी कृष्ण की महानुभावता ।

कस की रानी जीवयशा रोती-पीटती अपने बाप जरा-संध के पास गई । जरासध मे यदि विवेक की तनिक भी मात्रा होती तो वह कस के सहज ही मारे जाने से समझ लेता कि कृष्ण से लडाई मोल लेना हसी-ठट्ठा नही है । मगर उसे ऐसे सलाहकार मिले कि उन्होने उसे शान्त करने के बदले और अधिक भड़काया । उसका जो परिणाम हो सकता था, वही हुआ—जरासध भी मारा गया । कृष्ण के आगे कालिया नाग भी नम्र हो गया । दुर्योधन भी मारा गया । इस प्रकार तत्कालीन सब बडे-बड़े अपराधी जिन्होने अपना अपराध नही त्यागा था, नष्ट हो गये ।

इस सम्बन्ध मे हमे एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान मे रखनी चाहिये । कृष्ण कहते हैं कि न किसी से मैं वैर रखता हू और न किसी को अपना शत्रु समझता हू । कृष्ण के चरित्र पर अर्जुन के सारथी बनने के कारण अनेक अप-राध लगाये जाते हैं। परन्तु महाभारत के अनुसार अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से जब उत्तरा से गर्भ का घात हो गया, तब कृष्ण ने कहा था—मृत्यु असत्य पर आती है, सत्य के सामने मृत्यु थर्राती है । अतएव किसी सत्यपरायण सत्पुरुष के कहने से यह गर्भ जीवित हो सकता है । लोग कहने लगे—कौन है ऐसा सत्पुरुप ? किसके द्वारा मृतक गर्भ पुनर्जीवित हो सकता है ? कृष्ण ने कहा—'आप सब सज्जन अपना-अपना सत्य आजमाइये और उसकी शक्ति प्रदर्शित कीजिए ।

लोगों ने उन्हे रोका और कस द्वारा मारे जाने का भय बताया, पर कृष्ण असाधारण सत्यशाली पुरुष थे। वे कब भय खाने वाले थे। वे निडर होकर कस के यहा गये। कंस ने उन्हे मार डालने के अनेक प्रयत्न किये, पर उसके सब प्रयत्न निष्फल हुए। हाथी और मल्ल आदि को मार कर कृष्ण, कस के पास पहुचे। कृष्ण को सामने देख कंस प्रसन्न हुआ। उसने सोचा—मेरा शत्रु सामने आ पहुचा है, अतएव इसे अभी-अभी समाप्त कर देता हू। वह तलवार हाथ मे लेकर कृष्ण को मारने दौडा। पर कृष्ण ने कस की चोटी पकडी और उसे घुमा दिया। सिर पर वंशी का प्रहार कर उसकी जीवन-लीला का अन्त कर दिया।

उस समय कृष्ण भिन्न-भिन्न लोगो को भिन्न-भिन्न रूपों मे दिखाई दिये। कृष्ण ने कस को मार डालने के पश्चात् वसुदेव और उग्रसेन आदि को कारागार से मुक्त किया। भला राजमुकुट किसे अप्रिय लगता है? सभी राजमुकुट से अपने सिर की शोभा बढ़ाना चाहते है। मगर कृष्ण ने सोचा—'मेरा विरोध किसी व्यक्ति से नही है—पाप से है। अगर कोई पापी पुरुष अपने पुराने पापो के लिए पश्चात्ताप करता है और भविष्य में पापाचरण न करने के लिए प्रतिज्ञावद्ध होता है तो उसे मैं क्षमा कर सकता हू। कस ने ऐसा नही किया। अतएव उसका प्राणान्त करना पडा। उसके प्राणान्त से राजसिहासन सूना हो गया है। न्याय के अनुसार राज्य उग्रसेन का है और उन्ही को यह मिलना चाहिए।' ऐसा विचार कर कृष्ण ने राज्य पर

स्वय अधिकार न करके उग्रसेन के सिर पर राजमुकुट स्थापित कर दिया। यह थी कृष्ण की महानुभावता ।

कस की रानी जीवयशा रोती-पीटती अपने बाप जरासघ के पास गई। जरासघ में यदि विवेक की तनिक भी मात्रा होती तो वह कस के सहज ही मारे जाने से समझ लेता कि कृष्ण से लडाई मोल लेना हसी-ठट्ठा नही है। मगर उसे ऐसे सलाहकार मिले कि उन्होने उसे शान्त करने के बदले और अधिक भड़काया। उसका जो परिणाम हो सकता था, वही हुआ—जरासघ भी मारा गया। कृष्ण के आगे कालिया नाग भी नम्र हो गया। दुर्योधन भी मारा गया। इस प्रकार तत्कालीन सब बडे-बड़े अपराधी जिन्होने अपना अपराध नही त्यागा था, नष्ट हो गये।

इस सम्बन्ध मे हमे एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान मे रखनी चाहिये। कृष्ण कहते हैं कि न किसी से मैं वैर रखता हूं और न किसी को अपना शत्रु समझता हू। कृष्ण के चरित्र पर अर्जुन के सारथी बनने के कारण अनेक अपराध लगाये जाते हैं। परन्तु महाभारत के अनुसार अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से जब उत्तरा से गर्भ का घात हो गया, तब कृष्ण ने कहा था—मृत्यु असत्य पर आती है, सत्य के सामने मृत्यु थर्राती है। अतएव किसी सत्यपरायण सत्पुरुष के कहने से यह गर्भ जीवित हो सकता है। लोग कहने लगे—कौन है ऐसा सत्पुरुष ? किसके द्वारा मृतक गर्भ पुनर्जीवित हो सकता है ? कृष्ण ने कहा—'आप सब सज्जन अपना-अपना सत्य आजमाइये और उसकी शक्ति प्रदर्शित कीजिए।

अगर आप सफल न हो सकेंगे तो अन्त में मैं अपनी सत्य-शक्ति उपस्थित करूंगा।' कृष्ण को इस बात से लोग मन ही मन मुस्कराने लगे—कृष्ण और सत्य-परायण ! कृष्ण ने समझ लिया कि यह लोग मुझ पर अविश्वास कर रहे हैं। उन्होने कहा—मैंने अपनी जिंदगी मे सत्य की आराधना की है। मेरे सभी कार्य सत्य के लिये हैं। अगर आप मुझे सत्यनिष्ठ न मानते हुए अपने को ही सत्याचारी समझते है, तो आप कहिए—'अगर मुझ मे सत्य है, तो यह बालक जीवित हो जावे।'

कृष्ण की यह चुनौती सुनकर सब लोग कुंठित हो गये। कौन ऐसा था जो अपने को सत्यवादी समझता था और अपने भीतर इस प्रकार की दिव्य-शक्ति के अस्तित्व पर भरोसा करता था ? सब को चुप्पी साधे देख कृष्ण ने कहा—अच्छा आप इस बालक को जीवित नही कर सकते तो मैं जीवित करता हू। यह कह कर वे तैयार हो गये। भक्त लोग तो कृष्ण का यह कथन सुन कर प्रसन्न हुए, लेकिन विरोधियो ने कहा—अच्छा, देखे आप अभिमन्यु के इस बालक को कैसे जीवित कर सकते हैं ? कृष्ण ने कहा—

अब्रवीच्च विशुद्धात्मा सर्वं विश्रावयत् जगत्।
नोक्तपूर्वं मया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन ॥

कृष्ण कहने लगे—'अगर हंसी-मजाक मे भी मैंने कभी असत्य का प्रयोग न किया हो, अगर मैं सदा सत्य मे निष्ठ रहा होऊं, मैंने क्षात्रधर्म का पालन किया हो, पराजित के

प्रति किसी प्रकार का द्वेष न रखा हो, अपना जीवन धर्म के लिए उत्सर्ग कर दिया हो, सदा धर्म का ही आचरण किया हो, किसी भी समय क्षण भर के लिए भी धर्म न त्यागा हो और धर्मोपासको पर मेरी निश्चल निष्ठा रही हो, तो उत्तरा का यह मृत बालक पुनर्जीवित हो जाय।'

कृष्ण के मुख से इन शब्दो के निकलते ही बालक जीवित हो गया। यह कौतुक देखते ही सज्जन जयजयकार करने लगे और दुर्जनो के चेहरे मुरझा गये।

कृष्ण के जीवन मे अगर असत्य और अधर्म को प्रश्रय मिला होता, तो उनकी वाणी मे यह लोकोत्तर सामर्थ्य कहा से आता ? कोई पापी किसी मृतक बालक को जीवित नहीं कर सकता। अतएव कृष्ण के उज्ज्वल चरित मे कलक की कालिमा देखने वाले लोगो को अपनी दृष्टि निर्मल बनानी चाहिए। उन्हे अपने हृदय की मलिनता की परछाई कृष्ण जैसे महापुरुष के जीवन मे नहीं देखनी चाहिए। संतो का समागम करके कृष्ण-जीवन का मर्म समझना चाहिए। किसी पुराण मे तो यहा तक लिखा है कि एक बार रास-क्रीडा करते समय गोपियो के मन मे दुर्भावना उत्पन्न हुई। कृष्ण को जैसे ही यह मालूम हुआ, वे अन्तर्धान हो गये। क्या यह किसी दुराचारी का काम हो सकता है ?

द्वारिका मे प्रजा की सुख-सुविधा और शान्ति के लिए मदिरापान न करने, द्यूत न रमने और व्यभिचार न करने के लिए खास तौर पर व्यवस्था की गई थी। यद्यपि इन

कपिल मुनि किसी जगल में, एक वृक्ष की छाया मे वैठकर ससार के लिए साख्यशास्त्र लिख रहे थे। वे इस कार्य मे इतने मस्त थे कि उन्हे अपने शरीर का भी भान नही था। वास्तव मे एकाग्र भाव से लिखा हुआ ग्रन्थ ही ससार के लिए उपयोगी होता है।

एक वार युधिष्ठिर ने कुछ ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहा। उन्होने कपिल मुनि को भी आमन्त्रित करने की इच्छा की। कपिल मुनि उस युग के बडे प्रतिष्ठित और विद्वान् ब्राह्मण थे। अतएव उन्हे आमन्त्रित करने के लिये किसी और को न भेज कर युधिष्ठिर ने खुद अर्जुन को ही भेजा।

अर्जुन कपिल मुनि के पास पहुचे पर ऋषि अपने कार्य मे तन्मय थे। अर्जुन ने उनकी तन्मयता को भग करना उचित नही समझा। वह हाथ जोड़ कर उनके सामने खडे रहे। ऋषि को अर्जुन के आने और खडे रहने की खवर ही नही थी। जव वे अपने कार्य से निवृत्त हुए तो सामने अर्जुन को खडा देख कर आश्चर्य करने लगे और वोले—राजपुत्र, यहा कैसे ?

अर्जुन—महाराज युधिष्ठिर ने श्रीमान् को सादर प्रणाम कहलाया है और निवेदन किया है कि आज श्रीमान् का भोजन वही हो।

ऋषि इन वचनों को सुनकर खिन्न हो गये। उनके नेत्रो से आसू वहने लगे। अर्जुन ऋषि की यह अवस्था

देख कर भयभीत हुए । उन्होने सोचा—कदाचित् मुझ से कोई अपराध हो गया है अन्यथा ऋषि रोये क्यो ?

आखिर अर्जुन ने प्रकट मे पूछा—श्रीमान् ! आपकी उदासी का क्या कारण है ? क्या मुझसे कुछ अपराध हो गया है ? अथवा धर्मराज का कोई अपराध है ? क्या आप उनके अन्न को पापमय मानते हैं ? क्या महाराज युधिष्ठिर को अधर्मात्मा राजा समझ कर उनके निवेदन को स्वीकार नही करना चाहते ? भगवन् ! हमारे अपराधो को क्षमा कीजिये और अपनी उदासी का कारण स्पष्ट रूप से समझाइये ।

कपिल मुनि—अर्जुन, धर्मराज के अन्त करण में ऐसी भावना ही क्यो उत्पन्न हुई ? फिर मुझ जैसे ब्राह्मण को, जो उच्छवृत्ति से, स्वतन्त्रता के साथ भोजन प्राप्त करता है, बन्धन मे डालने की इच्छा राजा को क्यो हुई ? हाय, यह ब्राह्मणों की भावी अशुभ दशा को बतलाने वाला शकुन है! अब मेरे साख्यशास्त्र का अध्ययन करके कौन ज्ञान का प्रकाश फैलायेगा ? वत्स अर्जुन, मैं इसमे स्वतन्त्रजीवी ब्राह्मणो का पतन समझता हूं ।

भाइयो ! पराये अन्न को न खाने के लिये कपिल मुनि के ये हार्दिक उद्गार ब्राह्मणो को ध्यान मे लेने योग्य हैं । जब वे साधारण परान्न भोजन को और वह भी युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा के अन्न को, खाने के लिये मना कर रहे हैं तब मृतक के पीछे का अन्न आपके ब्रह्मतेज के लिए कितना घातक न होगा ।

तीन बातो पर पूरा लक्ष्य दिया जाता था, पर स्वय यादव लोग ही इनका आचरण करने लगे। तब कृष्ण ने वसुदेव से कहा—अब अपने घर के सर्वनाश का समय आ गया है। अब घर मे ही फूट पड गई है यादव तीनो निषिद्ध वस्तुओ का सेवन करने लगे हैं। जैन-शास्त्र कहते हैं कि इन तीन बातो के कारण द्वारिका नगरी भस्म हो गई। लेकिन ग्रथ कहते हैं कि सब यादव-कुमार प्रभास-पाटन गये थे। वहा उन्होने मदिरा-पान किया। मदिरा के मद मे मत्त होकर दो कुमार आपस मे लड़ने लगे। शेष कुमार भी दोनो मे शामिल हो गये और इस प्रकार उनके दो दल बन गये। आपस मे लडाई छिडी। जो जिसके हाथ आया, उसी से वह लडने लगा। यह लडाई देखकर कृष्ण हसने लगे। अपने परिवार को आपस मे लडकर नष्ट होते देख, कृष्ण की हसी का आशय न समझ कर किसी ने उनसे कारण पूछा। कृष्ण ने कहा—अब इन्हे पृथ्वी पर रहने का अधिकार नही है। इन्हे नष्ट होना ही चाहिए था।

कृष्ण का यह व्यवहार स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है कि न उन्हे पाण्डवों से प्रेम था, न कौरवो से द्वेष था। उन्हे एक मात्र सत्य से प्रेम था, न्याय से अनुराग था सत्य धर्म के प्रति उनकी श्रद्धा थी। पापो को समूल निर्मूल करना उनके जीवन का ध्रुव ध्येय था।

यादव आपस मे लड़ मरे! महाभारत के अनुसार वे मूसल से लड़े थे, जिससे मूसल-पर्व का निर्माण हुआ। कृष्ण घर लौटे। यादव कुमारो का अन्त जानकर वसुदेव

और देवकी ने खूब विलाप किया। लेकिन कृष्ण घर पर नही रुके। वे घर से चल दिये। अन्त मे कौशम्बी वन में जराकुमार के बाण से उनकी मृत्यु हुई।

कृष्ण की जयन्ती मनाते समय आप देखे कि जैसे कृष्ण जन्म से पहले जगत् मे पाप फैला हुआ था, उसी प्रकार आपके हृदय मे तो पाप नही छा रहा है? अगर आप हृदय मे पाप का अनुभव करते है तो अपने हृदय मे कृष्ण को जन्म दीजिए। वास्तव मे कस या शिशुपाल बुरे नही थे, काम क्रोध आदि बुरे है। अगर अपने अन्त करण मे आप इन्हे स्थान देगे, तो आप कृष्ण के विरोधी बन जायेंगे। कृष्ण की भक्ति का सर्वश्रेष्ठ प्रकार अपने हृदय की दुर्भावनाओ पर विजय प्राप्त करना ही है। यही विजय कल्याणकारी है।

४१ : मृतक-भोजन

एक ग्रन्थ मे मैंने साख्यशास्त्र के प्रणेता कपिल मुनि की बात पढी थी। उससे आप समझ जायेंगे कि ब्राह्मणों के लिए मृतकभोज ही नही किन्तु परान्न भोजन भी कितना गर्हित माना गया है।

कपिल मुनि किसी जगल मे, एक वृक्ष की छाया में वैठकर ससार के लिए साख्यशास्त्र लिख रहे थे । वे इस कार्य मे इतने मस्त थे कि उन्हे अपने शरीर का भी भान नही था । वास्तव मे एकाग्र भाव से लिखा हुआ ग्रन्थ ही ससार के लिए उपयोगी होता हैं ।

एक वार युधिष्ठिर ने कुछ ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहा । उन्होने कपिल मुनि को भी आमन्त्रित करने की इच्छा की । कपिल मुनि उस युग के वड़े प्रतिष्ठित और विद्वान् ब्राह्मण थे । अतएव उन्हे आमन्त्रित करने के लिये किसी और को न भेज कर युधिष्ठिर ने खुद अर्जुन को ही भेजा ।

अर्जुन कपिल मुनि के पास पहुचे पर ऋषि अपने कार्य मे तन्मय थे । अर्जुन ने उनकी तन्मयता को भग करना उचित नही समझा । वह हाथ जोड कर उनके सामने खडे रहे । ऋषि को अर्जुन के आने और खडे रहनें की खवर ही नही थी । जव वे अपने कार्य से निवृत्त हुए तो सामने अर्जुन को खड़ा देख कर आश्चर्य करने लगे और वोले—राजपुत्र, यहा कैसे ?

अर्जुन—महाराज युधिष्ठिर ने श्रीमान् को सादर प्रणाम कहलाया है और निवेदन किया है कि आज श्रीमान् का भोजन वही हो ।

ऋषि इन वचनो को सुनकर खिन्न हो गये । उनके नेत्रो से आसू वहने लगे । अर्जुन ऋषि की यह अवस्था

देख कर भयभीत हुए। उन्होने सोचा—कदाचित् मुझ से कोई अपराध हो गया है अन्यथा ऋषि रोये क्यो ?

आखिर अर्जुन ने प्रकट मे पूछा—श्रीमान् ! आपकी उदासी का क्या कारण है ? क्या मुझसे कुछ अपराध हो गया है ? अथवा धर्मराज का कोई अपराध है ? क्या आप उनके अन्न को पापमय मानते हैं ? क्या महाराज युधिष्ठिर को अधर्मात्मा राजा समझ कर उनके निवेदन को स्वीकार नही करना चाहते ? भगवन् ! हमारे अपराधो को क्षमा कीजिये और अपनी उदासी का कारण स्पष्ट रूप से समझाइये।

कपिल मुनि—अर्जुन, धर्मराज के अन्त करण में ऐसी भावना ही क्यो उत्पन्न हुई ? फिर मुझ जैसे ब्राह्मण को, जो उच्छवृत्ति से, स्वतन्त्रता के साथ भोजन प्राप्त करता है, बन्धन मे डालने की इच्छा राजा को क्यो हुई ? हाय, यह ब्राह्मणों की भावी अशुभ दशा को बतलाने वाला शकुन है! अब मेरे सांख्यशास्त्र का अध्ययन करके कौन ज्ञान का प्रकाश फैलायेगा ? वत्स अर्जुन, मैं इसमे स्वतन्त्रजीवी ब्राह्मणो का पतन समझता हूं।

भाइयो ! पराये अन्न को न खाने के लिये कपिल मुनि के ये हार्दिक उद्‌गार ब्राह्मणो को ध्यान मे लेने योग्य हैं। जब वे साधारण परान्न भोजन को और वह भी युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा के अन्न को, खाने के लिये मना कर रहे हैं तब मृतक के पीछे का अन्न आपके ब्रह्मतेज के लिए कितना घातक न होगा।

५२ : पतिव्रता का प्रभाव

सुभद्रा एक जैन बालिका थी । उसका विवाह किसी अजैन के साथ हुआ था । माता-पिता को पहले मालूम नहीं था कि वर जैन नही है । विवाह होने के बाद पता चला । पहले मालूम हो जाता तो शायद उसके साथ सुभद्रा का विवाह न करते परन्तु सुभद्रा की कसौटी होनी थी, इस कारण वह विवाह हो गया ।

कसौटी के बिना धर्मवीर की परीक्षा नही होती । धर्मवीर कसौटी से डरते भी नही हैं । वे अपनी धर्मवीरता की परीक्षा देने को सदैव प्रस्तुत रहते हैं ।

सुभद्रा अपने धर्म पर दृढ थी । वह अपनी ससुराल मे अर्हन्त भगवान् का नाम लेती तब पति आदि उसे रोकते । सुभद्रा नम्रता से कहती—आप लोग मुझे क्यो रोकते है ? इस मत्र ने आपका क्या बिगाडा है ? आप मुझे डाट-डपट बतलाते हैं, फटकारते हैं ! मैं सब इस मत्र के प्रताप से सहन कर रही हू । यह मत्र मेरा जीवनधन है । आप इसके जाप के लिये मना न किया करे तो अच्छा है ।

परन्तु सुभद्रा के घर वालो ने इसके विनम्र कथन पर कुछ भी ध्यान नही दिया । वे हर वक्त कुछ न कुछ खट-पट किया ही करते थे । जब जो मन मे आता, वे कह देते थे ।

जब एक दिन सुभद्रा के घर साधुजी गोचरी के लिये आये। उनकी आंख मे फूस पड गया था। आंख से पानी झर रहा था। पूर्ण भक्तो को भक्ति के आवेश मे लोक-व्यवहार का खयाल नही रहता। सुभद्रा पूर्ण भक्त थी। साधुजी को आंख मे कुछ गिरा जानकर वह उनके पास गई और उसने अपनी जीभ से फूस निकाल डाला। फूस निकालते समय सुभद्रा के ललाट की सिन्दूर की टीकी साधु के ललाट पर लग गई थी।

साधुजी या सुभद्रा को इस बात का कोई खयाल नहीं था। साधुजी गोचरी लेकर रवाना हुए। लोगो ने साधु के ललाट पर टीकी देखी। सब जगह बात फैल गई कि सुभद्रा ने साधु को विचलित कर दिया है। सब कहने लगे—सुभद्रा महादुष्टा, व्यभिचारिणी और धूर्ता है। वह धर्म का केवल ढोग करती है।

सुभद्रा के सास-ससुर, देवर-जेठ और पति आदि ने भी यह बात सुनी। वे भी सुभद्रा को कलकिनी सम लगे।

पर सुभद्रा का अन्तःकरण स्वच्छ था। उसे अपनी सचाई पर विश्वास था। वह समझती थी कि लोग कुछ भी कहे, सत्य तो सत्य ही रहेगा। असली बार छिपी नही रह सकती। फिर मुझे घबराने की क्या आवश्यकता है।

उसी दिन से सुभद्रा तेला करके पौषध मे बैठ गई। तपस्या मे अजब शक्ति होती है। सच्चे दिल से त

ENGLISH

चित्त में कुतूहल हुआ और दया की भावना भी जागृत हुई। तब वह उधर ही चल पड़ा, जिधर से आवाज आई थी।

थोडी-सी दूर जाने पर वजीर ने देखा कि एक मनुष्य जमीन पर पड़ा है। उसके शरीर पर जगह-जगह मारपीट के चिह्न बने है। एक टाग टूट गई हैं और उसमे से लहू वह रहा है। मक्खियां भिनभिना रही है।

वजीर देखते ही घोड़े से नीचे उतर पड़ा। उसने अपने दुपट्टे से उस आहत मनुष्य के पैर पर पट्टी बांधी। उसके बाद कहा—आप यहां कैसे पडे है? इस घोड़े पर बैठ जाइए और शहर चलिए। आदमी चुपचाप घोड़े पर बैठ गया। वजीर घोड़े की लगाम पकड कर आगे-आगे चलने लगा।

कुछ दूर जाने पर वजीर ने उसके चेहरे की तरफ देखा। चेहरा प्रसन्न दिखाई दिया। तब पूछा—कहो भाई! तबीयत कैसी है?

उसने कहा—जनाब, अब अच्छी है। इस कृपा के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हू।

वजीर—धन्यवाद तो ईश्वर को दीजिए। मैं किस योग्य हू? आपने बहुत तकलीफ सही है। दूसरा कोई होता तो घबराहट का मारा प्राण छोड़ देता।

वह बोला—आप ठीक कहते हैं, पर रोने-धोने से क्या

होता है। मौत आ जाय तो हाय-हाय करने से भी वह नहीं रुकेगी। रोने-चीखने से दुःख दूर तो होता नहीं है, यह तो ईश्वर को भूल जाना है।

वजीर—आप तो कोई महान् पुरुष मालूम होते हैं।

उसने कहा—महान् पुरुष तो आप हैं कि जानते नहीं, पहिचानते नहीं, फिर भी मेरी सहायता कर रहे हैं।

५७-भय

बगदाद के एक किसान ने एक विचित्र दृश्य देखा। उसने पूछा—'तू कौन है?'

उत्तर मिला—महामारी रोग।

किसान—कहा जा रही है?

महामारी—बगदाद।

किसान—क्यों?

महा०—भक्ष्य के लिए।

किसान—मुझे भक्षण क्यों नहीं कर लेती?

महा०—मैं जब तेरे सामने खड़ी हू, तब भी तू नहीं डरता है। फिर तेरा भक्षण कैसे करू ?

किसान—बगदाद मे कितना भक्ष्य लेगी ?

महा०—पांच हजार मनुष्यों का।

किसान—लौट कर इधर आएगी ?

महा०—हां, आऊ गी।

वह गई और कुछ दिनों बाद फिर उसी किसान से मिली। किसान ने पूछा—कौन ?

महा०—वही महामारी।

किसान—भक्ष्य ले आई ?

महा०—हाँ।

किसान—कितना लाई ?

महा०—पचास हजार मनुष्यों का।

किसान—झूठी कहीं की ! मुझसे पांच हजार कहा था और लाई पचास हजार !

महा०—मैं क्या करू ? मैंने तो पाच हजार ही लिए, बाकी पैंतालीस हजार तो अपने आप ही डर के मारे मर गये।

卐

५८–सिकन्दर

परिग्रह परिमाण-व्रत में विस्तीर्ण मर्यादा रखने से पारलौकिक हानि तो है ही, साथ ही मर्यादा में रखा हुआ धन कभी न कभी तो त्यागना ही होता है। उसको कोई साथ तो ले नही जा सकता। सिकन्दर अपने समय का बहुत बड़ा बादशाह माना जाता था। उसने यूरोप और एशिया का अधिकांश भाग जीत लिया था और वह उस भाग का बादशाह था। फिर भी वह मरने पर उस राज्य संपदा मे से कुछ भी अपने साथ न ले जा सका। सब कुछ यही रह गया। सिकन्दर ने यह देख कर कि मैं मर रहा हूं और कोई सम्पत्ति मेरा साथ न देगी, यह आज्ञा दी कि मेरे दोनो हाथ जनाजा से बाहर रखे जावें। उसने अपने चोबदार को इस आज्ञा का कारण भी बता दिया था। इस प्रकार की आज्ञा देकर, सिकन्दर मर गया। उसका जनाजा निकला। सिकन्दर के दोनों हाथ जनाजे से बाहर निकले हुए थे। रीति-परम्परा के विरुद्ध बादशाह के हाथ जनाजे से बाहर निकले हुए देखकर लोगो को बहुत आश्चर्य हो रहा था।

जब जनाजा चौराहे पर पहुंचा, तब चोबदार ने आवाज देकर सब लोगो से कहा कि आपके बादशाह के हाथ जनाजे से बाहर क्यों निकले हुए हैं? इसका कारण सुन लीजिए। सब लोग चोबदार की बात सुनने के लिए खड़े

हो गये । चोबदार कहने लगा कि बादशाह ने अपने हाथ जनाजे से बाहर रखने की आज्ञा यह बताने के लिए दी थी कि 'मैंने अनेक देशो को जीता, बहुत-सी सम्पत्ति एकत्रित की और इसके लिए बहुत लोगों को मारा, लेकिन मैं मौत को न जीत सका । इस कारण आज मैं तो जा रहा हू परन्तु जिस राज्य–सम्पदा के लिए मैंने यह सब किया था, वह यही रह गई है । देख लो, मेरे ये दोनो ही हाथ खाली है । इसलिये जैसी गल्ती मैंने की, वैसी गल्ती और कोई मत करना ।'

चोबदार द्वारा सिकन्दर की कही हुई बात सुनकर, लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई । सब लोग, इस उपदेश के लिये सिकन्दर की प्रशसा करने लगे । इस घटना के कारण ही यह कहा जाता है कि—

लाया था क्या सिकन्दर, और साथ ले गया क्या ?
थे दोनो हाथ खाली, बाहर कफन से निकले ।

तात्पर्य यह कि चाहे कैसी भी बड़ी सम्पत्ति हो, मरने के समय तो छोडनी ही होगी, और जिसके पास जितनी ज्यादा सम्पत्ति है, मरने के समय उसको उतना ही ज्यादा दु ख होगा । इसलिए पहले ही अधिक से अधिक धन-सम्पदा क्यो न त्याग दी जावे, जिसमें मरने के समय भी आनन्द रहे और मरने के पश्चात् भी ।

५९-टाल्सटाय

कल एक सज्जन (श्री रामनरेश त्रिपाठी) के सामने मैंने टाल्सटाय का जिक्र किया। तब उन्होने उसके जीवन की एक बात मुझे सुनाई। उसके पतित जीवन का उत्थान किस प्रकार हुआ, यह दिखलाने के लिये ही मैं उस घटना का उल्लेख कर रहा हूं। टाल्सटाय का पतन इतना अधिक हो चुका था कि उसके कुकृत्यों की पराकाष्ठा हो चुकी थी। शायद ही कोई कुकर्म शेष रहा होगा, जिसका टाल्सटाय ने सेवन न किया हो। ऐसी पतित आत्मा एक वेश्या की घटना से जागृत हो उठी।

एक सुन्दरी कुवारी कन्या को टाल्सटाय ने धन का लोभ देकर भ्रष्ट किया था। वह उस समय युवक तो था ही, धन भी उसके पास चालीस लाख रूबेल का था और साथ ही सत्ता भी प्राप्त थी। एक रूबेल करीब डेढ रुपये के बराबर माना जाता है। टास्सटाय राजघराने मे जन्मा था, अतएव अधिकार भी उसे प्राप्त था—

यौवन धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्?

जवानी, धन, अधिकार और अविवेक मे से कोई एक भी अनर्थ का कारण हो जाता है। जहा चारो मिल जायें, वहां तो कहना ही क्या है? यह चाण्डाल-चौकड़ी सभी अनर्थो का कारण बन जाती है। प्रथम तो युवावस्था को

ही शान्तिपूर्वक बिताना कठिन है। फिर ऊपर से धन-सम्पत्ति और अधिकार मिल जाय तो उसकी अनर्थकारी शक्ति वैसे ही बढ जाती है, जैसे तीन इकाईयां मिल जाने पर एक सौ ग्यारह हो जाते हैं। इन तीनों के होने पर भी अगर विवेक हुआ तो वह इन्हे ठीक रास्ते पर लगा देता है। अगर अविवेक हुआ तो मत पूछिये बात ! फिर तो अनर्थ की सीमा नही रहती।

टाल्सटाय को तीनो शक्तियां प्राप्त थी और ऊपर से अविवेक था। इस कारण उसने कुंवारी कन्या को भ्रष्ट कर दिया। कन्या गर्भवती हो गई। घर वालों ने सगर्भा समझ कर उसे घर से निकाल दिया। कुछ दिन तक तो वह इधर-उधर भटकती रही, मगर दूसरा मार्ग न मिलने से उसने वेश्यावृत्ति अंगीकार कर ली। कहा है—

विवेकभ्रष्टाना भवति विनिपातः शतमुखः।

जो एक बार विवेक से भ्रष्ट हो जाता है, उसका पतन होता ही चला जाता है। कोई भी स्त्री जब पतित होती है और उसकी पवित्रता मलिनता के रूप मे परिणत हो जाती है तो फिर उसके पतन का ठिकाना नहीं रहता। वेश्या के सबध मे भी यही बात है। वेश्या किन-किन नीच कार्यों मे प्रवृत्ति नही करती, यह कहना कठिन है। इस वेश्या ने भी किसी धनिक को अपने चगुल मे फांस लिया और धन के लोभ मे पड़कर उसे मार डाला। पुलिस ने पता लगा लिया और वेश्या अदालत मे पेश की गई। सयोगवश उस अदालत का न्यायाधीश वही टाल्सटाय था,

जिसने उसे भ्रष्ट किया था और जिसकी बदौलत उसे वेश्या-वृत्ति स्वीकार करने के लिये बाध्य होना पड़ा था। वेश्या ने तो उसे नही पहचाना मगर वह वेश्या को पहचान गया। टालसटाय ने उस वेश्या को धैर्य बन्धाकर हत्या के विषय मे पूछा। वेश्या ने हत्या करने का अपराध स्वीकार करते हुए कहा—'मुझे एक पापी ने धन का लोभ देकर भ्रष्ट किया। उस समय मैं अबोध थी और उस पाप के परिणाम को नही समझ सकी थी। इसी कारण मैं उसके चगुल में आ गई। मैं गर्भवती हुई। घर से निकाली गई। निरुपाय होकर मैंने वेक्ष्यावृत्ति स्वीकार कर ली। एक दूसरी वेश्या की बातों मे आकर धन के लिए मैंने इस धनिक की हत्या की।'

वेश्या का बयान सुनते-सुनते टालसटाय घबरा उठा। उसकी अन्तरात्मा प्रश्न करने लगी—इस हत्या के लिए कौन उत्तरदायी है—वेश्या या मैं? वास्तव मे इस पाप के लिए यह अपराधिनी नही है। अपराधी मैं हूं।

लोग अपने अपराधो को छिपाना जानते हैं, उन्हे स्वीकार करना नही आता। इस अविद्या से आज संसार पतित हो रहा है।

टालसटाय अपने पाप की भीषणता का विचार करके इतने घबराये कि पसीने से तर हो गये। पास मे बैठे हुए दूसरे न्यायाधीश उनकी यह दशा देखकर आश्चर्य करने लगे। टालसटाय की परेशानी और घबराहट का कारण समझ में नही आया। टालसटाय ने अपना आसन छोड़ दिया।

उनकी जगह दूसरा जज अभियोग का विचार करने के लिए बैठा । टाल्सटाय ने जाते हुए अपने स्थापनापन्न जज से कहा—किसी भी उपाय से इस वेश्या को फांसी से बचा लेना ।

टालसटाय एकान्त मे जाकर जी भर रोये और अपने अपराध के लिए पश्चात्ताप करने लगे । वह सोचने लगे—इस वेश्या के समस्त पापो का कारण मैं ही हू । वेश्या पापिनी नही, मैं पापी हू । मैने ही इसे पाप कार्य मे प्रवृत्त किया है । ईश्वर का उपदेश दूसरी जगह नही, उन बन्धुओ से ही मिल सकता है, जिन्हे हमने हानि पहुचाई है । वे हमारे विषय में क्या कहते होगे ? इस वेश्या ने यथार्थ ही कहा है ।

अदालत ने वेश्या को साइबेरिया भेज दिया । साइबेरिया रूस का वह भाग है, जो वहां का काला पानी समझा जाता है और जहा शीत अधिक पड़ता है ।

टालसटाय सोचने लगे—वेश्या को तो दण्ड मिल गया पर असली अपराधी बच गया । मगर दूसरे की निगाहों से बच गया तो क्या हुआ, मैं अपनी निगाह से कैसे बच सकता हू ? टालसटाय ने साइबेरिया के अधिकारियों से मिल-जुल कर उस वेश्या को सहायता पहुचाना आरम्भ किया । उसने यह भी प्रबन्ध कर लिया कि वेश्या के समाचार उसे मिलते रहे । यद्यपि टालसटाय उसकी यथायोग्य सहायता कर रहा था, किन्तु किसी के पूछने पर वह यही उत्तर देती थी कि एक दुष्ट ने मुझे भ्रष्ट कर दिया था और उसी पापी का पाप मैं यहां भोग रही हू ।

वेश्या के ये उद्गार टालसटाय को मालूम होते रहते थे। दूसरा होता तो कह सकता था—क्या मैं अकेला ही पापी हू ? उसने भी तो पाप किया था। उस पापिनी की मैंने जान बचाई और सहायता भी कर रहा हू, इतने पर भी वह ऐसा कहती है ! लेकिन इस घटना से टालसटाय की आखें खुल चुकी थी। वह उस वेश्या की बातें सुनकर पश्चात्ताप करते और उसकी अधिकाधिक सहायता करते थे। वह सोचते—मेरा ही पाप उसके पास पहुंचकर ऐसा कहला रहा है। वह मुझे अपशब्द नही कहती, वरन् मगल-उपदेश दे रही है। धीरे-धीरे टालसटाय के जीवन मे आमूल परिवर्तन हो गया।

सन्देह किया जा सकता है कि कहीं गालियो से या वेश्या से भी उपदेश मिल सकता है ? इसका उत्तर यही है कि हम सब मे और वेश्या मे मूल तत्त्व तो एक ही है। मगर उसे समझने के लिए गहराई मे घुसना पड़ता है। इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में भी मूल तत्त्व समान है। उसे खोज लेने, उस तक पहुचने और प्राप्त करने के लिए जिस उपाय की आवश्यकता है, वह आचार्य मानतुंग ने प्रकट कर दिया है।

—

मित्रो ! दूसरे लोगो की बुराई देखना छोडकर अपनी बुराई देखो। यह देखो कि आपने दूसरो को पतित ही किया है या किसी का उत्थान भी किया है ? इस बात पर विचार करने से आपका उत्थान होगा। ईश्वर दूर नही है। जिनको तुमने पतित किया है, उनके अन्त:करण से निकलने

वाली ध्वनि अपने कानो से सुनो और सोचो कि वे तुम्हारे विषय मे क्या कहते हैं ?

टालसटाय ने वेश्या को भ्रष्ट किया था। अगर आपके जीवन मे ऐसा कोई काला धब्बा नही है तो आप भाग्य-शाली है ! लेकिन दूसरे पदार्थों को तो आप भ्रष्ट करते ही हैं, यह कपडे जब तक आपने नही पहने थे, पवित्र माने जाते थे, मगर आपके पहन लेने पर यह निर्माल्य हो गये। इसी प्रकार आप स्वादिष्ट और सुगधित भोजन पेट मे डालते हैं मगर पेट में पहुचकर उसकी क्या स्थिति हो जाती है ? क्या आप पवित्र वस्तु को अपवित्र करने के लिए ही पैदा हुए हैं ? मित्रो ! दूसरे के कल्याण मे अपना कल्याण मानने से आत्मा का उद्धार होने मे देर नही लगती। इस-लिए शास्त्र में कहा गया है—

परोपकाराय सतां विभूतयः।

अर्थात्—सत्पुरुषो की विभूतिया परोपकार के लिए होती हैं।

▽

६० : सुबुक्तगीन

सुबुक्तगीन बादशाह का वृत्तान्त इतिहास मे आया है। वह अफगानिस्तान का बादशाह था। वह एक गुलाम खान-

दान में पैदा हुआ था और सिपाही था। एक बार वह ईरान से अफगानिस्तान की ओर घोड़े पर सवार होकर आ रहा था। मार्ग में थकावट से या किसी अन्य कारण से उसका घोड़ा मर गया। जो समान उससे उठ सका, वह तो उसने उठा लिया और शेष वहीं छोड़ दिया। मगर उसे भूख इतनी तेज लगी कि व्याकुल होने लगा। इसी समय सामने की ओर से हिरनों का एक झुण्ड आ निकला। उसने झपट कर उस झुण्ड में से एक बच्चे की टांग पकड़ ली। झुण्ड के और हिरन तो भाग गये मगर उस बच्चे की मां वहीं ठिठक गई और अपने बच्चे को दूसरे के हाथ मे पड़ा देख कर आंसू बहाने लगी। अपने बालक के लिए उसका दिल फटने लगा!

बच्चे को लेकर सुबुक्तगीन एक पेड़ के नीचे पहुंचा और उसे भून कर खाने का विचार करने लगा। उसने रूमाल से बच्चे की टांगे बांध दीं ताकि वह भाग न जाय। इसके बाद वह कुछ दूर एक पत्थर के पास जाकर अपनी छुरी पैनी करने लगा। इतने मे मृगी अपने बच्चे के पास आ पहुंची और वात्सल्य के वश होकर बच्चे को चाटने लगी, रोने लगी और अपना स्तन उसके मुह की ओर करने लगी। बच्चा बेचारा बंधा हुआ तडफ रहा था। वह अपनी माता से मिलने और उसका दूध पीने के लिए कितना उत्सुक था, यह कौन जान सकता है? मगर विवश था! टांगे बंधी होने के कारण वह खड़ा भी नही हो सकता था। अपने बच्चे की यह दशा देखकर मृगी की क्या हालत हुई होगी, यह कल्पना करना भी कठिन है। माता का भावुक

हृदय ही मृगी की अवस्था का अनुमान कर सकता है। मगर वह भी लाचार थी। वह आंसू बहा रही थी और इधर-उधर देखती जाती थी कि कोई किसी ओर से आकर मेरे बालक को बचा ले !

इस समय छुरी पैनी करके सुबुक्तगीन लौट आया। बच्चे की मां हिरनी यहा भी उसके पास आ पहुची है, यह देखकर उसको आश्चर्य हुआ। हर्ष और विषाद की अनुभूति हृदय मे होती है मगर चेहरे पर उस अनुभूति का असर पड़े बिना नही रहता। उसने हिरनी के चेहरे पर गहरे विषाद की परछाई देखी और नेत्रों में आसू देखे। यह देखकर उसका हृदय भी भर गया। वह सोचने लगा—मैं इन मृगों को नाचीज समझता था, बेजान मानता था और सोचता था कि यह मनुष्य के खाने के लिए ही खुदा ने बनाये हैं! मगर आज मालूम हुआ कि मैं भारी भ्रम में था। कौन कह सकता है कि इस हिरनी मे जान नही है ? जो इसे बेजान कहते हैं, समझना चाहिए कि वे खुद ही बेजान है। अगर हिरनी में जान नही है तो इन्सान मे भी जान नहीं है। अगर इन्सान मे जान है तो फिर हिरनी मे भी जान है अगर हिरनी को मनुष्य की भाषा प्राप्त होती और मैं इससे पूछता तो यह तीन लोक के राज्य से भी अपने बच्चे को बड़ा बतलाती। मेरे लिए यह बच्चा दाल रोटी के बराबर है, मगर जिसके हृदय में इसके प्रति गहरा प्रेम है, उसका हृदय इस समय कितना तडफता होगा ? अपना खाना-पीना छोड़कर और प्राणो की परवाह न करके हिरनी यहा तक भागी आई है। इस बच्चे के प्रति इसके हृदय में

कितना प्रेम होगा ! धिक्कार है मेरे खाने को ! जिससे दूसरे को घोर व्यथा पहुचती हो, वह भले मानुस का खाना नही हो सकता । अगर मैं अपना पेट भरने के लिए इस बच्चे की जान ले लूगा तो इसकी इस स्नेहमयी माता को कितनी व्यथा होगी ! अब चाहे मैं भूख का मारा मर जाऊ मगर इस माता के दुलारे को नही खाऊगा ।

आखिर उसने बच्चे को छोड़ दिया । बच्चा अपनी माता से और माता अपने बच्चे से मिलकर उछलने लगे । यह स्वर्गिक दृश्य देखकर सुबुक्तगीन की प्रसन्नता का पार न रहा । इस प्रसन्नता मे वह खाना-पीना भूल गया । आज ही उसकी समझ मे आया कि प्राणी पर दया करने से कितना आनद प्राप्त होता है !

जगली पशुओ के डर से सुबुक्तगीन रात के समय पेड़ पर चढ कर सोया करता था । उस दिन भी वह पेड़ पर ही सोया था । स्वप्न मे उसके पैगम्बर ने उससे कहा—'तूने बच्चे पर दया करके बहुत अच्छा काम किया है । तू अफगानिस्तान का बादशाह होगा ।' उसके पैगम्बर की भविष्यवाणी सच्ची हुई । कुछ दिनो बाद वह सचमुच ही अफगानिस्तान का बादशाह बन गया ।

अब आप विचार कीजिए कि बच्चे से उत्कट प्रेम होने के कारण हिरनी ने प्राणो की परवाह नही की तो परमात्मा से प्रेम होने पर मनुष्य को कैसा होना चाहिए ? जिसके हृदय मे परमात्मा के प्रति सच्ची भक्ति होगी, वह धन-दौलत को बडी चीज नही समझेगा । उसकी बुद्धि झूठ-

कपट आदि बुरे कामो की ओर कभी नही जाएगी । भक्त-हृदय भली-भाति समझता है कि ये सब कुत्सित काम भक्ति का विनाश करने वाले हैं । जो ऐसी भक्ति तक पहुच जाता है, उसका कल्याण ही कल्याण होता है ।

६१—खादी

एक भाई ने मेरे शरीर पर खादी देखकर कहा—'पूज्यजी के शरीर पर खादी !' उसे शायद यह सोचकर आश्चर्य हुआ कि इतने धनिक समाज का आचार्य होकर मैं खादी क्यो पहनू ? मगर उस भोले भाई को पता नही कि खादी का कितना महत्त्व है ? महावीर-चरित्र के अन्त में, उसके रचयिता हेमचन्द्राचार्य का जीवन चरित्र दिया गया है । उसमे लिखा है कि आचार्य हेमचन्द्र एक बार अजमेर से पुष्कर गये थे । वहा एक श्राविका ने अपने हाथ से सूत कात कर खादी बुनी थी । खादी तैयार हुई ही थी कि हेमचन्द्राचार्य गोचरी के लिए वहा पहुचे । श्राविका ने बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ आचार्य से खादी लेने की प्रार्थना की । हेमचन्द्राचार्य गुजरात के प्रसिद्ध राजा कुमारपाल के गुरु थे ।

आपके विचार से हेमचन्द्राचार्य को खादी नही लेनी चाहिये पर यह स्वाग तो आप लोगो को ही सूझता है, उन्हे नही सूझता था ।

हेमचन्द्राचार्य ने बड़े प्रेम से खादी का वस्त्र स्वीकार किया । उसे पहिन कर विहार करते-करते वे सिद्धपुर पाटन गए, जहां राजा कुमारपाल रहता था । राजा अपने साथियो के साथ उनका स्वागत करने आया । वन्दना-नमस्कार आदि करके कुमारपाल ने कहा—'गुरुदेव, कुमारपाल के गुरु के शरीर पर यह खादी शोभा नही देती ।'

हेमचन्द्राचार्य—मेरे खादी पहनने से तुम्हे लज्जा मालूम होती है ?

कुमारपाल—जी हा ।

हेम०—यह खादी मेरे सयम को बढाने वाली है । श्राविका बहिन ने बडे प्रेम से मुझे भेट की है । ऐसी स्थिति मे तुम्हे लज्जित होने की क्या आवश्यकता है ? लज्जा तो राजा को तब आनी चाहिए जब प्रजा भूखी मरती हो और राजा भोग-विलास मे डूबा रहता हो । उनकी दुरवस्था और अपने आमोद-प्रमोद को देखकर लज्जित होना चाहिए, खादी से शर्मिन्दा क्यों होता है ?

आचार्य हेमचन्द्र के इस कथन का राजा कुमारपाल पर ऐसा प्रभाव पडा कि उसने थोडे ही दिनो मे अपने राज्य मे सुधार कर लिया । राजा के सुधारकार्य को देखकर आचार्य

हेमचन्द्र ने उस श्राविका को धन्यवाद देकर कहा—यह उस वहिन के प्रेम का ही प्रताप है। उसके दिये कपड़े के निमित्त से जो सुधार हो पाया, वह मेरे उपदेश से भी होना कठिन था।

६२—देशभक्ति

सागर में एक श्रावक थे। वह देशी और विदेशी—दोनो प्रकार की वस्तुओ का व्यापार करते थे। एक बार किसी अंग्रेज ने उनकी दुकान से चावल खरीदने के लिए अपना नौकर भेजा। दुकानदार के पास दोनो तरह के अच्छे चावल थे, परन्तु देशी चावल अच्छे और सस्ते थे। साहब को अच्छे चावल देने के इरादे से उसने देशी चावल नौकर को दे दिये। नौकर चावल लेकर चला गया। साहब ने चावल देखे तो लाल-पीला हो गया। नौकर को कुछ भला-बुरा कहा! अन्त मे नौकर को हुक्म दिया—इसी समय जाकर देशी चावल लौटा आओ और विदेशी खरीद लाओ।

भागा-भागा नौकर दुकान पर पहुंचा। सेठजी से सब हाल कहा। सेठजी ने चावल लौटा लिए और चौगुनी कीमत वसूल कर परदेशी चावल तोल दिये।

कुछ दिनो बाद सेठजी की उसी साहब से मुलाकात हुई। सेठजी ने चावलो की अदला-बदली करने का कारण पूछा। साहब ने कहा—'विलायती चावल खरीदने से उसकी कीमत हमारे देशवासियो को मिलती है। हम ऐसे मूर्ख नही है, जो विदेश में आकर अपने देश-भाइयो को भूल जाए और अपने देश का माल न खरीदें। हमारे लिए स्वदेश प्रथम है—दूसरे देश फिर। हम देशद्रोह करके अपना जीवन कलं-नही करना चाहते।'

सेठजी साहब का देशप्रेम देख कर चकित रह गये। उन्होने तभी से स्वदेशी वस्तुओ का ही व्यापार करने की प्रतिज्ञा कर ली।

पाश्चात्यो के देशप्रेम का एक और उदाहरण जानने योग्य है—

बम्बई मे एक अंग्रेज ने अपने नौकर को बूट खरीदने भेजा! नौकर देशी दुकान से एक सुन्दर बूट की जोड़ी पाच रुपये मे खरीद कर ले गया। उस अग्रेज ने बूट देखे। उसकी निगाह वहां गई, जहा लिखा था—Made in India इन शब्दो को देखते ही अग्रेज आगबबूला हो गया और बोला—गधे कहीं के, यह देशी बूट क्यो लाया?'

नौकर ने कहा—साहब, आप पहन कर देखे। बूट सुन्दर हैं और टिकाऊ भी।

साहब—देशी बूट कितने ही सुन्दर और टिकाऊ हों, मुझे नही चाहिए। तू ये वापस कर आ। मेरे लिए विला-

यती बूट किसी अग्रेज कम्पनी से खरीद ला। उसके मोल की चिन्ता मुझे नही करनी है।

नौकर देशी व्यापारी के पास गया और बूट के विषय में आप—बीती सुनाई। उस भले व्यापारी ने बूट लौटा लिए। फिर वह नौकर अग्रेजी कम्पनी मे गया और कई गुनी कीमत चुकाकर बूट जोड़ा खरीद ले गया। साहब ने बूट देखे। Made in England देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। नौकर ने डरते-डरते पूछा, यह कीमत मे भारी है, टिकाऊ भी वैसे नही हैं और खूबसूरती मे भी उतने नही है। फिर आपने पहले वाले बूट न लेकर यह क्यो पसद किये? साहब बोले—'इगलिश कम्पनी के खरीदे हुए बूट मेरे देश की बनी हुई वस्तु है। वे कैसे भी क्यो न हों, मुझे प्रिय है। अपने देश की चीज खरीद कर मैं अपने देश के प्रति प्रेम प्रकट करता हू। जिस देश में मेरा पालन-पोषण हुआ है। उसकी अवगणना मैं कैसे कर सकता हूं। सात समुद्र पार आकर भी, जब मैं अपने देश की बनी वस्तु देखता हू तो देश की सुखद स्मृति मेरे दिल मे हिलोरे मारने लगती है। मेरा मस्तक देश के लिए झुक जाता है। मेरा देश मेरे लिए देव है। मैं देवता को भाति अपने देश की पूजा करता हू।'

ये उदाहरण कल्पित नही है। ये घटी हुई सच्ची घटनाए हैं। इन उदाहरणो से हमे राष्ट्रप्रेम और देशभक्ति की जो शिक्षा मिलती है वह भारतवासियो को सीखनी चाहिए। इसमे से अपने देश की स्वतन्त्रता का मूलमंत्र मिल सकता है। पाश्चात्य लोगो ने देश हमारा देव है और स्व-

देशी वस्तु उस देव का प्रसाद है, इस राष्ट्रीय भावना को अपने जीवन मे मूर्त्त रूप दिया है। इसी मूर्त्त भावना के कारण वे स्वतन्त्रता का सुख अनुभव कर रहे हैं। वे सात समुद्र लांघकर हजारो मील की दूरी पर, भारत मे आये हैं, मगर क्षण भर के लिए भी अपने देश को नही भूलते। उनकी राष्ट्रभक्ति का इसी से परिचय मिलता है :

६३—नगर-नायक

धर्म या आत्महित के अर्थ सर्वस्व का उत्सर्ग करना अपने साहित्य और इतिहास का प्रधान स्वर है ही, मगर सच्चे नागरिक की हैसियत से अपने कर्तव्य का पालन करने मे हमारे पूर्वजो ने जो बलिदान किये हैं, उनकी किसी भी समुन्नत, सुसंस्कृत और स्वतन्त्र देश के साथ साभिमान तुलना की जा सकती है। ये ग्रामधर्म और नगरधर्म कब शिथिल हुए और किस प्रकार अन्त में वे शास्त्रो के पृष्ठो पर ही सुशोभित रह गये, यह हमे नहीं मालूम, मगर सच्चा नगर-धर्म क्या है और नगरधर्म की रक्षा के लिए नगर-नायक को कितना त्याग करना पडता है, यह बात आज भी हम जानते हैं और नीचे लिखे उदाहरण से वह स्पष्ट हो जाती है।

वैशाली नगरी मे महामाहन नामक नगरनायक था। वह राजा और प्रजा दोनो का प्रेम-पात्र था। महामाहन, राजा और प्रजा के पारस्परिक स्नेहबन्धन को सदैव मजबूत रखने का प्रयत्न करता था। उसके नेतृत्व मे वैशाली की प्रजा आनन्दपूर्वक रहती थी। उसकी कार्यप्रणाली से सभी को सन्तोष था। वह नगरनायक के उत्तरदायित्व को भली-भांति जानता था। नगरधर्म उसके लिए अपने प्राणो से भी अधिक मूल्यवान् था। वह नगरधर्म की रक्षा मे अपनी और प्रजा की रक्षा मानता और नगरधर्म के विनाश मे अपना और प्रजा का विनाश समझता था। एक वार उसकी कसौटी का दिन आ पहुचा।

महामाहन के नगर पर किसी दुश्मन ने चढ़ाई की। उसने नगर की स्त्रियो को, बालकों और वूढ़ो को क्रूरता के साथ सताना आरम्भ किया। महामहान उस समय वृद्धावस्था मे था। वृद्धावस्था के कारण उसका हाड़-पिंजर शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया। पाच कदम चलने की भी शक्ति उसमे नही रह गई थी। इस प्रकार का वृद्ध महामाहन नगरस्थविर की हैसियत से अपने जीवन का अन्तिम कर्तव्य बजाने आगे आया। उसकी आत्मा तिलमिला उठी। वह बिस्तर पर पड़ा न रह सका। किसी प्रकार धीरे-धीरे चलकर वह दुश्मनो के वीच आया और ललकार कर वोला—सावधान! छल-कपट से तुम्हे यह सफलता मिल गई है। नगर मे लूट मचाने से तुम्हे कोई रोक नहीं सकता मगर इस नगर की एक भी स्त्री पर, वालक पर या वृद्ध पर अत्याचार न करने की व्यवस्था तुम्हे करनी होगी। लुटेरा राजा वूढे की वात

सुनी अनसुनी कर देता है । बूढा महामाहन जलते हुए हृदय से फिर-फिर नागरिको की जीवनरक्षा के लिए आवेदन करता है । मगर दगाबाज दुश्मन पर उसका कुछ भी असर नहीं होता । वह सिर्फ इतना स्वीकार करता हैं—तुम मेरी माता के पाठक हो । मैं तुम्हारा अधिकार स्वीकार करता हू, मगर उसकी सीमा यही है कि तुम अपने कुटुम्ब सहित सही-सलामत रहो । विश्वास रखो, तुम्हारा बाल बाका न होगा ।

महामाहन अकेले अपनी सही-सलामती नही चाहता था । वह नगर स्थविर की हैसियत से अपना कर्तव्य अदा करना चाहता था । जब नगर के हजारो स्त्री-पुरुप आर्तनाद कर रहे हो, तब अकेले अपने कुटुम्ब को बचाने की उसकी इच्छा न थी । प्राणो से भी अधिक प्यारा नगरधर्म उसके अन्तर मे क्षोभ पैदा कर रहा था । आक्रमणकारी राजा को उसने खूब समझाया, खूब प्रार्थना की । अन्त मे राजा ने एक छूट दी । कहा—

'महामाहन ! इतनी छूट मैं दे सकता हू कि तुम पानी मे डुबकी मारो और तुम्हारे ऊपर आने से पहले जितने नागरिक जितनी सम्पत्ति लेकर भाग जाना चाहे, उतने भाग सकते हैं ।

राजा की यह कठोर शर्त वृद्ध महामाहन, बिना आगे-पीछे सोचे स्वीकार करनें के लिए उद्यत हो गया ।

महामाहन अपना अशक्त शरीर लिए नदी के पानी

वैशाली नगरी मे महामाहन नामक नगरनायक था। वह राजा और प्रजा दोनो का प्रेम-पात्र था। महामाहन, राजा और प्रजा के पारस्परिक स्नेहबन्धन को सदैव मजबूत रखने का प्रयत्न करता था। उसके नेतृत्व में वैशाली की प्रजा आनन्दपूर्वक रहती थी। उसकी कार्यप्रणाली से सभी को सन्तोष था। वह नगरनायक के उत्तरदायित्व को भली-भाति जानता था। नगरधर्म उसके लिए अपने प्राणो से भी अधिक मूल्यवान् था। वह नगरधर्म की रक्षा मे अपनी और प्रजा की रक्षा मानता और नगरधर्म के विनाश मे अपना और प्रजा का विनाश समझता था। एक बार उसकी कसौटी का दिन आ पहुचा।

महामाहन के नगर पर किसी दुश्मन ने चढ़ाई की। उसने नगर की स्त्रियो को, बालको और बूढो को क्रूरता के साथ सताना आरम्भ किया। महामहान उस समय वृद्धा-वस्था में था। वृद्धावस्था के कारण उसका हाड-पिंजर शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया। पाच कदम चलने की भी शक्ति उसमे नही रह गई थी। इस प्रकार का वृद्ध महामाहन नगरस्थविर की हैसियत से अपने जीवन का अन्तिम कर्तव्य बजाने आगे आया। उसकी आत्मा तिलमिला उठी। वह बिस्तर पर पडा न रह सका। किसी प्रकार धीरे-धीरे चलकर वह दुश्मनो के बीच आया और ललकार कर बोला—सावधान! छल-कपट से तुम्हे यह सफलता मिल गई है। नगर मे लूट मचाने से तुम्हे कोई रोक नहीं सकता मगर इस नगर की एक भी स्त्री पर, बालक पर या वृद्ध पर अत्याचार न करने की व्यवस्था तुम्हे करनी होगी! लुटेरा राजा बूढे की बात

सुनी अनसुनी कर देता है । बूढा महामाहन जलते हुए हृदय से फिर-फिर नागरिको की जीवनरक्षा के लिए आवेदन करता है । मगर दगाबाज दुश्मन पर उसका कुछ भी असर नहीं होता । वह सिर्फ इतना स्वीकार करता हैं—तुम मेरी माता के पाठक हो । मैं तुम्हारा अधिकार स्वीकार करता हू, मगर उसकी सीमा यही है कि तुम अपने कुटुम्ब सहित सही-सलामत रहो । विश्वास रखो, तुम्हारा बाल बाका न होगा ।

महामाहन अकेले अपनी सही-सलामती नही चाहता था । वह नगर स्थविर की हैसियत से अपना कर्तव्य अदा करना चाहता था । जब नगर के हजारो स्त्री-पुरुप आर्तनाद कर रहे हो, तव अकेले अपने कुटुम्ब को बचाने की उसकी इच्छा न थी । प्राणो से भी अधिक प्यारा नगरधर्म उसके अन्तर मे क्षोभ पैदा कर रहा था । आक्रमणकारी राजा को उसने खूब समझाया, खूब प्रार्थना की । अन्त मे राजा ने एक छूट दी । कहा—

'महामाहन ! इतनी छूट मैं दे सकता हू कि तुम पानी मे डुबकी मारो और तुम्हारे ऊपर आने से पहले जितने नागरिक जितनी सम्पत्ति लेकर भाग जाना चाहे, उतने भाग सकते हैं ।

राजा की यह कठोर शर्त वृद्ध महामाहन, बिना आगे-पीछे सोचे स्वीकार करने के लिए उद्यत हो गया ।

महामाहन अपना अशक्त शरीर लिए नदी के पानी

में उतरा। उसने डुवकी मारी और पानी के नीचे तल-भाग पर पहुच कर किसी पेड़ की जड़ से लिपट गया। मिनिट पर मिनिट और फिर घटे पर घटे समाप्त हो गये, मगर महामाहन ऊपर न आया। नगर के स्त्री–पुरुषों को अभय-दान मिला। अन्त मे, खोज करने पर महामाहन का अचेतन शरीर नदी के तल मे मिल सका। वृक्ष की जड़ के साथ उसके हाथ-पैर नागपाश की भाति जकड़े हुए थे। नगर की रक्षा के लिए वृद्ध महामाहन ने अपना शरीर त्याग दिया था!

जैनयुग के नगरधर्म के सम्बन्ध में महामाहन का यह एक ही उदाहरण बस है। महामाहन का जीवन ही नगर-धर्म पर जीवित भाष्य है। जहा इतना महंगा मोल चुका-कर धर्म और ग्रामधर्म का पालन किया जाता है, वहां समृद्धि और स्वतन्त्रता का देवदुर्लभ दृश्य दिखाई पड़े तो इसमें अचरज की वात ही क्या है?

▽

६४–अबला नहीं, सबला

सभी धर्म एक स्वर से सदाचार की महिमा प्रकट करते हैं। सदाचार की वडाई न करने वाला कोई धर्म ही

नहीं है । लोग अपने जीवन-व्यवहार मे सदाचार को महत्त्व देने लगे तो ससार मे सर्वत्र शान्ति और सुख का सचार हो जाए ।

महिलावर्ग सदाचार की वृद्धि मे अच्छा योगदान दे सकता है । महिलावर्ग चाहे तो पुरुषवर्ग को जल्दी से जल्दी सदाचार मे प्रवृत्त कर सकता है । इस विषय मे एक आख्यान आपको सुनाता हू । इससे आप यह भी समझ सकेगे कि पर-स्त्री की ओर लोलुपता की निगाह रखने वाला पुरुष किस प्रकार धिक्कार का पात्र है और पर-पुरुष को न चाहने वाली स्त्री किस प्रकार धन्यवाद की पात्री है । जो आख्यान मैं कह रहा हू उसका वर्णन गुजरात के इतिहास मे मौजूद है और गुजराती लोग बड़े प्रेम से उसे गाते और पढते हैं ।

गरिमामय गुजरात जनपद मे पाटन एक विख्यात नगर अब भी मौजूद है, जहा आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य कुमारपाल राजा हो चुका है । उसी पाटन मे सिद्धराज सोलकी नामक एक राजा था । सिद्धराज इतिहास-प्रसिद्ध राजा है । वह बड़ा ही बली, साहसी और कला-कुशल राजा था । मगर उसमे एक बडा दोष भी था । वह लम्पट था । उसकी लम्पटता ने उसे कलकित कर दिया था ।

कर्मदेवी नामक एक महिला का पति राय खेंगार था । सिद्धराज सोलकी ने कर्मदेवी को अपने चंगुल मे फासने के लिए, उसी के सामने उसके पति का सिर उतार लिया । इसके पश्चात वह क्रूरता की हसी-हसकर बोला — देखो कर्म-

देवी, अपने पति की हत्या के लिए तुम्ही जिम्मेदार हो। तुम मेरी बात मान लेती तो यह नौबत न आती। तुम चाहती तो मेरा कहना मान कर अपने पति की प्राणरक्षा कर सकती थी। मगर 'गई सो गई अब राख रही को' इस कहावत पर ध्यान दो। जो हुआ, उसकी चिन्ता छोड़कर, जो रहा है उसकी रक्षा का विचार करो।

कर्मदेवी! जानती हो, मैं यह चेतावनी क्यो दे रहा हू? अगर तुमने अब भी मुझे स्वीकार न किया, तो मैं तुम्हारे प्राणप्रिय पुत्र को भी इसी प्रकार काट डालू गा। क्या तुम अपने पुत्र की भी रक्षा नही करना चाहती? समझ लो। सोचो, देखो। मगर अधिक विलम्ब मत करो। उत्तर दो।

कर्मदेवी सती स्त्री थी। वह पति की हत्या से विचलित नही हुई और पुत्र की हत्या की धमकी भी उस पर असर न कर सकी। उसने सिहनी की भाति कडक कर उत्तर दिया—'राजा, तू सत्ता के मद मे उन्मत्त हो रहा है। तुझे तनिक भी विवेक नही रहा। मैं अपने पतिदेव की रक्षा नही कर सकी, मगर याद रखना, शीघ्र ही एक दिन आयेगा, जब तू आप अपनी रक्षा करने मे असमर्थ हो जायेगा। तेरी इस नृशसता और लम्पटता की कहानी इतिहास मे काले अक्षरों मे लिखी जायेगी। तेरी यह कहानी तेरी सन्तान और दूसरे लोग घृणा और लज्जा के साथ पढेंगे और अनन्त काल तक तेरे नाम पर थूकते रहेगे। गुजरात के कलक! आज जो चाहे कर ले। मेरे पुत्र का घात करके भी तू मेरा धर्म नही छीन सकता। मेरे प्राण लेने का सामर्थ्य तुझ मे

है, मगर मेरा धर्म लेने का सामर्थ्य इन्द्र मे भी नही है।' अपने पति और पुत्र की रक्षा करने वाली मैं कौन हू ? धर्म ही अखिल ब्रह्माण्ड की रक्षा करता है। उसी धर्म की मैं रक्षा करूंगी। तेरे कोई भी अत्याचार, कोई भी पैशाचिकता मुझे धर्म से च्युत न कर सकेंगे। तेरा प्रयत्न विफल होगा। यह कर्मदेवी किसी साधारण धातु की बनी हुई स्त्री नही है।

अन्त में सिद्धराज ने कर्मदेवी के पुत्र को भी काट डाला, लेकिन वह सती अपने निश्चय से नही डिगी, सो नही डिगी। अपने शत्रुओ के हृदय मे कपकपी पैदा करने वाला प्रतापी सिद्धराज एक अबला के आगे पराजित हो गया। कर्मदेवी दुनिया की दृष्टि मे अबला ही थी, मगर उसमे सतीत्व का जो असाधारण सामर्थ्य था, उसके कारण वह सबला ही नही, वरन् प्रबला भी थी। ऐसी देवियां ससार का सिंगार है।

६५—आदर्श पत्नी

एक बार पाटन के राज्य मे दुष्काल पडा। सिद्धराज ने पाटन की प्रजा की रक्षा के लिए—प्रजा को मजदूरी देने

के अभिप्राय से—सहस्रलिंग नामक तालाब खुदवाना आरम्भ किया ।

पाटन की ही भाति मालवा मे भी उस समय दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था । मालवा के लोग जीवन निर्वाह के लिए देश-विदेश जा रहे थे । मालवा के रहने वाले ओड जाति के एक कुटुम्ब ने पाटन मे विशाल तालाब खुदने का समाचार सुना । यह सुन कर वह कुटुम्ब भी पाटन के सहस्रलिंग तालाब का काम करने गया । उसे काम मिल गया । मिट्टी खोदने और ढोने का काम उस परिवार को सौपा गया ।

ओड लोगो मे टीकम नामक एक ओड था । उसकी पत्नी जसमा अद्वितीय सुन्दरी थी । मगर वह केवल सुन्दरी ही नही, साहस, चतुरता और विचक्षणता की भी मूर्ति थी । उसमें ऐसा साहस था कि उसने गुजरात के राजा सिद्धराज के भी छक्के छुडा दिये । जाति से ओड होने पर भी जसमा ने जिस साहस और वीरता या परिचय दिया, धर्म मे जैसी दृढ़ता दिखलाई, वैसा करना कई-एक राजकुल की स्त्रियो के लिए भी कठिन है ।

तालाव की खुदाई का काम चल रहा था । ओड परिवार के पुरुष मिट्टी खोदते थे और स्त्रियां उसे उठा-उठा कर बाहर फेंकती थी । जसमा भी मिट्टी ढोती थी । उसके एक छोटा बालक था । जसमा ने सोचा—'बालक की रक्षा करना तो मेरा आवश्यक कर्त्तव्य है ही, मगर अपने पति की सहायता करना भी कम आवश्यक नही है । अपना बोझ पति पर डालना उचित नही है । स्त्री के अर्धाङ्गिनी होने की परीक्षा ऐसे ही आडे समय मे होती है ।'

जसमा ने तालाब के किनारे एक बरगद के वृक्ष पर ऐसा मौका देखकर झूला बांध दिया कि वह मिट्टी फेंकने के लिए आते-जाते समय बालक को देखती जाय और झुलाती रहे।

तालाब के काम का निरीक्षण करने के लिए सिद्धराज स्वय आया करता था। एक दिन जसमा पर उसकी दृष्टि पड़ गई। सिद्धराज की आंखो मे जसमा का रूप-लावण्य अटक गया। उसका सौन्दर्य देख कर उसकी वासना भड़क उठी। सिद्धराज मन ही मन विचार करने लगा—अहा! क्या रूप-लावण्य है! रानिया तो इसके पैर के अगूठे की भी बराबरी नहीं कर सकती! यह अनमोल रत्न राजमहल मे ही शोभा दे सकता है। यह साधारण मजदूरिन है, विपदा की मारी है, और मैं हू गुजरात का प्रतापशाली अधिपति—इसे प्राप्त कर लेना तो मेरे बाएं हाथ का खेल है। इसका सुन्दर रूप देखकर जान पड़ता है, मानो कर्मदेवी ही नया अवतार लेकर जन्मी हो। जैसे भी हो, इसे हथियाना होगा। गुदड़ी के इस लाल को राजशय्या का आभूषण बना कर इसका उद्धार करना ही चाहिए।

राजा सिद्धराज धीरे-धीरे जसमा के पास आ पहुचा। एक ओर गुजरात का वीर राजा सिद्धराज और दूसरी ओर ओड जाति की गरीबिनी मजदूरिन है। कामी पुरुष की जघन्य लालसा हृदय मे पैदा होती है और आंखो के रास्ते बाहर फूट पडती है। उसके नेत्र ही उसके दिल का भेद जाहिर कर देते हैं। कौन जाने कामी इस तथ्य को समझते हैं या नही? मगर कामान्ध पुरुष कैसे समझ सकते हैं!

लेकिन आंखो की यह नीरव भाषा पढने में स्त्रियां कभी भूल नही करती। वे चट से ताड़ लेती हैं। फिर जसमा जैसी विचक्षण स्त्री के लिए तो यह समझना कोई बडी बात नही थी। सिद्धराज जैसे ही जसमा की ओर बढा कि जसमा समझ गई। वह जरा दूर हट गई।

सिद्धराज ने जसमा से कहा—'क्या तुम्हारा यह सुकुमार शरीर मिट्टी उठाने के लिए है, जसमा! जिस शरीर की रचना करने मे विधाता ने अपना सारा चातुर्य खर्च कर दिया हो, उसका यह दुरुपयोग देखकर मुझे दया आती है। तुम्हारी सुकुमारता कहती है. तुम मिट्टी ढोने के लिए नहीं जन्मी हो। मै आज से तुम्हारे लिए यह सुविधा किए देता हू कि तुम तालाव की पाल पर बैठी रहा करो और अपने वच्चे को पाला करो। मिट्टी ढोने के लिए और बहुतेरी हैं!'

साधारण स्त्री होती तो वह कदाचित् राजा की इस भूलभुलैया में फस जाती मगर जसमा का दिल और दिमाग और ही तरह का था। वह राजा की इस कृपा का भेद समझ गई तथापि उसने विनम्रतापूर्वक हाथ जोडकर कहा—'आप अन्नदाता हैं। आपने मुझ पर जो दया दिखलाई, उसके लिए आभारी हू, लेकिन मेरा स्वभाव दूसरी ही तरह का है। मैं मेहनत-मजदूरी करके ही अपना पेट भरना अच्छा समझती हू। मेरी दृष्टि मे बिना मेहनत किये खाना बुरा है।'

अक्सर लोग परिश्रम से वचना चाहते हैं। मेहनत न करनी पड़े, मगर भर पेट भोजन और आमोद के साधन मिल जाये तो बस, धरती पर ही उन्हे स्वर्ग दिखाई देने

लगता है । पुण्य का प्रताप ही क्या जो बिना मेहनत किये खाना न मिला ! अपनी कमाई या अन्न खाकर जीने का तत्त्व बहुत कम लोगो ने सीखा है । जसमा ऐसे ही व्यक्तियो मे थी ।

जसमा ने कहा—मैं बिना मेहनत किये, बैठी-बैठी खाना पसन्द नही करती । बैठी-बैठी खाऊ तो अनेक रोग हो जायें और फिर इलाज के लिये वैद्य फीस मागे तो मैं गरीब मजदूरिन कहा से दूं ?'

हिस्टीरिया का रोग, जिसे अशिक्षित स्त्रिया भेड़ा या चेड़ा कहती हैं और जिसके होने पर मीरा दाता आदि स्थानो पर रोगी को ले जाया जाता है, बैठे रहने—परिश्रम न करने से होता है । यह रोग प्रायः धनिक स्त्रियो को ही होता है, गरीब स्त्रियो को नही । गरीब स्त्रिया श्मशान के पास रहने पर भी इस रोग का शिकार नही बनती और अमीर स्त्रियो को बन्द घर मे बैठे भी यह रोग हो जाता है । असली बात यह है कि जो स्त्रिया आलसी होती हैं, परिश्रम नही करती, उन्ही को यह भयानक बीमारी घेरती है । मगर अशिक्षा और कुसस्कारो के कारण लोग वास्तविकता को न समझ कर देवी-देवता की मिन्नत-पूजा करते हैं और डाक्टरो का बिल चुकाते-चुकाते परेशान हो जाते हैं । भोपा लोगो को, जो भैरवजी का प्रसाद डकार जाते हैं, कोई बीमारी नही होती, लेकिन भैरवजी को मानने वाले अगर उन्हे चढावा न चढावें तो अपनी हानि समझते हैं ! यह सब भ्रम की बाते है । वास्तविक बात यह है कि परिश्रम न करने से ही हिस्टीरिया की बीमारी होती है ।

जसमा पढी-लिखी न होने पर भी परिश्रम का मूल्य समझती थी। उसने सिद्धराज से कहा—'मैं काम करके खाती हू। मेरा काम अच्छी तरह चल रहा है। मेरे सम्बन्ध मे आप चिन्ता न करें।'

जसमा का यह उत्तर सुन कर सिद्धराज ने सोचा—'जसमा साधारण स्त्री नही मालूम होती। सौन्दर्य-सम्पत्ति के साथ उसमे बुद्धि की विभूति भी है।'

सिद्धराज प्रकट मे बोला—'जसमा, मै कहता हू तू जङ्गल में भटकने और सुबह से शाम तक मजूरी करने के लिए नहीं है। तू अपने सौन्दर्य को अपनी सुकुमारता को और अपने असली स्वरूप को नही समझती। क्या तेरा यह फूल-सा कोमल शरीर मिट्टी ढोने के लिए है? तू मेरे शहर मे चल। पाटन शहर देखकर ही तू चकित रह जायेगी। पाटन इस पृथ्वी पर स्वर्ग है। शहर मे तुझे अच्छी आराम की जगह दिला दूगा।'

जसमा समझ गई कि इसने पहले जो प्रलोभन दिया था, उसमे न फसती देख अब और बडे प्रलोभन मे फांसना चाहता है। मस्तक से विचार करने वाले के लिए राजा की बात ठीक हो सकती है। मस्तक आराम ढूढता है, लेकिन हृदय कुछ और ही कहता है। आधुनिक शिक्षा ने मस्तिष्क का विकास चाहे किया हो, मगर हृदय के विचारो को नष्ट-प्राय कर दिया है।

राजा की बात सुनकर जसमा बोली—'कहा तो प्रकृति

की स्वच्छन्द लीला का धाम, स्वभाव से सुन्दर, आनन्द-दायक जङ्गल और कहा निगोडा नगर, जहा गन्दगी की सीमा नही ! जिस प्रकार गर्मी के मारे कीडे-मकोड़े निकल कर रेगते हैं, उसी प्रकार नगरो के तंग मार्ग मे मनुष्य फिरते है। जगल मे मगल रहता है। जगल सरीखी स्वच्छ वायु और विस्तृत स्थान शहर मे कहा ? जगल की अपेक्षा नगर अच्छा होता तो वडे-बड़े महात्मा नगर छोडकर जगल मे क्यो रहते ? रामचन्द्रजी वन-वास करने के कारण ही इतने प्रसिद्ध हुए। अगर वह नगर मे ही रहे होते तो उन्हे कौन पूछता ? अपनी नागरिक सभ्यता प्रदान कर हमे असभ्य बनाने का अनुग्रह हम पर न कीजिए। हमारा बिगाड हमे प्रिय है और आपका सुधार आपको मुबारिक हो ! हमारी दृष्टि मे आपके सुधार से हमारा बिगाड़ लाख दर्जे श्रेष्ठ है।

भारतवर्ष की सभ्यता और सस्कृति का निर्माण कहां हुआ है ? जगल में या नगर मे ? जंगल ने भारतवर्ष को जो अनुपम विभूतिया प्रदान की हैं, वे सारे ससार मे भारत का गौरव बढाने वाली हैं। जगलो ने एक से एक उच्चकोटि के महापुरुष विश्व को दिये हैं। जगल ने दर्शनशास्त्र दिया, आध्यात्मवाद दिया, विज्ञान दिया, कला-कौशल दिया और क्या नही दिया ! मनुष्य समाज मे अगर कोई उत्तमता है तो वह जंगल की ही देन है। जंगल की बदौलत ही ज्ञान का सूर्य चमका है। जगल ने अन्धो को प्रकाश दिया है। जगल के साथ नगर की क्या तुलना, जहा बाहर की घोर अस्वच्छता से भी अधिक अस्वच्छता दिलो में भरी रहती है। जहा मुफ्त मे खून चूसने वाले खटमल बसते हैं, जहां

स्वार्थलिप्सा, झूठ, कपट और दगाबाजी का बाजार लगा रहता है, ऐसे नगर, जंगल का मुकाबिला नही कर सकते। कहा जंगल की अनुपम शक्ति और कहां नगर का क्षोभजनक कोलाहल ! कहा जगल का नैसर्गिक सौन्दर्य और कहां नगर की फीकी और प्राणहीन सुन्दरता का दिखावा ! कहा वन्य कुसुमो से सुगन्धित जंगल की वायु और कहा मोरियो और गटरों की बदबू से सनी हुई नगर की घबराहट पैदा करने वाली वायु ! एक जगह नरक का आभास मिलता है और दूसरी जगह स्वर्गीय दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं।

राजा जसमा का उत्तर सुन पशोपेश में पड गया। उसने सोचा—जसमा इस फन्दे मे भी नही फसी। अब उसने एक नया तरीका अख्तियार किया।

राजा ने कहा—'जसमा ! जान पड़ता है, तेरी बुद्धि बिगडी हुई है। गवारो का दिमाग ही उलटा होता है। उन्हे सीधी बात भी उलटी मालूम होती है। गवारो के साथ रहती—रहती तू भी गंवार हो गई है। इसी कारण अधिक मनुष्यों को देखकर तुझे घबराहट होती है। अधिक मनुष्यों मे रहना बड़े भाग्य से मिलता है। शहरो का बास बड़ा उपयोगी होता है। तू मगज की हलकी है। बन्दर क्या जाने अदरख का स्वाद ! तू जगल की रहने वाली, शहरों के मजे क्या समझ सकती है ? जगल जंगली जानवरो के बसने की जगह है। तेरे लायक तो पाटन जैसा शहर ही है। तू चल। शहर मे रहने के लिए तुझे बहुत बढिया स्थान दिला दूंगा।

उत्तर मे जसमा ने कहा—'आप मेरी ढिठाई ही समझ लें कि मैं आपको उत्तर देने का साहस कर रही हू। लेकिन सौ बात की एक बात यह है कि जैसे आपको नगर प्रिय है, वैसे ही मुझे जंगल प्रिय है। शहरो के आदमी जैसे मैले मन के होते हैं, जगल के वैसे नही होते।'

बडे-बडे शहर पाप के किले बन रहे हैं। चोर, जुआरी, भगेडी, गजेडी, शराबी आदि सभी प्रकार के विकारी मनुष्य शहरों मे होते हैं। शहर में बहुत-से लोग विकारो से भरे हुए ही सम्मिलित होते हैं। देहात मे सोने-चांदी की चीज पडी मिल जायेगी तो देहाती आदमी उसके मालिक के पास पहुंचाने की इच्छा करेगा, लेकिन नगर के लोग छोटी से छोटी चीज के लिए भी हत्या जैसा क्रूर कर्म करने पर उतारू हो जाते हैं। ग्रामो की अपेक्षा नगरो मे बीमारिया ज्यादा होती हैं। डाक्टरो की राय से बीमार लोग जगल मे रहने के लिए जाते हैं।

जसमा कहती है—जैसे नगरो के मार्ग सकीर्ण होते हैं, उसी प्रकार वहां के निवासियो के हृदय भी सकीर्ण होते हैं। जैसे शहरो मे बदबू होती है, उसी प्रकार वहा के लोगो के हृदय मे भी वासनाओ और विकारो की बदबू होती है। आप कहते हैं—जगल पशुओ के रहने की जगह है पर नगर मे क्या नर-पशु नही रहते? क्या जगल महात्माओ का प्रिय आवास नही है? खैर, मैं जगल मे रहना ही पसन्द करती हू। मुझे जगल प्रिय है। आपको जगल बुरा लगता है, यह कोई आश्चर्य की बात नही। जहर के कीडे जहर मे रहना ही पसन्द करते हैं।

राजा—'जसमा, तू बडी चतुर है। तेरी बुद्धि तारीफ के लायक है। मगर जान पडता है कि तूने शहर की गलिया ही देखी हैं, मेरा राज-दरबार नही देखा। चल कर देख तो सही, कितना स्वच्छ, भव्य और विशाल है। राजमहल कितने सुन्दर बने हुए हैं। कैसा सुन्दर बगीचा लगा है। तुझे इतना बढिया महल रहने को मिल जाए तो क्या हर्ज है ?

जसमा—'महाराज ! जगल के सामने बगीचा क्या चीज है ? जगल प्राकृतिक रचना है और बगीचो मे बनावट होती है। सूर्य के सामने जैसे तारे फीके दिखाई पडते हैं उसी प्रकार जगल के सामने बगीचे बनावटी मालूम होते हैं। जो जगल मे नही रह सकता हो वह भले ही बगीचे मे जाए, राजमहल मे निवास करे, मुझे बाग या महल की आवश्यकता नही। प्राकृतिक जगल को छोड नकली बगीचे मे रहना कौन पसन्द करेगा ? मैं असली जगल मे ही भली हूं।'

राजा—'इतनी जिद ! मैं गुजरात का राजा हू और तू एक मामूली मजदूरिन है। मेरे सामने इस प्रकार की बाते करते तुझे शर्म मालूम नही होती ? तू मेरा कहना मान ले। जगल मे रह कर अपने सुन्दर शरीर का नाश मत कर। शहर मे चल। वहा तुझे मृदङ्ग के मीठे स्वर और गान की मधुर तान सुनने को मिलेगी।'

जसमा मे जो शक्ति थी, वह आज हिन्दुस्तान मे होती तो हिन्दुस्तान कौन जाने कैसा देश होता ! जहा प्रलोभन

हैं, वहां शक्ति और साहस कहां ? विदेशी वस्तुओ के आकर्षण मे भारतीय जनता बुरी तरह लुभा गई है। आज यह दशा है कि जिसके घर मे विलायती वस्तुए नही, वह घर नही,—जंगल माना जाता है। अगर सामान्य हिन्दुस्तानियो की तरह जसमा लोभ में पड़ जाती तो उसके सतीत्व की अनमोल निधि सुरक्षित रहती ? हर्गिज नही। आज के लोग फैशन की फासी मे बुरी तरह फस गये हैं।

गले मे फांसी पड़ने पर ही मदारी का बन्दर उसकी उगली के इशारे पर नाचता है। जगल का बन्दर मदारी के नाचने पर क्यो नही नाचता ? कारण यही है कि उसके गले मे फासी नही पड़ी है।

आज करोडो रुपये फैशन के निमित्त बर्बाद हो रहे हैं और देश की सम्पत्ति विदेशो मे चली जा रही है। बच्चो को नशा करते देखकर विचार आता है—इन बालको का जीवन किस प्रकार सुधरेगा ? आज की शिक्षा कितनी दूषित है कि वह बालको के जीवन-सुधार की ओर जरा भी लक्ष्य नही देती। मगर यह सब कहे कौन ? अगर कोई कहता भी है तो वह राजद्रोही समझा जाता है।

सिद्धराज से जसमा कहती है—तुम्हारे गायनो और बाजो मे विष भरा है, मेरा मन उस विष की ओर नही जाता। मुझे तो जगल मे रहने वाले मोर, पपीहा और कोयल को मीठी ध्वनि ही भली लगती है। मेरे कान इन्ही की मधुर टेर के अभ्यासी हैं।'

कोयल को चाहे सोने के पीजरे मे रखो और उत्तम से उत्तम भोजन दो, फिर भी वह आनन्दविभोर होकर नही बोलेगी उसकी मस्त टेर आम की मञ्जरी पर ही सुनाई देगी। वह परतन्त्र होकर नही बोलेगी, स्वतन्त्र होकर ही कूकेगी।

जसमा कहती है—कहां तो मोर, पपीहा और कोयल का निसर्ग-सुन्दर मधुर गान और कहा निर्जीव बाजो की आवाज! मोर, पपीहा और कोयल की अमृतमयी ध्वनि मे जो आकर्षण है, जो मनोहरता है, मिठास है, वह नकली गीतो मे कहा है? मुझे तो इन पक्षियो की बोली ही प्यारी लगती है महाराज, मैं जगली और गवारिन जो ठहरी!'

मोर, पपीहा और कोयल की टेर से आज तक किसी मे कोई बुरी बात पैदा हुई है?

'नही!'

और वेश्या के नाच से कोई सुधरा है?

'नही!'

जसमा का निर्भीक और निश्चित उत्तर सुन कर भी सिद्धराज ने हार न मानी। वह कहने लगा—पगली जसमा! मेरी बात पर भली-भांति विचार कर देख। क्यो इस जगल मे अपना सुन्दर जीवन वृथा बर्बाद कर रही है! तुझे अत्यन्त सुन्दर महल रहने को मिलेगा। बहुत-सी दासिया तेरा हुक्म बजाने को तैयार रहेगी। मेरे पास हाथी, घोडे,

रथ आदि सभी कुछ हैं। वह सब तेरे ही होगे। तेरा अच्छा स्वभाव देखकर ही तुझ से आग्रह करता हू। ऐसे स्वभाव वालों से प्रीति करना राजाओं का धर्म है।

राजा की नीयत को जसमा पहले ही ताड़ गई थी, अब उसके वाक्यो से वह एकदम स्पष्ट हो गई। जसमा बोली—'महाराज ! मुझे महलो की आवश्यकता नही, मुझे झोंपडी ही बस है ! मैंने महलो पर चढना सीखा ही नही। मैं स्वय अपने पति की दासी हू। मुझे और दासियो का क्या करना है ? दासी होने के साथ मैं अपने पति की स्वामिनी भी हू। ऐसी दशा मे दासियो की स्वामिनी बनकर क्या करूगी ?

सिद्धराज—ओडन, चलो। क्यों रूखी-सूखी रोटियों पर गुजर करती हो ? मैं तुझे मेवा, मिष्टान्न और षट्रस भोजन दूगा। तू जानती है, मैं गुजरात का स्वामी हू। असीम सम्पत्ति और ऐश्वर्य मेरे यहा बिखरा पडा है। सोच ले। ऐसा अवसर फिर न मिलेगा। अभी राजमहल का द्वार तेरे लिए खुला है, जिसके लिये अप्सराए भी तरसती होगी।'

जसमा—आप बड़े दयालु है। इसी कारण मुझे पकवान् और उत्तम भोजन खिलाना चाहते हैं। मगर मुझ अभागिनी के भाग्य में यह सब कहा है ? मेरे पेट ने तो मक्की की घाट खा जानी है। वह पकवानो को पचा नही सकता। मुझे राब और दलिया भला। पकवान् और मेवा-मिष्टान्न आपको मुबारिक हो। आपके पास हाथी है, घोड़े हैं, मगर मैं उन पर सवारी करने में डरती हूं। कही गिर

कर मर गई तो ? मेरे लिए तो भूरी भैंस ही भली है, जो दूध दही देती है और हम सब आनन्द के साथ खाते है ।'

ससार का काम घोड़े से चलता है या भैंस से ?

भैंस से ।'

लेकिन असल बात को लोग भूल जाते हैं । इसी कारण लोग घोड़े को पसन्द करते है ।

सिद्धराज—क्या तुम ऐमे फटे-पुराने और मोटे कपडे पहनने के लिए जन्मी हो ? मैं ऐसे मुलायम और बारीक वस्त्र दूगा कि तुम्हारा एक रोम भी छिपा न रहेगा । तुम्हें हीरे और मोतियों के सुन्दर गहने पहनने को मिलेंगे ।

जो स्त्रियां शील को ही नारी का सर्वोत्तम आभूषण समझती हैं, उनके मन मे बढ़िया वस्त्र और हीरा-मोती के आभूषणों की क्या कीमत हो सकती है ? उन्हे इन्द्राणी बना देने का प्रलोभन भी नही गिरा सकता । शील का सिंगार सजने वाली के लिए वह तुच्छ—अति तुच्छ है । सच्ची शील-वती अपने शील का मूल्य देकर कदापि उन्हे लेना नही चाहेगी ।

और बारीक कपड़े तो निर्लज्जता का साक्षात् प्रदर्शन हैं । कुलीन स्त्रियों को वह शोभा नही देते । खेद है कि आजकल बारीक वस्त्रो का चलन बढ गया है । यह प्रथा क्या आप अच्छी समझते हे ?

'नही !'

मगर आज तो यह वड़प्पन का चिन्ह बन गया है। जो जितने बड़े घर की स्त्री, उसके उतने ही बारीक वस्त्र! बड़प्पन मानो निर्लज्जता में ही है? क्या बारीक वस्त्र लाज ढंक सकते हैं? इन बारीक वस्त्रो की बदौलत भारत की जो दुर्दशा हुई है, उसका बयान नही किया जा सकता।

गहनों और वस्त्रो का लालच स्त्रियो के लिए साधारण नही है। लेकिन जसमा साधारण स्त्री भी नही है। वह कहती है—'मुझे बारीक कपडे नही चाहिए। मेरे शरीर पर तो खादी के कपडे ही ठहर सकते है। बारीक कपड़े पहन कर मैं मजदूरी कैसे कर सकती हू?'

मोटे कपड़े मजदूरी करना सिखलाते हैं और महीन कपड़े मजदूरी करने से मना करते हैं। महीन कपडा पहनने वाली बाई अपना बच्चा लेनें मे भी संकोच करती है, इस डर से कि कही कपडो मे धूल न लग जाय। इस प्रकार बारीक वस्त्रों ने सन्तान-प्रेम भी छुडा दिया है।

जसमा कहती है—मुझे न बारीक वस्त्रो की ही आवश्यकता है, न हीरो और मोतियो की ही। हीरा मोती पहनने से तो जान का खतरा बढ़ जाता है। मेरा पति आभूषणो के बिना ही मुझे प्रेम करता है। फिर और सिंगार की मुझे क्या आवश्यकता है? मैं अपने पति को ही प्रसन्न रखना चाहती हू। मुझे औरो की प्रसन्नता से कोई मतलब नही।

राजा सभी प्रकार के प्रलोभन देकर भी अपने उद्देश्य मे सफल न हो सका। उसने अनेक फन्दे फैलाये, फिर भी शिकार न फसा। तव कुछ-कुछ निराश भाव से राजा ने कहा—'तू जिस पति को प्रसन्न करना चाहती है, उसे दिखा तो सही। कौन है तेरा पति ? देखू वह कैसा है ?'

बडे-बड़े महलो मे और बड़ी-बड़ी हवेलियो मे रहने वालो के लिए दाम्पत्य प्रेम का क्या मूल्य ? दाम्पत्य-प्रेम की कीमत जगल वाले ही जानते हैं। सीता और राम ने अपने दाम्पत्य-प्रेम की वृद्धि जगल मे ही की थी। विषय-भोग के कीड़े दाम्पत्य-प्रेम की पवित्रता को क्या समझेगे !

जसमा ने कहा—'वह जो कमर कस कर काम कर रहा है, जिसके हाथ मे कुदाली है, जो अपने साथियो को साहस बधाता हुआ मिट्टी खोद रहा है और जो मिट्टी खोदने मे सबसे आगे हैं, जिसकी कुदाली की चोट से पृथ्वी कापती है और जिसके सिर पर फूल गुथे हैं, वही मेरा पति है। मैने उसके सिर पर फूल गूथ दिये हैं, जिससे थकावट के समय उसे विश्राम मिले।

जसमा के पति का नाम टीकम था। टीकम की ओर देखकर सिद्धराज ईर्ष्या की आग मे जल-भुन गया। उसने जसमा से कहा—बस, यही तेरा पति हैं ! कौवे के गले में रत्नो की माला ! उस मिट्टी खोदने वाले मजूर के लिए ही तू मेरा अपमान कर रही है ? हसनी कौवे के पास नही सोहती, जसमा ! हसनी की शोभा हस के साथ रहने मे ही

है । तू मेरे महल मे चल । तेरी शोभा महलो में बढ़ेगी । तेरे पति को तुझ पर विश्वास भी नही है । देख न, तेरी ही तरफ वह टेढी-टेढी नजरो से देख रहा है । उसकी नजर से साफ मालूम होता है कि उसका तेरे ऊपर न प्रेम है, न विश्वास ही है । ऐसा आदमी तेरी कद्र क्या जाने ? ऐसे अविश्वासी पति के साथ रहना घोर अपमान है । तू चिन्ता मत कर । तुझे रानी बना दूंगा ।

सचमुच टीकम इसी ओर देख रहा था । वह सोचता था—'राजा मेरी स्त्री से क्या बात कर रहा है ?'

राजा ने साम और दाम से काम लेने के बाद भेद-नीति से काम निकालने की चेष्टा की । मगर जसमा को फुसलाना बालू से तेल निकालना था ।

जसमा कहने लगी—'राजा साहब, कहावत मशहूर है—साच को आंच नही ।' सत्य सदैव निर्भय होता है । मेरे पति को मुझ पर पूर्ण विश्वास है । मैं अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों को भाई के समान समझती हू । पारस्परिक अविश्वास की भावना तो राजघरानो की ही सम्पत्ति है । हम दरिद्रो को यह सम्पत्ति कहां नसीब होती है ? अगर मुझे अपने पति पर अविश्वास हो तो उसे मुझ पर भी अविश्वास हो सकता है । मगर ऐसा नही है । मेरा पति आपको देख रहा है, क्योकि आपकी दृष्टि बिगडी हुई है ।

राजा ने देखा भेदनीति भी यहा कारगर नही हो सकती । तब सिद्धराज ने कड़क कर कहा—'जसमा, होश

सम्भाल । तू जानती नही मैं, कौन हू ? बड़े-बड़े शूरवीर, राजा और महारथी भी मेरे चरणो में सिर झुकाते है और मेरी भौह चढते ही काप उठते हैं । उन्हें भी मेरे हुक्म के खिलाफ जबान खोलने का साहस नही हो सकता । फिर तू किस खेत की मूली है ? तेरे पास क्या बल है, जिसके बूते पर तू मेरा हुक्म टाल रही ? आखिर तो मजदूरी करने वाले की स्त्री ठहरी न ! तू किस मुंह से मेरे सामने बोलती है ? एक बार फिर चेतावनी देता हूं । विचार कर देख । व्यर्थ समय बर्बाद न कर । क्या तेरे कहने से राजा अपना हठ छोड़ सकता है ?'

भेदनीति ने काम न दिया तो राजा ने दण्डनीति ग्रहण की । साधारण स्त्री राजा की इस धमकी से दहल जाती । उसका हृदय कांप उठता । वह विवश हो जाती या आंसू बहाने लगती । मगर धन्य जसमा ! वह वीरांगना तनिक भी विचलित न हुई । उसने उसी प्रकार कडक कर उत्तर दिया—'बडे-बड़े शूरमाओ को अपने चरणों मे झुकाने वाला वीर एक मजदूरिन के तलवे चाटने को तैयार हो जाय, यह आश्चर्य की बात नही तो क्या है ? महाराज, आपकी बहादुरी का इससे बढ कर और क्या सबूत हो सकता है ? हां, मैं जानती हू कि आप गुजरात के स्वामी हैं और मैं असहाय स्त्री हू । मैं यह भी जानती हू कि रावण लका का प्रचण्ड प्रतापी राजा था और उसके पजे मे पड़ी सीता असहाय थी । मगर सीता ने अपना धर्म नही छोड़ा । आप पूछते हैं मेरे पास क्या बल है ? मेरे पास सतीत्व की शक्ति है, जो तीन लोक मे अजेय है और जिस शक्ति की बदौलत सीता आज भी अमर है ।

आपने बड़े-बड़े राजाओ को वश मे किया, यह ठीक है। किन्तु आपका बल काया और माया पर ही तो है। आत्मा इन दोनो से जुदा है। मेरे गुरु ने यह बात मुझे पहले से ही बता रखी है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।—गीता, २,२२ ।

आत्मा उसी प्रकार शरीर बदलता है, जिस प्रकार पोशाक बदली जाती हैं। शरीर का नाश है, लेकिन आत्मा का नाश नही है। मेरे लिए जीवन पर्यन्त वही पति है। वह अच्छा है-तो मेरा है और बदसूरत है—मजदूर है तो भी मेरा ही है। प्रेम से उसके साथ विवाह किया है, सो प्रेम में प्राण भी दे सकती हूं। ससार की कोई भी शक्ति उसे मेरे हृदय से अलग नही कर सकती।

राजाजी, आपको अपने उत्तरदायित्व का विचार करना चाहिये। आप प्रजा के पालक हैं, प्रजा के पिता हैं, प्रजा के आदर्श हैं। प्रजा, राजा का अनुकरण करती है। 'यथा राजा तथा प्रजा।' सदाचार की सीमा की रक्षा करना आपका उतना ही आवश्यक कर्त्तव्य है, जितना राज्य की सीमा की रक्षा करना। बल्कि सदाचार की रक्षा, राज्य की रक्षा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। आप सदाचार को तिला-जलि दे देंगे तो राज्य भर मे दुराचार का दौरदौरा हो

अपवित्र स्पर्श से मेरा शरीर अपवित्र हो जाने की सभावना है तो उसने अपने पेट में कटार भौकते हुए कहा—'राजकुल-कलक ! कायर ! ले, मेरा बलिदान ले। मेरे हाड-मांस को अपने महल मे सजा लेना। यह तेरी लम्पटता की, तेरी कामुकता की और तेरी नीचता की गौरव-गाथा सुनाता रहेगा।'

पतिव्रता जसमा ने अपने प्राण क्या दिये, जगत् को एक उज्ज्वल आदर्श प्रदान किया। उसने अपने सतीत्व की रक्षा ही नही की, नारी के गौरव की और सम्मान की रक्षा की। वह मर कर चिर-अमर हो गई। जसमा का जश इतिहास के पृष्ठो पर सुनहरे अक्षरों में चमक रहा है। आज भी लोग इससे प्रेरणा पाते है।

कहते हैं—सती जसमा ने मरते-मरते सिद्धराज को शाप दिया था—'राजा, तेरा तालाब खाली रहेगा और तेरा वश नही चलेगा।'

यह सब देख और सुनकर राजा का दिल दहल गया। उसे अपनी करतूत पर पछतावा होने लगा। तालाब खाली रहा।

जसमा ने कौन-सा शास्त्र पढा था और किस गुरु ने उसे शिक्षा दी थी, यह नही कहा जा सकता तथापि इसमें सन्देह नही कि वह सच्ची पतिव्रता थी और पतिव्रत धर्म का मर्म उसने भली-भाति समझा था।

□

९९—मानवदया

प्रायः लोग मनुष्य के प्रति दया दिखलाते भी है तो पैसा-आधा पैसा देकर अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते हैं। वे यह नही सोचते कि मनुष्य के प्रति हमारी गहरी जिम्मेदारी है। वास्तव मे मनुष्य की दया किस प्रकार की जा सकती है और मनुष्य की दया करने की हमारे ऊपर कितनी जिम्मेदारी है, यह बात स्पष्ट करने के लिए एक सुना हुआ उदाहरण इस प्रकार है:—

कहते हैं, अमेरिका मे दो मित्र गिरजाघर जा रहे थे। इस गिरजाघर के बाहर कुछ लूले-लगडे भिखारी पड़े थे। इन लगड़ो को देखकर एक मित्र को दया आई। दया तो दोनो के हृदय मे उत्पन्न हुई थी मगर एक ने अपनी दया सफल करने के लिए जेब से कुछ पैसे निकालकर भिखारी को दे दिये। यह देखकर दूसरे ने कहा—तुमने इस लगड़े भिखारी पर दया तो की किन्तु यह तो भिखारी का भिखारी ही रहा। हृदय मे दया उत्पन्न होने पर भी और पैसा देने पर भी भिखारी का भिखारीपन तो मिटा नही !

सुनते हैं, बम्बई, कलकत्ता आदि बडे शहरो मे लोग प्रायः अन्धो को पैसे देते हैं, आख वालो को बहुत कम देते हैं। अतएव अनेक भिखारी अपने बालको की आखे इसलिए फोड़ डालते हैं कि वे अन्धे हो जाएगे तो उन्हे ज्यादा पैसे मिलेंगे।

जायेगा । रक्षक ही भक्षक बन जाएंगे तो पृथ्वी कैसे स्थिर रहेगी ? अतएव आप अपने पद का विचार कीजिए । न्याय-नीति का त्याग न कीजिए । आप मुझे होश मे आने को कहते हैं, लेकिन होश मे आने की आवश्यकता आपको ही है । मैं होश में ही हू । अब क्या होश में आऊंगी ।

यही मेरी अन्तिम प्रार्थना है । मैंने अब तक आपसे बातचीत की है लेकिन अब मैं समझ गई कि आप मेरे पति के शत्रु हैं । मै अपने पति के शत्रु का मुंह नही देखना चाहती । इसलिए अब मैं आपके सामने घूंघट निकालती हू । आप से कोई बात नही करूंगी ।

यह कहकर जसमा ने राजा के सामनें घूंघट निकाल लिया । आजकल घूंघट की प्रथा निराली हो गई है । स्त्रियां अनजान और गुण्डो-लुच्चो के आगे तो घूंघट डालती नही, किन्तु देवर, जेठ आदि परिचित लोगो के सामने, जो उन्हे अपनी वहिन-वेटी समझते हैं, लम्बा घूंघट काढती है । पहले दुष्ट और दुराचारियो के सामने घूघट निकाला जाता था, जैसे जसमा ने सिद्धराज को दुराचारी समझ कर उसके सामने घूंघट निकाल लिया ।

सूरदास की कारी कमरिया, चढ़े न दूजो रंग ।

यही कहावत यहां चरितार्थ हुई । जसमा की तेजस्वी भाषा मे कही हुई न्याय और धर्म से सगत वातों का, काम से कलुषित हृदय वाले सिद्धराज पर तनिक भी प्रभाव न पडा । वह जसमा की ओर से सर्वथा निराश हो गया ।

निराशा की अवस्था में मनुष्य प्राय. भयकर निश्चय कर बैठता है। सिद्धराज को अपना अपमान काटे की तरह चुभ रहा था। वह जसमा का लोभ सवरण नही कर सका। उसने निश्चय किया—'जसमा को जबर्दस्ती पकड़ मगवाना चाहिए।'

जसमा अपना भविष्य साफ-साफ ताड चुकी थी। उसे अपने अपहरण की आशका हो चुकी थी। ज्यो ही राजा नगर की ओर रवाना हुआ कि जसमा ने अपने पति को बुलाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसने यहा न ठहर कर तत्काल चल देने के लिए भी आग्रह किया।

टीकम अपने साथी ओड लोगों के साथ पाटन से रवाना हुआ। राजा को पता चला कि जसमा और उसके साथी ओड भाग रहे हैं। वह घोड़े पर सवार होकर जसमा को पकड़ने दौड़ा।

जसमा और उसके साथी कुछ ही दूर पहुचे थे कि राजा ने उन्हे पकड लिया। वह बोला—'जसमा को मुझे सौंप दो। मैं उसे चाहता हू।'

ओड निश्शस्त्र थे, मगर कायर नही थे। भला कौन जीवित पुरुष आंखो के सामने स्त्री का अपमान होते देख सकता है? ओड लोगो ने राजा का सामना किया। राजा ने बहुत से ओडो के सिर काट डाले। जसमा के पति टीकम ने भी अपनी पत्नी की रक्षा करने मे प्राण होम दिये। अन्त में जब जसमा ने देखा कि अब मैं असहाय हू और राजा के

अपवित्र स्पर्श से मेरा शरीर अपवित्र हो जाने की सभावना है तो उसने अपने पेट मे कटार भोंकते हुए कहा—'राजकुल-कलक ! कायर ! ले, मेरा बलिदान ले। मेरे हाड-मास को अपने महल मे सजा लेना। यह तेरी लम्पटता की, तेरी कामुकता की और तेरी नीचता की गौरव-गाथा सुनाता रहेगा।'

पतिव्रता जसमा ने अपने प्राण क्या दिये, जगत् को एक उज्ज्वल आदर्श प्रदान किया। उसने अपने सतीत्व की रक्षा ही नही की, नारी के गौरव की और सम्मान की रक्षा की। वह मर कर चिर-अमर हो गई। जसमा का जश इतिहास के पृष्ठो पर सुनहरे अक्षरों में चमक रहा है। आज भी लोग इससे प्रेरणा पाते हैं।

कहते है—सती जसमा ने मरते-मरते सिद्धराज को शाप दिया था—'राजा, तेरा तालाब खाली रहेगा और तेरा वश नही चलेगा।'

यह सब देख और सुनकर राजा का दिल दहल गया। उसे अपनी करतूत पर पछतावा होने लगा। तालाब खाली रहा।

जसमा ने कौन-सा शास्त्र पढा था और किस गुरु ने उसे शिक्षा दी थी, यह नही कहा जा सकता तथापि इसमें सन्देह नही कि वह सच्ची पतिव्रता थी और पतिव्रत धर्म का मर्म उसने भली-भाति समझा था।

□

६६—मानवदया

प्राय: लोग मनुष्य के प्रति दया दिखलाते भी है तो पैसा-आधा पैसा देकर अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते हैं। वे यह नही सोचते कि मनुष्य के प्रति हमारी गहरी जिम्मेदारी है। वास्तव मे मनुष्य की दया किस प्रकार की जा सकती है और मनुष्य की दया करने की हमारे ऊपर कितनी जिम्मेदारी है, यह बात स्पष्ट करने के लिए एक सुना हुआ उदाहरण इस प्रकार है:—

कहते हैं, अमेरिका मे दो मित्र गिरजाघर जा रहे थे। इस गिरजाघर के बाहर कुछ लूले-लगड़े भिखारी पड़े थे। इन लगड़ो को देखकर एक मित्र को दया आई। दया तो दोनो के हृदय मे उत्पन्न हुई थी मगर एक ने अपनी दया सफल करने के लिए जेब से कुछ पैसे निकालकर भिखारी को दे दिये। यह देखकर दूसरे ने कहा—तुमने इस लगड़े भिखारी पर दया तो की किन्तु यह तो भिखारी का भिखारी ही रहा। हृदय मे दया उत्पन्न होने पर भी और पैसा देने पर भी भिखारी का भिखारीपन तो मिटा नही !

सुनते हैं, बम्बई, कलकत्ता आदि बडे शहरो मे लोग प्राय: अन्धो को पैसे देते हैं, आंख वालो को बहुत कम देते हैं। अतएव अनेक भिखारी अपने बालको की आखे इसलिए फोड़ डालते हैं कि वे अन्धे हो जाएगे तो उन्हे ज्यादा पैसे मिलेंगे।

दूसरे मित्र ने पैसे देने वाले से कहा—अगर हमारे अन्त करण में उस भिखारी के प्रति सचमुच अनुकम्पा हो तो हमे सिर्फ कुछ पैसे देकर ही छुटकारा नही पा लेना चाहिए, वरन् उसका भिखारीपन दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। भिखारी पर दया करके तुमने पैसे का महत्त्व त्याग दिया है, सो तो ठीक है मगर तुमने सच्ची दया का परिचय नही दिया।

पहले मित्र को इस प्रकार कहकर दूसरा मित्र उस लगडे भिखारी को अपने घर ले गया और बनावटी पैर लगाकर उमे इस योग्य बना दिया कि वह चलने-फिरने मे समर्थ हो गया। इसके बाद उसे कोई काम सिखाकर ऐसा बना दिया कि फिर उसे भीख न मांगनी पड़े।

इस घटना पर विचार करो। सोचो कि दोनो मे से किसकी अनुकम्पा अच्छी और ऊची है ? इस प्रश्न का यही निश्चित उत्तर मिलेगा कि जिसने राग-द्वेष को जीतने का विशेष पुरुषार्थ किया है, उसी की दया उच्च है। शास्त्र की दृष्टि से एकेन्द्रिय या पचेन्द्रिय प्राणी मे जीवत्व की अपेक्षा से कोई भेद नही है। परन्तु जितनी दया बड़े प्राणियो की, की जाएगी उतना ही अधिक राग-द्वेष जीतना पड़ेगा।

卐

६७-कर्म-रोग

कर्म-विपाक के महान् कष्ट से बचने के लिए ही भगवान् ने मान को जीतने का उपदेश दिया है क्योकि मान को जीतने से जीवन मे नम्रता आएगी और नम्रता से कर्मो की निर्जरा होगी । इस शास्त्रीय विषय को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण लीजिए:—

एक रोगी को भयकर रोग हुआ । उसने वैद्य से शरीर की परीक्षा करवाई । वैद्य ने रोगी से कहा—अगर तुम्हें 'इन्जेक्शन' लगा दिया जाए तो तुम रोग की भयकरता से बच सकते हो । तुम एक-दो इन्जेक्शन लगवा लो । यह सुनकर रोगी ने वैद्य से कहा—'मेरा शरीर बहुत कोमल है, इन्जेक्शन कैसे ले सकता हू ? कोई पीने की दवा दे दो ।' वैद्य बोला—जैसी तुम्हारी मर्जी ! मैंने तो तुम्हे रोग से मुक्त होने का उपाय बताया है ।' रोगी ने इन्जेक्शन नही लिया और परिणाम यह हुआ कि उसका रोग भयकर हो गया । आखिरकार रोग से परेशान होकर वह फिर वैद्य के पास पहुचा और बोला—'इन्जेक्शन देना हो तो भले दे दीजिए मगर इस भयकर रोग को शान्त कीजिए ।'

वैद्य ने कहा—अब यह रोग इन्जेक्शन से भी नहीं मिट सकता । रोग बहुत बढ़ गया है । अब तो आपरेशन करना पड़ेगा । पहले इन्जेक्शन लगवा लिया होता तो मिट सकता था ।

आपरेशन की बात सुनकर रोगी घबराया । वह वैद्य से कहने लगा—आपरेशन कराने के लिए मेरा जी नही चाहता।

वैद्य ने कहा—जैसी तुम्हारी मर्जी !

रोगी का रोग दिन-दिन बढता गया। वह बेहद परेशान हो गया । तब वह फिर वैद्य के पास पहुचा और बोला—वैद्यराज ! इन्जेक्शन या आपरेशन—जो कुछ करना हो करो, मगर मुझे इस महा मुसीबत से उबारो ।

वैद्य ने फिर शरीर की जाच की। उसे मालूम हुआ—रोगी का सारा शरीर सड गया है । अब सारे शरीर को चीरना पड़ेगा । उसने रोगी को अपना विचार बतलाया—अग की शस्त्रक्रिया करानी पड़ेगी । यह सुनकर रोगी बहुत घबराया और बोला—मैं अपने प्रिय शरीर पर शस्त्रक्रिया कैसे करा सकता हू ।

वैद्य ने अन्तिम चेतावनी देते हुए कहा—अभी तो अग चीरने से ही शरीर ठीक हो सकता है लेकिन बाद मे अग चीरने पर भी ठीक नही होगा । यह रोग ही ऐसा भयकर है कि फिर वह प्राण लिए बिना शान्त नही होगा ।

अब अगर रोगी को अपने प्राणों की रक्षा करनी है तो उसे अपने अग पर शस्त्रक्रिया करानी ही होगी । पहले इन्जेक्शन लेने मात्र से शरीर ठीक हो सकता था, पर तब उसने वैद्य का कहना नहीं माना। अब शस्त्रक्रिया कराने का समय आ गया । अगर अब शस्त्रक्रिया नही कराता है तो प्राण जाने का वक्त आएगा ।

इसी प्रकार इस समय कर्मरूपी जो रोग लगा है, वह धर्मक्रिया रूपी दवा का नियमित सेवन करने से शान्त हो सकता है । अगर धर्मक्रिया रूपी दवा सेवन न की गई या सेवन करने मे देरी की गई तो कर्म-रोग बढ जाएगा और परिणाम-स्वरूप इतना दु:ख सहन करना पडेगा कि उसका कहना भी कठिन है ! अतएव कर्म–रोग को उपशान्त करने के विषय मे गम्भीर विचार करो । ज्ञानी जनो ने तपश्चर्या आदि आध्यात्मिक औषधो द्वारा उसे शान्त करने का जो अमोघ उपाय बतलाया है, उसे भली-भाति काम मे लाओगे तो तुम्हारा कर्म-रोग शान्त हो जायेगा और अधिक दुःख भी सहन नहीं करना पड़ेगा ।

कुछ लोग कहते हैं कि धर्मक्रिया करने से कष्ट सहन करना पडता है परन्तु ज्ञानियो का कथन है कि कष्ट धर्म करने से नहीं, वरन् पूर्व-कर्म से होता है । अगर धर्माराधन करते समय होने वाले कष्ट सहन कर लिए जाए तो कर्मो–दय के कारण होने वाले कष्टो से सहज ही छुटकारा मिल सकता है । ऐसी दशा मे अगर थोडा कष्ट सहकर भी भविष्य मे आने वाले भयानक दु:खो से बचाव हो सके तो क्या बुराई है ?

६८—अभिमान

पुरुष ! मान-अभिमान करना बहुत बुरा है । अभि–मानी व्यक्ति को अपमान का दुःख भोगना पड़ता है और

अभिमान का त्याग करने वाले को बदले मे सम्मान प्राप्त होता है। निरभिमान व्यक्ति को इन्द्र भी नमस्कार करता है। यह बात सिद्ध करने के लिए शास्त्रकार ने श्री उत्तराध्ययन सूत्र मे एक ऐतिहासिक उदाहरण उद्धृत किया है—

दसण्णरज्ज मुदिय चइत्ताणं मुणी चरे।
दसण्णभद्दो निक्खतो सक्ख सक्केण चोइओ॥

—उत्तरा० १८, ४४

अर्थात्—शक्रेन्द्र की प्रेरणा होने से प्रसन्न और पर्याप्त दशार्णराज्य को त्याग कर दशार्णभद्र ने त्यागमार्ग अपनाया।

दशार्णभद्र राजा ने अभिमान त्याग कर किस प्रकार त्यागमार्ग अपनाया, इस विषय मे निम्नलिखित कथा प्रचलित है—

आजकल जिसे मन्दसौर कहते हैं, उसका प्राचीन नाम दशार्णपुर था। दशार्णपुर का राजा दशार्णभद्र था। राजा धर्मनिष्ठ और भावनाशील था। उसने विचार किया—मुझे जो ऋद्धि-सिद्धि मिली है उसका उपयोग भगवान की ऐसी सेवा मे करना चाहिए जैसी सेवा आज तक किसी भी राजा ने न की हो। अपनी इस शुभ भावना को कार्यरूप मे परिणत करने का भी राजा को संयोग मिल गया। राजा ने सुना—भगवान् महावीर इस ओर पदार्पण कर रहे हैं। यह समाचार पाते ही राजा की प्रसन्नता का पार न रहा। उसने बड़े उत्साह के साथ प्रजाजनो को आज्ञा दी कि भगवान् को वन्दना करने के लिए जाते समय ऐसी तैयारी की जाय

जैसी आज तक किसी ने न की हो। जब राजा में इतना उत्साह हो तो प्रजा मे और उसके नौकर-चाकर वर्ग मे भी उत्साह हो आना स्वाभाविक है। भगवान् को वन्दना करने के लिए राजा दशार्णभद्र ने अपूर्व तैयारी की और प्रस्थान किया। राजा को अपनी ऋद्धि देखकर अभिमान हुआ कि मेरे समान ऐसी तैयारी करके भगवान् की वन्दना के लिये और कौन गया होगा? लोगो को नवीन कपडा या जूता मिल जाने पर भी जब अभिमान हो जाता है तो राजा को अपनी ऋद्धि देखकर अगर अभिमान उत्पन्न हुआ तो आश्चर्य ही क्या है? मगर लोगों को समझना चाहिए कि ऐसे राजा का भी अभिमान न रहा तो दूसरो की तो बात ही क्या है?

राजा दशार्णभद्र सबको दान-मान सम्मान आदि से सतुष्ट करता हुआ अपनी ऋद्धि सम्पदा के साथ भगवान् की वन्दना के लिए निकला। दूसरी तरफ शक्रेन्द्र भी भगवान् की वन्दना के लिए आये थे। इन्द्र ने राजा को ऋद्धि के साथ वन्दना करने आते देखा पर उसने राजा के हृदय के अभिमान को भी जान लिया। ज्ञानी इन्द्र ने विचार किया-राजा का अभिमान दूर कर देना चाहिए और उसे सत्य-मार्ग दिखाना चाहिए। इस प्रकार विचार कर इन्द्र ने अपनी वैक्रिय लब्धि से एक ऐसा हाथी बनाकर उतारा कि उसके सामने राजा की सारी ऋद्धि फीकी पड़ गई।

राजा अभिमान के वश होकर विचारने लगा—इन्द्र ने मेरी ऋद्धि की तुच्छता दिखलाई है और इस प्रकार से मुझे पराजित किया है। ऐसी स्थिति मे मुझे क्या करना चाहिए? मैं इन्द्र की होड़ नही कर सकता, क्योकि इन्द्र

अपनी वैक्रिय लब्धि से इच्छानुसार ऋद्धि बना सकता है। तो फिर इन्द्र को जीतने के लिए क्या उपाय करना चाहिए? यह ठीक है कि मैंने अभिमान किया, जो उचित नही था, मगर अब पकडी हुई टेक किस प्रकार सिद्ध की जाय ? इन्द्र को जीतने का मेरे पास एक ही उपाय है—त्याग। त्याग के अतिरिक्त और किसी भी उपाय से वह पराजित नही हो सकता।

इस प्रकार विचार कर दशार्णभद्र राजा ने सर्वविरति संयम स्वीकार किया। अब बेचारा इन्द्र क्या करे ? उसने सोचा—प्रथम तो मैं दीक्षा ही नही ले सकता—ऐसा त्याग ही नही कर सकता। कदाचित् दीक्षा ले लूं तो मुझे इन मुनि से लघु शिष्य ही बनना पड़ेगा। अतएव श्रेयस्कर यही है कि इन मुनि से क्षमायाचना करके पवित्र हो जाऊँ।

इस प्रकार विचार कर इन्द्र ने मुनि को नमस्कार किया और कहा—'भगवान् की वन्दना करने के लिए आप सरीखी तैयारी वास्तव में किसी ने नहीं की है और अब आपका त्याग भी अपूर्व है। आपके त्याग से मैं प्रभावित हुआ हू। इस प्रकार कहकर इन्द्र ने राजा को त्याग की प्रशसा की और मुनि से क्षमायाचना की।

त्याग करने की शक्ति मनुष्य मे ही होती है। देव में मनुष्य जितनी त्याग-शक्ति नही। इसी कारण देवभव की अपेक्षा मनुष्यभव बहुमूल्य माना गया है। मनुष्य अभिमान न करे तो देवो को भी जीत सकता है। श्री दशवैकालिक सूत्र मे भी कहा है—

देवा वि तं नमसंति जस्स धम्मे सया मणो ।

अर्थात्—जिसका मन सदा धर्म मे अनुरक्त रहता है; उसे देव भी नमस्कार करते हैं ।

धर्म का आचरण करने के लिए मनुष्य को जैसी सामग्री प्राप्त है, वैसी देव को भी प्राप्त नही है । अगर देवों को भी जीतना है तो मान को जीतो । मान करके दशार्णभद्र राजा इन्द्र को नही जीत सका । त्याग करके उसने इन्द्र को पराजित कर दिया । मुनि-वन्दन करते समय आजकल भी उनका नाम स्मरण किया जाता है—

दशार्णभद्र राजा, वीर वद्या धरी मान,
पछि इन्द्र हरायो, दियो छ. काया ने अभयदान ।

यह बात ध्यान मे रखकर तुम भी अभिमान को तजो । धर्म के प्रताप से ही इन्द्र, एक राजा के चरणो मे नत हुआ था । राजा ने अभिमान छोड़ा तो इन्द्र को भी उसके चरणों की वन्दना करनी पडी । अतः अभिमान त्यागो । इसी मे आत्मा का कल्याण है । जो अभिमान का त्याग करता है, वह अपने आत्मा का उत्थान करता है और जो अभिमान करता है, वह अपने आत्मा को पतित करता है ।

वृक्षो में भी जो वृक्ष नम्र रहता है, वह अच्छा समझा जाता और जो अकड़ा रहता है वह ठूंठ कहलाता है । नम्र वृक्ष मे फल भी रसीले और मीठे लगते हैं, जबकि अकड़े रहने वाले वृक्ष के फल कटुक और खराब होते हैं । उदाहरणार्थ—आम और एरड को देखो । आम नम्र होता है

तो उसके फल मधुर और सुन्दर होते हैं। एरंड अकड़ा रहता है तो उसके फल कटुक होते है। इस प्रकार जहा नम्रता होती है, वहा अन्यान्य गुण भी आ जाते हैं। कहावत भी है—'जो नमता है, वह परमात्मा को गमता है।' अर्थात् जो नम्रता धारण करता है, वह परमात्मा का भी प्रिय बन सकता है।

इसलिए तुम अपने जीवन मे नम्रता को स्थान दो। नम्रता स्वार्थ की पूर्ति के लिए भी धारण की जाती है मगर स्वार्थ की पूर्ति के लिए धारण की गई नम्रता मे और अभिमान के त्याग से आने वाली नम्रता मे बहुत अन्तर है। यहा जिस नम्रता की बात चल रही है, वह अभिमान का त्याग करके उत्पन्न करनी है। अभिमान करने से आत्म-गौरव की भी रक्षा नही हो सकती। आत्मगौरव की रक्षा तो अभिमान त्यागने से ही होती है। इसके अतिरिक्त अभिमान त्यागने से तथा जीवन मे निरभिमानिता तथा नम्रता को स्थान देने से मान-जन्य कर्म भी नही बधते और मान के कारण पहले बधे हुए कर्मों की निर्जरा हो जाती है। अतएव अभिमान त्यागने का प्रयत्न करो और नम्रता धारण करो। ऐसा करने मे ही मनुष्य जन्म की सार्थकता और सफलता है।

६९-परस्त्रीत्यागी

जब किसी कन्या के साथ आपका विवाह हुआ होगा; तब आमन्त्रण-पत्रिका भेजकर सगे-सम्बन्धियो को बुलाया होगा। मंगल गान हुआ होगा। बाजे बजे होगे और देव, गुरु धर्म की साक्षी से विवाह जग जाहिर हुआ होगा। अत. यह प्रसिद्ध हो चुका कि आप पति हुए और कन्या पत्नी हुई। अब सांसारिक प्रथा के अनुसार आपको कोई दोषी नही कह सकता। अलबत्ता, विवाह होने पर भी सावधानी की आवश्यकता है। विवाह का उद्देश्य चतुष्पद बनना नही, चतुर्भुज बनना है। विवाह पाशविकता का पोषण नही करता वरन् उसे सामर्थ्य का पोषक होना चाहिए। जो काम अकेले से नही हो सकता था, वह दोनो मिलकर करें, इसी अभिप्राय से विवाह किया जाता है। विवाह करने पर भी धर्म का विकास और ब्रह्मचर्य की रक्षा करना विवाहित नर-नारी का कर्त्तव्य है। ऋतुकाल के समय के अतिरिक्त दूसरे समय वीर्य का नाश करना अनुचित है। लेकिन मैं यह बताता हूं कि आप देव, गुरु और धर्म की सत्ता भूल कर उन्हे धोखा देने की निष्फल चेष्टा करते हैं।

जब कोई दुराचारी परस्त्रीगमन करता है तो क्या आमन्त्रण-पत्रिका भेजी जाती है? क्या मगल गान होता है? किसी की साक्षी दी जाती है? ऐसे समय किसी स्त्री को गाने के लिए बुलाया जाए तो क्या वह आएगी? क्या बतासे के बदले रुपया देने पर भी वह गाएगी? कदापि

नहीं, क्योकि वहां कपट और दम्भ को स्थान दिया जाता है और ईश्वर को भूलकर पाप किया जाता है। पापाचार का सेवन लुक-छिप कर किया जाता है। उस समय सब की आंखो मे धूल डालने का प्रयत्न किया जाता है। मगर किसका सामर्थ्य है जो ईश्वर की दृष्टि से बचकर पाप का सेवन कर सके? ईश्वर सर्वदर्शी है। कौन उसकी निगाह से बाहर हो सकता है? जिसे ईश्वर की व्यापक सत्ता का ध्यान होगा, वह छिपकर भी पापाचार करने की चेष्टा नहीं करेगा। ईश्वर को विभु मानने वाला परस्त्री को माता व बहिन के रूप में ही देखेगा—पाप की दृष्टि से नही।

आप पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न कर सके तो भी पर-स्त्री के विषय में जिस नियम से बधे हो, उसका तो पालन करो। परस्त्रीगमन का त्याग तो करना ही चाहिए। यह मर्यादा भी साधारण नही है। शास्त्र इस मर्यादा की भी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। गृहस्थाश्रम में रहने वाले भी देशत· शीलवान् हैं मगर परस्त्रीगमन का त्याग करने पर ही यह पद प्राप्त होता है। शीलवन्त की महिमा देवता भी गाते हैं। उसके सामने भयकर विषधर सांप भी फूल की माला के समान बन जाते हैं।

परस्त्री को माता मानने वाले महापुरुष के चरित्र इस के साक्षी हैं कि ससार में रहते हुए भी जो परस्त्री को माता मानते हैं, उनका कल्याण हो जाता है। इतिहास और शास्त्र में ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं।

शिवाजी महाराष्ट्र का एक शक्तिशाली पुरुष हो गया

है। इसके विषय मे कहा जाता है—'शिवाजी न होते तो सुनति होती सब की।' अब देखना चाहिए कि शिवाजी मे कौन-सा गुण था, जिसके कारण वह छत्रपति कहलाया? एक सिपाही का लड़का होकर भी एक बड़े राज्य का स्वामी बन गया और हिन्दू धर्म का रक्षक माना गया? फिर शिवाजी का लड़का शंभाजी किस दुर्गुण के कारण शिवाजी से अधिक बलशाली होकर भी बुरी मौत मारा गया?

शिवाजी परस्त्री को माता मानता था पर शंभाजी मे यह सद्गुण नही था। एक बार शिवाजी किसी गुफा मे बैठा हुआ ईश्वर का भजन कर रहा था। उसके एक सरदार ने किसी दूसरे सरदार को जीत लिया। पराजित सरदार की स्त्री अतीव सुन्दरी और रूपवती थी। अपनी खैरख्वाही दिखलाने के लिए सरदार उस स्त्री को शिवाजी की स्त्री बनाने के लिए पकड़ लाया। उसने सोचा—'ऐसा रमणीरत्न पाकर शिवाजी की प्रसन्नता का पार नही रहेगा और मेरी पदवृद्धि होगी।' ऐसा सोच कर सरदार उसे सिंगार कर उस गुफा पर लाया, जिसमे शिवाजी भजन कर रहा था। भजन कार्य समाप्त कर शिवाजी बाहर आया। स्त्री पर नजर पड़ते ही वह सारी बात समझ गया। उसने रुष्ट होकर सरदार से कहा—'मेरी इस माता को यहां किस लिए लाए हो?'

सरदार सिर से पांव तक काप उठा। यद्यपि वह स्त्री से शिवाजी की पत्नी बनने की स्वीकृति ले चुका था, परन्तु शिवाजी का उत्तर सुनकर वह हक्का-बक्का रह गया।

आखिर वह स्त्री पालकी मे बैठाकर जहा की तहा पहुचा दी गई।

शिवाजी के पुत्र शभाजी में यह बात नहीं थी। वह सुरा और सुन्दरी का भक्त था। यद्यपि वह पराक्रम मे शिवाजी से भी बढकर था, लेकिन सुरा-सुन्दरी की लोलुपता के अवगुण ने उसका नाश कर डाला।

एक बार जोधपुर का वीर राठौड दुर्गादास औरगजेब के लड़के को शरण दिलाने के लिए उसे साथ लेकर शंभाजी के यहा गया। शभाजी ने उसका सत्कार किया। दुर्गादास शंभाजी के दरबार मे बैठा ही था कि सदा के नियमानुसार वहा शराब चलने लगी। यह हाल देखकर और शिवाजी के उत्तराधिकारी के इस पतन का विचार कर उसे बडी ही निराशा हुई। उसने सोचा—जो स्वय ही सुरक्षित नही है, वह दूसरे को क्या शरण देगा? शराब दुर्गादास के सामने भी आई। दुर्गादास ने पीने से इन्कार कर दिया। शभाजी ने शराब की प्रशसा के पुल बाधते हुए बहुत आग्रह किया, मगर दुर्गादास ने शराब की घोर निन्दा करते हुए शंभाजी का आग्रह अस्वीकार कर दिया।

दुर्गादास एक मकान मे ठहराए गए। रात का समय था, वह बैठे-बैठे ईश्वर का भजन कर रहे थे और अपने भविष्य के विषय मे विचार कर रहे थे कि इतने मे ही एक नवयुवती भागती और रक्षा के लिए चिल्लाती हुई इधर से आ निकली। शभाजी हाथ मे तलवार लिये उसके पीछे था। दुर्गादास ने नवयुवती को अपने मकान में आश्रय दिया। शंभाजी

पहुचकर कहा—'मेरे शत्रु को आश्रय देने वाला कौन है ?' दुर्गादास ने दृढता के स्वर मे कहा—मैं, दुर्गादास हूं और अपने जीते जी इसकी रक्षा करूगा ।' शभाजी कुछ ढीले पड़े और बोले—'तुम उसे मेरे सुपुर्द कर दो ।' दुर्गादास बोले—'महाराज, यह असभव है । मैं शरणागत का त्याग नही कर सकता ।' शंभाजी कामान्ध था और अब आन का भी कुछ ख्याल हो आया । वह लड़ने पर उतारू हो गया और बोला—'अच्छा अपनी तलवार हाथ में लो ।' दुर्गादास ने अविचलित स्वर मे कहा—'आपको इतना होश है कि निश्शस्त्र पर शस्त्र नही चलाते पर अब इस अबला के पास कौन-सा शस्त्र है कि आप उससे लडने चले हैं !'

दुर्गादास ने शभाजी की तलवार छीन ली । इतने में उसके बहुत से साथी आ गये और शभाजी की आज्ञा से उन्होने दुर्गादास को पकड लिया । यद्यपि दुर्गादास अकेले ही उन सब के लिए काफी थे, मगर उन्होने बखेडा करना उचित नही समझा । कहते हैं—तब तक वह नवयुवती अपने ठिकाने पहुच भी चुकी थी ।

शभाजी के पास औरगजेब का एक जासूस किबलेखां रहता था और उसे सुरा और सुन्दरी मे प्रवृत्त किया करता था । उसने शभाजी से दुर्गादास को माग लिया, शभाजी ने दुर्गादास को उसके सुपुर्द कर दिया । उसने बन्दी के रूप में दुर्गादास को औरगजेब के सामने पेश कर दिया और कहा—आप जिसे बहुत दिनो से पकड लेना चाहते थे, वह दुर्गादास कैद हो गया है : उसे मैं पकड लाया हू । औरगजेब बहुत

प्रसन्न हुआ । औरगजेब ने कहा—अच्छा बन्दीगृह में इसे रख दो । कल विचार करेंगे ।

दुर्गादास कारागार मे बन्द कर दिया गया । औरगजेव की वेगम गुलनार ने उदयपुर की लड़ाई मे दुर्गादास को देखा था । उसकी तेजस्विता और वीरता देख वेगम उस पर मोहित हो गई थी । बेगम को जव दुर्गादास के कैद होने का समाचार मिला तो उसे अपना बहुत दिनो का मनोरथ पूर्ण होने की आशा हुई । उसने वादशाह के पास जाकर कहा—जहापनाह ! कैदी दुर्गादास को मेरे हवाले कर दीजिए । उसका फैसला मैं करना चाहती हू । मैं जो वाजिब समझूंगी, वही सजा उसे दे दूंगी ।'

वादशाह उसकी वात टाल नही सका । गुलनार की प्रसन्नता का पार न रहा । वेगम रात्रि के समय अपने लड़के को लेकर वहा गई, जहा दुर्गादास कैद था । लड़के को बाहर खड़ा रख कर गुलनार भीतर गई । उसने हाव-भाव दिखलाते हुए दुर्गादास से कहा—आज वहुत दिनो वाद मन की मुराद पूरी हुई । अव आप मुझे स्वीकार कीजिए । अगर आपने मुझे स्वीकार कर लिया तो आज ही वादशाह को परलोक भेजकर आपको दिल्ली का वादशाह वना दूंगी । अगर आपने मेरी वात न मानी तो अभी गर्दन उडवा दूंगी । मेरा लडका नगी तलवार लिये वाहर खडा है ।'

ऊपर-ऊपर से देखोगे तो मालूम होगा कि धर्म का फल यह हुआ कि दुर्गादास के हाथो-पैरो मे हथकड़ी-वेडियां पड़ी और मौत का वक्त आया । पर वात यही समाप्त नहीं

होती । जरा और आगे देखो कि धर्म के प्रताप से किस प्रकार रक्षा होती है ।

दुर्गादास ने गुलनार से कहा—मां, तुम मेरी मा हो ! मुझे और कोई आज्ञा दो, उसका मैं पालन करूगा । पर यह काम मुझसे न होगा । चाहो तो सिर ले सकती हो ।

गुलनार—सावधान ! तुम मुझे मा कहते हो ! अच्छा मरने के लिए तैयार हो जाओ ।

दुर्गादास—मरने के लिए तैयारी की क्या आवश्यकता है ? मरने का यह मौका भी ठीक है । मैं तैयार ही खडा हू ।

गुलनार ने अपने बेटे को बुलाकर दुर्गादास की गर्दन उडा देने की आज्ञा दी । दुर्गादास ने गर्दन आगे की और उसी समय वहा औरगजेब का सिपहसालार आ गया । सिपहसालार ने दुर्गादास के कैद होने का समाचार सुना था । वह दुर्गादास की वीरता की कद्र करता था, अतएव मिलने के लिए चला आया था । उसने बेगम और दुर्गादास की बात सुनी थी । आते ही उसने गुलनार से प्रश्न किया—बेगम साहिबा ! आप यहा कैसे ?

बेगम—आप यहा क्यो आये ?

सिपहसालार—यह तो मेरा काम है । मैंने तुम्हारी सब बाते सुनी हैं । अब तक दुर्गादास को वीर समझता था, अब मालूम हुआ—वह बली भी है ।

सिपहसालार ने दुर्गादास को कारागार से बाहर

निकाला । उनकी प्रशसा की और उसे जोधपुर रवाना करने की व्यवस्था कर दी ।

दुर्गादास बोले—सिपहसालार साहब ! आप मुझे मुक्त कर रहे हैं, मगर बादशाह का खयाल कर लीजिए । ऐसा न हो कि मेरे कारण आपको दु ख सहन करना पड़े ।

सिपहसालार—मैं किसी हद तक ही बादशाह का नौकर हूं । आप खुशी से जाइए । यह कह कर सिपहसालार ने कुछ सवार और अपना घोड़ा देकर दुर्गादास को जोधपुर रवाना कर दिया ।

दुर्गादास जोधपुर पहुच गये । इधर गुलनार ने सोचा—'अब वेइज्जती से जीना अच्छा नही ।' और उसने जहर खाकर अपने प्राण त्याग दिये ।

शभाजी को उसी किबलेखां के हाथो कैद होना पडा । उसने उसे औरगजेब के सामने पेश किया और औरगजेब ने शभाजी के हाथ-पैर कटवा कर उसे बडी बुरी तरह मरवा डाला । यह सब परस्त्रीगमन का ही परिणाम था ।

परमात्मा को सदा सर्वत्र विद्यमान मानने वाला पुरुष पाप मे कदापि प्रवृत्त न होगा और जो पाप मे प्रवृत्त न होगा, वह कल्याण का भागी होगा ।

७०—सामायिक

(१)

एक श्रावक सामायिक लेकर बैठा। उसी समय एक आदमी ने उसके घर आकर उसकी पुत्र-वधू से पूछा—तुम्हारे ससुर कहां है ? श्रावक की पुत्र-वधू ने उत्तर दिया कि—ससुर जी इस समय बाजार मे पसारी के वहां सोठ लेने गये हैं। वह आदमी श्रावक की पुत्र-वधू का उत्तर सुनकर, बाजार मे जा श्रावक की खोज करने लगा परन्तु उसे श्रावक का पता न मिला। वह फिर श्रावक के घर आया और उसने श्रावक की पुत्र-वधू से कहा कि सेठजी बाजार मे तो नही मिले, वे कहा गये हैं ? श्रावक की पुत्र वधू ने उत्तर दिया कि अब वे मोची-बाजार मे जूता पहनने गये हैं। वह आदमी फिर श्रावक की खोज मे गया, परन्तु श्रावक वहा भी नहीं मिला, इसलिए लौटकर उसने फिर श्रावक की पुत्र वधू से कहा कि वे तो मोची-बाजार में भी नही मिले ! मुझे उनसे एक आवश्यक कार्य है। इसलिए ठीक बता दो कि वे कहा गये हैं। पुत्र-वधू ने उत्तर दिया कि अब वे सामायिक मे है।

वह आदमी बैठ गया। श्रावक की सामायिक समाप्त हुई। सामायिक पालकर उसने उस आदमी से बातचीत की और फिर अपनी पुत्र-वधू से कहने लगा कि तुम जानती थी कि मैं सामायिक में बैठा था, फिर भी तुमने उस आदमी को सच्ची बात न बताकर व्यर्थ मे चक्कर क्यो खिलाये !

लिक बाधा आती है तो उससे भी नही डरता। किन्तु जब किसी प्राणी को विपदा में पड़ा हुआ पाता है तो उसका हृदय एकदम फूल-सा कोमल बन जाता है। दूसरे प्राणी के आन्तरिक सताप की आच लगते ही उसका हृदय नवनीत की भाति पिघल जाता है।

जज साहब की दया से सभी प्रभावित हुए। सभी लोग मुक्तकठ से उनकी प्रशसा करने लगे। अपनी प्रशसा सुनकर जज साहब ने कहा—मैने सूअर का उद्धार नही किया है वरन् अपना उद्धार किया है। उस सूअर को कीचड मे फसा देखकर मेरे हृदय ने दुःख अनुभव किया। अगर मैं उसे यो ही फंसा हुआ छोड आता तो मेरे दुःख का अकुर नष्ट न होता, बल्कि वह अधिकाधिक बढ़ता चला जाता। वह सूअर निकल गया तो मेरे दिल से दुःख का काटा निकस गया। मैं अब निशल्य हू—निराकुल हूं।

जज की यह कैफियत सुनकर लोग अधिक दग हुए। लोग पैसे भर भलाई करते हैं तो सेर भर अहसान लादने की चेष्टा करते हैं और अपना वडप्पन प्रकट करते नही अघाते। एक जज साहब हैं जो सूअर जैसे प्राणी पर उपकार करके भी अपने आपको उपकृत समझते हैं। न किसी पर अहसान, न किसी किस्म की डीग!

यह दया है। यह धर्म है। यह कर्त्तव्य है। जो दूसरे को दुःखी देखकर उसके दुःख को आत्मीय भावना से ग्रहण करता है और दूसरे के सुख मे प्रसन्न होता है, वही दयालु है, वही धर्मी है, वही कर्त्तव्यनिष्ठ है।

७२—सरलता

जिस काल में अंधेरा होता है, शास्त्रकार उसे विषम-
ाल कहते हैं। ऐसा कोई काल नही है, जिसमे पाप न होते
ा, मगर जिस काल मे पापों को छिपाने का प्रयत्न नही
कया जाता, पाप होने पर प्रकट कर दिये जाते हैं और
उनके परित्याग की भावना रहती है, उस काल में चाहे
जितने पाप हो, फिर भी वह कल्याण का ही काल कहलाता
है। अपराध इसी काल में होते हैं, ऐसी कोई बात नहीं।
पहले भी अपराध होते थे किन्तु भूतकाल में अपराध, अप-
राध समझे जाते थे और उन्हे छिपाया नही जाता था, जब
कि वर्तमान काल मे अपराधो को प्रकट करने की पद्धति
वहुत कम दिखाई देती है और पापो एव अपराधो को पाप
एव अपराध मानने वाले लोग भी बहुत कम नजर आते हैं।
मगर शास्त्र तो स्पष्ट घोषणा करते हैं कि सरल बनो, कपट
न करो। अपराध के पापो से कपट का पाप कम नही वरन्
ज्यादा ही है।

सरलता धारण करने से और अपराध को अपराध
मानने से कितना लाभ होता है, इस बात के अनेक उदाहरण
शास्त्रो मे तथा इतिहास मे लिखे हैं। सती चन्दनबाला और
मृगावती का उदाहरण बहुत ही बोधप्रद है।

सती चन्दनबाला महान् सती मानी जाती है। वह
समस्त सतियो मे महती सती थी। इस प्रकार मृगावती भी

ससुर के इस कथन के उत्तर में बहू ने नम्रता-पूर्वक कहा कि मैंने जैसा देखा, उस आदमी से वैसा ही कहा । आप शरीर से तो सामायिक मे बैठे थे, लेकिन आपका चित्त पंसारी और मोची के यहा गया था या नही ?

पुत्र-वधू का उत्तर सुनकर उस श्रावक ने अपनी भूल स्वीकार की और भविष्य मे सावधान रहकर सामायिक करने की प्रतिज्ञा की ।

(२)

दिल्ली मे एक जौहरी श्रावक सामायिक करने के लिए बैठा । सामायिक मे बैठते समय उसने अपने गले मे पहना हुआ मल्यवान् कण्ठा उतार कर अपने कपडो के साथ रख दिया । वही पर एक दूसरा श्रावक भी उपस्थित था । उस दूसरे श्रावक ने जौहरी श्रावक को कण्ठा निकाल कर रखते देखा था । जब वह जौहरी श्रावक सामायिक मे था, तब उस दूसरे श्रावक ने जौहरी के कपडो मे से वह कण्ठा निकाला और जौहरी को कण्ठा बताकर उससे कहा कि मैं यह कण्ठा ले जाता हू । यह कह कर वह दूसरा श्रावक कण्ठा लेकर कलकत्ता के लिए चल दिया । यद्यपि वह कण्ठा मूल्यवान् था और जौहरी श्रावक के देखते हुए बल्कि जौहरी श्रावक को बताकर वह दूसरा श्रावक कण्ठा ले जा रहा था, फिर भी जौहरी श्रावक सामायिक से विचलित नही हुआ । यदि वह चाहता तो उस दूसरे श्रावक को कण्ठा ले जाने से रोक सकता था, अथवा हो-हल्ला करके उसको पकड़वा सकता था । लेकिन यदि वह ऐसा करता तो उसकी सामा-

यिक भी दूषित होती और सामायिक लेते समय उसने जो प्रत्याख्यान किया था, वह भी टूटता। जौहरी श्रावक, दृढ-निश्चयी था, इसलिए कण्ठा जाने पर भी वह सामायिक में समभाव प्राप्त करता रहा।

सामायिक करके जौहरी श्रावक अपने घर आया उस समय भी उसको कण्ठा जाने का खेद नही था। उसके घर वालों ने उसके गले में कण्ठा न देखकर, उससे कण्ठे के लिए पूछा भी कि कण्ठा कहा गया, लेकिन उसने घर वालो को भी कण्ठे का पता नही बताया।। उनसे यह भी नही कहा कि मैं सामायिक मे बैठा हुआ था, उस समय अमुक व्यक्ति कण्ठा ले गया किन्तु यही कहा कि कण्ठा सुरक्षित है।

वह दूसरा श्रावक कण्ठा लेकर कलकत्ता गया। वहा उसने वह कण्ठा बन्धक (गिरवी) रख दिया और प्राप्त रुपयों से व्यापार किया। योगायोग से उस श्रावक को व्यापार से अच्छा लाभ हुआ। श्रावक ने सोचा कि अब मेरा काम चल गया है, इसलिए अब कण्ठा, जिसका है उसे वापस कर देना चाहिए। इस प्रकार सोचकर कण्ठा छुडाकर वह दिल्ली आया। उसने अनुनय विनय और क्षमा प्रार्थना करके, वह कण्ठा जौहरी श्रावक को दिया तथा उससे कण्ठा गिरवी रखने एव व्यापार करने का हाल कहा। उस समय घरवालों एव अन्य लोगो को कण्ठा—सम्बन्धी सब बात मालूम हुई।

मतलब यह कि कोई कैसी भी क्षति करे, सामायिक मे बैठे हुए व्यक्ति को स्थिर चित्त होकर रहना चाहिए, सम-भाव रखना चाहिए। हानि करने वाले पर क्रोध न करना चाहिए, न बदला लेने की भावना ही होनी चाहिए।

७१—अमेरिका का जज

मित्रो ! दया का दर्शन करना हो तो गरीब और दु.खी प्राणियो को देखो । देखो, न केवल नेत्रो से, वरन् हृदय से देखो । उनकी विपदा को अपनी ही विपदा समझो और जैसे अपनी विपदा का निवारण करने के लिए चेष्टा करते हो, वैसे ही उनकी विपदा निवारण करने के लिए यत्नशील बनो ।

सुना है कि अमेरिका का एक जज बग्घी मे बैठा अदालत जा रहा था । मार्ग में उसने देखा कि एक सूअर कीचड़ में ऐसा फंस गया है कि प्रयत्न करने पर भी वह निकल नही पाता है । सूअर की बेबसी देखकर जज गाड़ी से उतर पड़ा और सूअर के पास जाकर कीचड़ से उसका उद्धार कर दिया । जब सूअर बाहर निकल आया और भाग गया, तब जज प्रसन्न होकर अपनी गाडी मैं बैठ गया । सूअर को निकालने मे जज की पोशाक कीचड से भिड गई थी । कोचवान कहने लगा—'हुजूर, आपने मुझे आज्ञा क्यों नही दी ? आपकी सारी पोशाके खराब हो गई है । सूअर को तो मैं ही निकाल देता । जज ने जवाब दिया—'इस कार्य से मुझे जो आन्तरिक आनन्द हुआ है, जो सात्विक सन्तोष हुआ है, वह तुम्हारे द्वारा कराने से क्या सभव हो सकता था ? भोजनजन्य आनन्द लाभ करने के लिए मनुष्य स्वय खाता है, दूसरो को अपने बदले नही खिलाता तो फिर

उस आनन्दप्रद कर्त्तव्य को मैं स्वय न करके दूसरे से क्यो कराता ?

जज साहब बग्घी मे बैठे और बग्घी अदालत को ओर अग्रसर हुई । अदालत पहुंचने पर वहां के लोगो ने जज साहब की पोशाक देखी तो वे आश्चर्य चकित हो गए और सोचने लगे—आज मामला क्या है ? जज साहब और इस भेष मे ।

आखिर कोचवान ने सारी घटना सुनाई । उसे सुनकर सब लोगो के विस्मय का पार न रहा । लोग कहने लगे—इतना बड़ा आदमी सूअर को भी कष्ट मे न देख सका ! जो व्यक्ति न्यायासन पर बैठकर अपने कर्त्तव्य का पालन करने मे कठोर से कठोर बन सकता है, वही दूसरे क्षण फूल से भी कोमल होता है । कवि ने ठीक ही कहा है—

> वज्रादपि कठोराणि, मृदुनि कुसुमादपि ।
> लोकोत्तराणां चेतासि, को हि विज्ञातुमर्हति ।।

अर्थात् असाधारण पुरुष का चित्त वज्र से भी अधिक कठोर और फूल से भी अधिक कोमल होता है । उनके चित्त की थाह पाना कठिन है ।

सचमुच असाधारण पुरुष वही है, जो अपने धर्म एव कर्त्तव्य का पालन करने मे वज्र से भी अधिक कठोर बन जाता है । उसे ससार की कोई भी शक्ति धर्मपथ से या कर्त्तव्य-माग से च्युत नही कर सकती । वह लोक लाज की भी परवाह नही करता और अगर ऐसा करने से कोई तात्का-

लिक बाधा आती है तो उससे भी नही डरता। किन्तु जब किसी प्राणी को विपदा में पड़ा हुआ पाता है तो उसका हृदय एकदम फूल-सा कोमल बन जाता है। दूसरे प्राणी के आन्तरिक सताप की आंच लगते ही उसका हृदय नवनीत की भाति पिघल जाता है।

जज साहब की दया से सभी प्रभावित हुए। सभी लोग मुक्तकठ से उनकी प्रशसा करने लगे। अपनी प्रशसा सुनकर जज साहब ने कहा—मैंने सूअर का उद्धार नही किया है वरन् अपना उद्धार किया है। उस सूअर को कीचड मे फसा देखकर मेरे हृदय ने दु.ख अनुभव किया। अगर मैं उसे यो ही फंसा हुआ छोड आता तो मेरे दु ख का अकुर नष्ट न होता, बल्कि वह अधिकाधिक बढता चला जाता। वह सूअर निकल गया तो मेरे दिल से दु ख का काटा निकस गया। मैं अब निशल्य हू—निराकुल हूं।

जज की यह कैफियत सुनकर लोग अधिक दग हुए। लोग पैसे भर भलाई करते हैं तो सेर भर अहसान लादने की चेष्टा करते हैं और अपना वडप्पन प्रकट करते नही अघाते। एक जज साहब हैं जो सूअर जैसे प्राणी पर उपकार करके भी अपने आपको उपकृत समझते है। न किसी पर अहसान, न किसी किस्म की डीग!

यह दया है। यह धर्म है। यह कर्त्तव्य है। जो दूसरे को दु खी देखकर उसके दु.ख को आत्मीय भावना से ग्रहण करता है और दूसरे के सुख मे प्रसन्न होता है, वही दयालु है, वही धर्मी है, वही कर्त्तव्यनिष्ठ है।

७२—सरलता

जिस काल में अंधेरा होता है, शास्त्रकार उसे विषम-काल कहते हैं। ऐसा कोई काल नही है, जिसमे पाप न होते हो, मगर जिस काल मे पापो को छिपाने का प्रयत्न नही किया जाता, पाप होने पर प्रकट कर दिये जाते हैं और उनके परित्याग की भावना रहती है, उस काल में चाहे जितने पाप हों, फिर भी वह कल्याण का ही काल कहलाता है। अपराध इसी काल में होते हैं, ऐसी कोई बात नहीं। पहले भी अपराध होते थे किन्तु भूतकाल में अपराध, अपराध समझे जाते थे और उन्हे छिपाया नही जाता था, जब कि वर्तमान काल मे अपराधो को प्रकट करने की पद्धति बहुत कम दिखाई देती है और पापो एवं अपराधो को पाप एव अपराध मानने वाले लोग भी बहुत कम नजर आते हैं। मगर शास्त्र तो स्पष्ट घोषणा करते हैं कि सरल बनो, कपट न करो। अपराध के पापो से कपट का पाप कम नही वरन् ज्यादा ही है।

सरलता धारण करने से और अपराध को अपराध मानने से कितना लाभ होता है, इस बात के अनेक उदाहरण शास्त्रो मे तथा इतिहास मे लिखे हैं। सती चन्दनबाला और मृगावती का उदाहरण बहुत ही बोधप्रद है।

सती चन्दनवाला महान् सती मानी जाती है। वह समस्त सतियो मे महती सती थी। इस प्रकार मृगावती भी

वही सती मानी गई है । इन दोनों सतियों में पारस्परिक प्रेम सम्बन्ध भी खूब बना था । फिर भी एक दिन, अनजान मे जब सती मृगावती अकाल मे स्थान से बाहर रह गई तो सती शिरोमणि चन्दनबाला ने उससे कहा—आप 'सरीखी बडी सती को अकाल मे बाहर रहना शोभा नही देता ।' इस प्रकार चन्दनबाला ने मृगावती को मीठा उपालम्भ दिया । मृगावती सोचने लगी 'आज मुझे उपालम्भ सहना पड़ा !' यद्यपि मृगावती कह सकती थी कि मैं जान बूझकर बाहर नही रही । मगर उनमे ऐसा विनय था, ऐसी नम्रता थी कि वह ऐसा कह न सकी । वह विनयपूर्वक खडी रह कर विचार करने लगी—'मुझ मे कितना अज्ञान है कि मेरे कारण मेरी गुराणीजी को इतना कष्ट हुआ । मेरी अपूर्णता न होती तो यह प्रसग ही क्यो उपस्थित होता ?'

इस प्रकार अपने अज्ञान का विचार करते-करते सारे ससार का विचार कर डाला कि अज्ञान ने क्या-क्या अनर्थ नही किये है । अज्ञान ने मुझे ससार में इतना घुमाया है। इस प्रकार अज्ञान की निन्दा और अपनी भूल के पश्चात्ताप के कारण उनमे ऐसे उज्ज्वल भाव का उदय हुआ कि अज्ञान का सर्वथा नाश हो गया और केवल ज्ञान प्रकट हो गया । केवलज्ञान प्रकट हो जाने पर भी सती मृगावती खडी ही रही । इतने मे उन्होने अपने ज्ञान से देखा कि एक काला सांप उसी ओर जा रहा है, जिस ओर महासती हाथ को तकिया बना कर सो रही है । हाथ हटा न लिया जाय तो सम्भव है, साप काटे बिना नही रहेगा । सांप ने काट खाया तो कितना घोर अनर्थ हो जाएगा । इस प्रकार विचार कर

साप का मार्ग रोकने वाला महासती चन्दनबाला का हाथ हटा कर एक ओर कर दिया । हाथ हटते ही चन्दनबाला की आख खुली । आंख खुलते ही उन्होने पूछा—'मेरा हाथ किसने खीचा? मृगावती बोली—क्षमा कीजिये । आपका हाथ मैंने हटाया है ।' चन्दनबाला ने फिर पूछा—किसलिये हाथ हटाया है ?' मृगावती ने उत्तर दिया—'कारणवश हाथ हटाने से आपकी निद्रा भंग हो गई । आप मेरा यह अपराध क्षमा करे ।' चन्दनबाला ने कहा—तुम अभी तक जाग रही हो ? मृगावती ने उत्तर दिया—'अब निद्रा लेने की आवश्यकता ही नही रही ।' चन्दनबाला ने पूछा—पर हाथ हटाने का क्या प्रयोजन था ?' मृगावती ने कहा—इस ओर से एक काला साप आ रहा था । आपका हाथ उसके रास्ते मे था । सम्भव था, वह आपके हाथ मे काट लेता । इसी कारण मैंने आपका हाथ हटा दिया ।' चन्दनबाला ने फिर पूछा—'इस घोर अधेरी रात मे, काला सांप तुम्हे कैसे दिखाई दिया ?' इस अधेरी रात मे काला साप दिखाई देना चर्मचक्षु का काम नही है । क्या तुम्हे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है ?' मृगावती ने उत्तर दिया—'यह सब आपका ही प्रताप है ।'

सती मृगावती मे कितना विनय और कैसा उज्ज्वलतर भाव था । परिश्रम तो आज भी किया जाता है, मगर उसकी दिशा उल्टी है । अर्थात् अपने अपराध छिपाने के लिए परिश्रम किया जाता है । मृगावती जान बूझकर अपने स्थान से बाहर नही रही थी । अनजान मे बाहर रह जाने पर भी अपने को अपराधी मानना कितनी सरलता है ।

सती मृगावती को केवलज्ञान हुआ है, यह जानकर चन्दनबाला पश्चात्ताप करने लगी। उन्होने सोचा—मैंने ऐसी उत्कृष्ट सती को उपालम्भ दिया और केवली की भी आशातना की। मुझ से यह बडा अपराध बन गया है। मैं अपना अपराध तो देखती नही, दूसरो को उपालम्भ देती हू।' इस प्रकार पश्चात्ताप करती हुई सती चन्दनबाला ने मृगावती से कहा—'मैंने आपकी अवज्ञा की है और मेरे कारण आपको कष्ट पहुंचा है। मेरा यह अपराध आप क्षमा करे। जब मैं अपना ही अपराध नही देख सकती तो दूसरो को किस बिरते पर उपालम्भ दे सकती हूं ?' मृगावती ने कहा—आपने मुझे जो उपालम्भ दिया, उसी का तो यह प्रताप है। फिर अनन्तज्ञान प्रकट हो जाने पर भी गुरु-गुरानी का विनय तो करना ही चाहिए। अतएव आप किसी प्रकार का पश्चात्ताप न करें। हां, मेरे कारण आपको जो कष्ट हुआ है, उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए।'

चन्दनबाला विचारने लगी—इस तरह का उपालम्भ मैंने न जाने किसे-किसे दिया होगा। अज्ञान के कारण ऐसे अनेक अपराध मुझ से हुए होगे। मैंने अपना अपराध तो देखा नही और दूसरो को ही उपालम्भ देने के लिए तैयार हो गई। इस प्रकार आत्मनिन्दा करते-करते चन्दनबाला को भी केवलज्ञान प्रकट हो गया।

कहने का आशय यह है कि सरलता धारण करने से और अपने पापो का गम्भीर विचार करने से आत्मा नवीन कर्मो का बन्ध नही करता।

७३-धर्म का कांटा

महामति आत्मा का विचार कुछ विलक्षण ही होता है। विचारशील व्यक्ति के विचारो का आभास देने के लिए द्रौपदी और युधिष्ठिर के बीच जो वार्तालाप हुआ था, यहा उसका उल्लेख किया जाता है।

द्रौपदी बुद्धिमती थी। उसे समझा सकना सहज काम नही था, क्योकि वह सहज ही कोई बात नही मान लेती थी। वह उस बात के विरुद्ध तर्क भी करती थी। भीम और अर्जुन युधिष्ठिर से कहा करते थे—हम आपकी आज्ञा के अधीन हैं। हर हालत मे हम आपका आदेश शिरोधार्य करेगे ही, परन्तु द्रौपदी को आप यह बात भलीभाति समझा दीजिए। इस प्रकार कोई बात द्रौपदी के गले उतारना टेढ़ी खीर समझी जाती थी।

एक दिन द्रौपदी विनयपूर्वक हाथ जोडकर धर्मराज के पास आकर बैठी। धर्मराज ने उससे पूछा—'देवी, स्वस्थ हो न ?'

द्रौपदी—महाराज ! मन मे कुछ रखना और जीभ से कुछ कहना, मैंने नही सीखा। मेरे हृदय मे तो ज्वाला धधक रही है। इस स्थिति मे कैसे कहू कि मैं स्वस्थ हू।

धर्मराज—तुम्हारा कहना सच है। तुम्हारे हृदय मे

जो ज्वाला धधक रही है, उसका कारण मै ही हू। मेरे ही कारण तुम सब को वनवास भोगना पडा है।

द्रौपदी—मेरे हृदय मे एक सन्देह उत्पन्न हो गया है। मैं आपसे उसका निवारण करना चाहती हू।

धर्मराज—कहो, क्या सन्देह है ?

द्रौपदी जिस समय दुष्ट दुश्शासन ने मुझे नग्न करने का प्रयत्न किया था, उस समय मेरे शरीर का वस्त्र बढ गया था। वह खीचते-खीचते थक गया लेकिन मुझे नग्न नही कर सका था। इस घटना से धृतराष्ट्र का हृदय-परिवर्तन हो गया था और उन्होने मुझ से वर मागने के लिए कहा था। उस समय मैंने यह वर मागा था कि मेरे पति को गुलामी से मुक्त कर दिया जाए। उन्होने मेरा यह वचन मानकर आप सब को मुक्त कर दिया था और राजपाट भी वापस सौप दिया था। इस प्रकार वह घटना समाप्त हो गई थी। फिर दूसरी बार जुआ क्यो खेले ? जुआ खेलकर दूसरी बार बन्धन मे क्यो पडे ? क्या इस प्रश्न का आप समाधान करेंगे ?

युधिष्ठिर—जब पहली बार मैंने जुआ खेला, तब तो मेरी भूल थी, मगर दूसरी बार खेलने मे मेरी कोई भूल न थी। वह तो पहली भूल के पाप का प्रायश्चित्त था। मेरी इच्छा थी, मैंने पहली बार जो भूल की है, उसका पश्चात्ताप मुझे करना ही चाहिए। उस भूल का दण्ड मुझे भोगना

ही चाहिए। मैं उस भूल के दण्ड से बचना नही चाहता था। यद्यपि अपनी भूल का तात्कालिक फल मुझे मिल गया था, पर तुम्हारे वरदान से वह दण्ड माफ कर दिया गया था। भूल करके तुम्हारे वरदान के कारण दण्ड से बच निकलना कोई अच्छी बात नही थी। जो स्वय पाप करता है किन्तु पत्नी के पुण्य द्वारा, पाप के दण्ड से बचना चाहता है, वह धर्म को नही जानता। इसके अतिरिक्त काका ने तुम्हे जो वरदान दिया था, वह हृदय-परिवर्तन के कारण नही वरन् भय के कारण दिया था। उसके हृदय में सच-मुच ही परिवर्तन हुआ होता तो वह दूसरी बार भी हम लोगो को वन मे न जाने देते। वास्तव मे उनका हृदय बदला नही था। बल्कि उनके हृदय मे यह भावना थी कि किसी भी उपाय से पाडव दूर चले जाये और मेरे पुत्र निष्कटक राज्य भोगे। हृदय मे इस प्रकार की भावना होते हुए भी, लोकापवाद के भय से ही काका ने मीठे वचन कह-कर तुम्हे वरदान दिया था। अतएव मैंने सोचा—मुझसे जो अपराध हुआ है, उसके दण्ड से बच निकलना उचित नही है। मुझे अपनी भूल का फल भोगना ही चाहिए। मैं दुर्यो-धन से यह कहना चाहता था कि तुझे जो करना है सो कर लेकिन मैं पत्नी को मिले वरदान के कारण वनवास से नही बचना चाहता। मैं मन ही मन यह करने का विचार कर रहा था कि उसी समय दुर्योधन का आदमी मेरे पास आया। उसने मुझसे कहा—आपको दुर्योधन महाराज फिर जुआ खेलने के लिए बुलाते हैं। दुर्योधन का यह सन्देश सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई। मैंने निश्चय किया—इस बार फिर सर्व-स्व हार जाना उचित है, जिससे मैं वन मे जा सकू और

पत्नी के कारण मिली हुई वनवास-मुक्ति से मुक्त हो सकू। मेरे भाई मेरे निश्चय का अनुसरण करे या न करे परन्तु मुझे तो वनवास करना ही चाहिए। इस प्रकार निश्चय करके मैंने फिर जुआ खेला और उसमे हार गया। मन मे निश्चिय किये विचारो को पूर्ण करने के लिए ही मैंने दुबारा जुआ खेला था।'

युधिष्ठिर का यह स्पष्टीकरण सुनकर द्रौपदी कहने लगी—आपने तो यह नवीन ही बात सुनाई। आपके दूसरी बार जुआ खेलने का मतलब तो मैं समझ गई। लेकिन मैं एक दूसरी बात पूछना चाहती हू। वह यह कि जब गन्धर्व ने दुर्योधन को कैद कर लिया था, तब आपने उसे छुडाने के लिए भीम और अर्जुन को क्यो भेजा था?

युधिष्ठिर उत्तर देते हुए कहने लगे—देवी! मैं जिस कुल मे उत्पन्न हुआ हू, उसी कुल के मनुष्य को, जिस वन मे मैं रहता हूं उसी वन मे मार डाला जाए, यह मैं कैसे देख सकता हू! तुम पीछे आई हो, लेकिन कुल के सस्कार मुझमे तो पहले से ही विद्यमान हैं। हम और कौरव आपस मे भले ही लड़ मरें, मगर हमारा भाई दूसरे के हाथ से मार खाये और हम चुपचाप बैठे देखे, यह नही हो सकता। इसी कारण दुर्योधन को गन्धर्व के सिकजे मे से छुडाने का मुझे कोई पश्चात्ताप नही है, उल्टा इससे मुझे आनन्द है। दयाभाव से प्रेरित होकर मैंने दुर्योधन को शत्रु के पजे से छुडाया है।

धर्मराज का यह कथन सुनकर द्रौपदी कहने लगी—

आप इस समय जो कष्ट भोग रहे हैं, वह सब इसी दया का परिणाम है न ? आपने उसे बचाया मगर वह दुष्ट आपका उपकार मानता है ? अजी, वह उलटा ही कष्ट देने का प्रयत्न करता है ।

युधिष्ठिर—देवी ! हम जब वन मे चलते है तो अपने पैर के नीचे फूल भी आ जाते हैं । यद्यपि उसे पैर से कुचलकर हम उसका अपराध करते हैं तथापि वह अपना स्वभाव नही छोडता । जब फूल भी अपना स्वभाव नही छोडता तो फिर दुर्योधन की करतूत देखकर मैं अपना स्वभाव कैसे छोड दू ? दुर्योधन हमारे प्रति चाहे जैसा व्यवहार करे परन्तु मैं अपना क्षमा भाव नही त्याग सकता । जैसे भीम को गदा का और अर्जुन की गाडीव का प्रयोग प्रत्यक्ष दिखाई देता है, वैसे क्षमा का प्रयोग प्रत्यक्ष दिखाई नही देता और न उसका तात्कालिक फल ही दृष्टिगोचर होता है । परन्तु मुझे अपनी क्षमा पर विश्वास है । मैं विश्वासपूर्वक मानता हूं कि जैसे दीमक वृक्ष को खोखला कर देती है, उसी प्रकार मेरी क्षमा ने दुर्योधन को खोखला बना दिया है । दीमक के द्वारा खोखला होने के पश्चात् वृक्ष चाहे आधी से गिरे या वरसात से, मगर उसे खोखला बनाने वाली चीज तो दीमक ही है । इसी प्रकार दुर्योधन का पतन चाहे गदा से हो या गाडीव से, लेकिन उसे निस्सत्व बनाने वाली मेरी क्षमा ही है । अगर मेरी क्षमा उसे खोखला न कर सकी तो गदा या गाडीव का उस पर कोई प्रभाव नही पड़ सकता ।

द्रौपदी ने कहा—धर्म की यह तराजू अद्भुत है !

आपके कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि आप प्रत्येक कार्य को धर्म की तुला पर तोल कर ही करते है ।

युधिष्ठिर—साधारण चीजे तोलने के कांटे में कुछ पासग भी रहता है, लेकिन जवाहिर या हीरा माणिक तोलने के कांटे मे रचमात्र भी पासंग नही चल सकता । इसी प्रकार धर्म का कांटा, बिना किसी अन्तर के, ठीक निर्णय देता है। मैं अपने धर्मकाटे मे तनिक भी अन्तर नही आने देता । मैं अपना अपकार करने वाले का भी उपकार ही करूगा और इसका कारण यही है कि मेरी धर्मतुला ऐसा करने के लिए मुझे बाध्य करती है ।'

मित्रो ! आपको भी युधिष्ठिर के समान क्षमा धारण करनी चाहिए या नही ? आज ऐसी क्षमा का व्यवहार करना आपके लिए शक्य न हो तो कम से कम श्रद्धा मे तो क्षमा रखी ही जा सकती है । क्षमा पर परिपूर्ण श्रद्धा रखना तो सम्यग्दृष्टि का स्वाभाविक गुण है । सब पर सम-भाव रखने वाला ही सम्यग्दृष्टि कहलाता है । समभाव धारण करने वाले मे इसी प्रकार की क्षमा की आवश्यकता है । आज आप लोगो के व्यवहार मे इस क्षमा के दर्शन नही होते, मगर युधिष्ठिर जैसे के चरित्र मे वह मिलती ही है। अतएव उसकी शक्यता के सम्बन्ध मे शका नही उठाई जा सकती ।

७४ : सत्यवीर हरिश्चन्द्र

आत्मा को मामूली बात के लिए पतित करना, कितनी भयकर भूल है ? इस भूल के सशोधन का एक कारगर उपाय गर्हा करना है । सच्ची गर्हा करने से आत्मोन्नति होती है, क्योकि गर्हा आत्मोन्नति और आत्म शुद्धि का प्रधान कारण है । सच्ची गर्हा करने वाला पुरुष आत्मा को भी पतित नही होने देता । चाहे जैसा भयानक सकट आ पड़े, फिर भी आत्मा को पतित न होने देना ही सच्ची गर्हा का अवश्यम्भावी फल है ।

राजा हरिश्चन्द्र का राजपाट वगैरह सब चला गया। उसने इन सब चीजो को प्रसन्नता-पूर्वक जाने दिया, मगर आत्मा को पतन से बचाने के लिए सत्य न जाने दिया । आखिर उस पर इतना भयंकर सकट आ पडा कि एक ओर मृत पुत्र सामने पडा है और दूसरी ओर उसकी पत्नी दीन वाणी मे कहती है कि पुत्र का सस्कार करना आपका कर्त्तव्य है । यह आपका पुत्र है । आप इसका सस्कार न करेंगे तो कौन करेगा ? पत्नी के इस प्रकार कहने पर भी हरिश्चन्द्र ने यही उत्तर दिया कि मेरे पास इसका सस्कार करने की कोई सामग्री नही है ।

हरिश्चन्द्र की पत्नी तारा ने कहा—अग्निसस्कार करने के लिए और क्या सामग्री चाहिए ? लकड सामने पडे ही हैं । फिर अग्निसस्कार करने मे विलम्ब की क्या आवश्यकता है ?

हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया—तुम ठीक कहती हो, पर यह लकड मेरे नही, स्वामी के हैं । स्वामी की आज्ञा है कि कर देने वाले को ही लकडिया दी जाए । अतएव ये लकडिया बिना मोल नही मिल सकती ।

यह सुनकर तारा बोली—आपका कथन सत्य है, पर आप एक टके का कर किससे माग रहे है? क्या मैं आपकी पत्नी नही हूं ? इस समय मेरे पास एक टका भी नही है ।

राजा ने कहा—रानी ! पुत्रवियोग के कारण तुम मोह मे पड गई हो । तुम अपने ध्येय को भी भूले जा रही हो । विचार करो, तुम कौन हो ? तुम एक राज्य की महारानी हो, फिर भी केवल सत्य का पालन करने के लिए ही दूसरे के घर की दासी बनी हो । तुम मुझे स्वामी कहती हो सो मैं पूछता हू कि मेरी हड्डियो को स्वामी कहती हो या आत्मा को ? तुम भलीभाति जानती हो कि जो पुरुष एक दिन प्रतापशाली राजा था और जिस ओर नजर फेरता था उसी ओर लक्ष्मी विलास करने लगती थी, वह राजा सत्य के लिए ही दूसरे का दीन दास बना है । जिस सत्य का पालन करने के लिए मैंने और तुमने इतने कष्ट उठाये हैं, क्या आज उसी सत्य का परित्याग कर देना उचित है ? अगर मैं कर वसूल किये विना, स्वामी की आज्ञा के विरुद्ध लकडिया दे दू और पुत्र का अग्निसस्कार कर डालू तो सत्य का विघात होगा या नही ?

राजा हरिश्चन्द्र का यह सत्याग्रह सच्ची गर्हा का स्वरूप स्पष्ट करता है । आज तुम्हे भी विचार करना

चाहिए कि सत्य का पालन करने के लिए कितना त्याग सीखने की आवश्यकता है। नाशशील शरीर के लिए तो थोडा-बहुत त्याग किया जाता है किन्तु अजर-अमर आत्मा के लिए तनिक भी त्याग करते नही बन पडता। यह कितनी भयानक भूल है।

हरिश्चन्द्र का कथन सुनकर रानी बोली—वास्तव मे आपका कहना ठीक है। सत्य का त्याग करना कदापि उचित नही है, परन्तु पुत्र का शव यो ही पडा रहने देना और उसका सस्कार न करना भी क्या उचित है ?

राजा ने उत्तर दिया— जो होनहार होगा, होगा परन्तु शव के सस्कार के लिए सत्य का घात करना उचित नही। सत्य सबसे श्रेष्ठ है, इसलिए सर्वप्रथम सत्य की ही रक्षा करनी चाहिए।'

कतिपय लोग कह देते हैं—'क्या किया जाय, अमुक ऐसा कारण उपस्थित हो गया कि उस समय सत्य का पालन करना अत्यन्त कठिन था। किसी भी युक्ति से उस समय काम निकालना आवश्यक था।' इस प्रकार कहकर लोग सत्य की अपेक्षा करते हैं। किन्तु ज्ञानी जनो का कथन है कि सत्य पर विश्वास रखने से तुम्हारे भीतर अलौकिक शक्ति का प्रादुर्भाव होगा और उस दशा मे तुम्हारा कोई भी कार्य अटका नही रहेगा शास्त्र मे कहा है—

देवा वि त नमसति, जस्स धम्मे सया मणो।

सत्य का निरन्तर पालन करने से देवता भी तुम्हारी सेवा मे उपस्थित होगे। मगर आज तो यह कहा जाता है—

देव गया द्वारिका, पीर गया मक्का।
अग्रेजो के राज्य मे, ढेढ मारे कक्का।

अर्थात्—आजकल कलयुग चल रहा है। देव भी न जाने कहा विलीन हो गये है।

मगर देवो को देखने से पहले अपनी आत्मा को क्यो नही देखते ? तुम्हारे हृदय के भाव देखकर ही देव आ सकते हैं। तुम मे धर्म होगा तो देव अपने आप आ जाएगे। अतएव धर्म को अपनाओ—हृदय मे धर्म को स्थान दो।

रानी ने राजा से कहा—पुत्र के शव का सस्कार करने का एक उपाय है। उस उपाय से पुत्र के शव का अग्नि-सस्कार भी हो जाएगा और सत्य की रक्षा भी हो जाएगी। राजा के पूछने पर रानी ने उपाय बतलाया—मैने जो साडी पहन रखी है, उसमे से आधी साडी से अपनी लज्जा बचा लूगी और आधी आपको कर के रूप मे दे देती हू। आप आधी साडी लेकर पुत्र का सस्कार कीजिए।

राजा ने यह उपाय स्वीकार किया और कहा—ठीक है, इससे दोनो कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं।

रानी इस विचार से बडी प्रसन्न थी कि इस उपाय से मेरे और मेरे पति के सत्य की रक्षा हो जाएगी और पुत्र का अग्निसंस्कार भी हो जायेगा। रानी मे उस समय ऐसा वीररस आया कि वह तत्काल ही अपनी आधी साडी फाड देने को तैयार हुई।

महारानी तारा तो सत्यधर्म की रक्षा के लिए अपनी आधी साडी फाड देने को तैयार है पर आप अपने धर्म की रक्षा के लिए और अहिंसा का पालन करने के लिए चर्बी वाले वस्त्र भी नही तज सकते ! तुम्हे गरीब प्राणियो पर इतनी भी दया नही आती ! चर्बी वाले वस्त्र पहनने से उन्हे कितना दु ख सहन करना पडता है ? मालूम हुआ है कि यन्त्रवादी लोग गरीब मजदूरो के हित का ध्यान नही रखते । अगर कुछ ध्यान देते भी है तो बस इतना ही जिससे कि उनके स्वार्थ मे बाधा न आवे । गरीबो पर दया रखकर वे उनके हित के लिए कुछ भी नही करते । प्राय. यन्त्रवादी लोगो मे गरीबो के प्रति दया होती ही नही । ऐसी दशा मे तुम चर्बी वाले मिल के वस्त्र पहनकर गरीबो का दुःख क्यो बढाते हो ? एक बार मिल के और खादी के कपडो की तुलना करके देखो तो मालूम होगा कि दोनो मे कितना अधिक अन्तर है ! यह अन्तर जान लेने के बाद अहिंसा की दृष्टि से धर्म की दृष्टि से और आर्थिक दृष्टि से खादी अपनाने की इच्छा हुए बिना नही रहेगी ।

गरीबो पर दया करने के लिए ही गाधीजी ने अधिक वस्त्र पहनना त्याग दिया है । उन्होने वस्त्रो की मर्यादा बाध ली है और मर्यादित वस्त्रो से ही अपना काम चलाते हैं । वस्तुत. इस उष्ण देश में अधिक वस्त्रो की आवश्यकता भी नही है । वस्त्र मुख्य रूप से लज्जा की रक्षा करने के लिए ही है । अगर इसी दृष्टि से वस्त्रो का उपयोग किया जाए तो बहुत लाभ होगा । इस देश मे यद्यपि थोडे ही वस्त्रो से काम चल सकता है, फिर भी यहा के लोग एक-दूसरे के ऊपर कम से कम तीन वस्त्र तो पहनते ही है । तीन से

कम वस्त्र पहनना फैशन के खिलाफ समझा जाता है। ठूस-ठूसकर पहने हुए वस्त्रो के कारण भले ही पसीना हो और वह भीतर ही भीतर सूखकर शरीर को हानि पहुचाए, मगर तीन से कम वस्त्र पहनना तो फैशन के विरुद्ध ठहरा!

तुम्हे देखना चाहिए कि तुम्हारे गुरु किस प्रकार रहते हैं। हम तुम्हारे बीच मे बैठे है, इसी कारण लज्जा की रक्षा के लिए हमे वस्त्र ओढना पडता है। मगर हम जगल मे जाकर एकात मे बैठे तो हमे वस्त्र की आवश्यकता ही न रहे। तुम लोग ऐसे त्यागी गुरुओ के उपासक होते हुए भी चर्बी लगे वस्त्रो तक का त्याग नही कर सकते, यह कितनी अनुचित बात है!

रानी ने वीरता के आवेश मे अपनी आधी साडी फाड डाली। रानी ने अपनी साडी क्या फाडी, मानो अपने कष्ट ही फाड कर फेंक दिये। उसकी साडी के तार क्या टूटे, मानो उसका तीव्र अन्तरायकर्म ही टूट गया।

रानी को इस प्रकार साडी फाडते देखकर राजा को दुख हुआ। उसने सोचा—मेरी पत्नी के पास एक ही साडी थी और वह भी आधी दे देनी पडी। लेकिन दूसरे ही क्षण यह विचार कर प्रसन्नता भी हुई कि ऐसा करने से हमारे सत्य की रक्षा हुई है। अन्त मे राजा-रानी का कष्ट दूर हुआ और उनके सत्य की भी रक्षा हुई।

कहने का आशय यह है कि सकट सिर पर आने पर भी अपने आपको पतित न होने देना चाहिए।

卐

७५. स्तुति का प्रताप

किसी राजा ने एक चोर को शूली की सजा दी। उसने दूसरे लोगो पर अपराध के दण्ड का आतंक जमाने के लिए शूली चढाने की जगह नागरिक जनता को भी बुलाया और सब लोगो को आज्ञा दे दी कि कोई भी मनुष्य चोर को सहायता न दे। चोर को शूली पर चढाने का हुक्म दिया गया और सब लोग अपने-अपने घर लौट गये। जिस जगह चोर को शूली दी जानी थी, उस जगह से निकालते हुए सभी लोग चोर की निन्दा करते जाते थे। एक श्रावक भी उसी जगह से निकला। चोर को देख कर उसने सोचा कि मुझे चोर की निन्दा नही करनी चाहिए किन्तु चोरी की निन्दा करनी चाहिए। चोरी करके दण्ड भोगने वाला पुरुष तो करुणा का पात्र है।

कितने ही लोग दुखी को देखकर कहते हैं कि यह तो अपने कर्मों का फल भुगत रहा है। इस पर करुणा कैसी ? लेकिन वास्तव मे करुणा का पात्र तो दु.खी जीवन ही है। दूसरे के दुख को अपना दुख मानना ही करुणा है।

उस श्रावक को चोर पर करुणा आई। वह चोर के पास जाकर उससे कहने लगा—'भाई ! तुम्हारे ऊपर मुझे अत्यन्त दया है। मगर मैं क्या सहायता कर सकता हूं ?'

श्रावक का यह कथन सुनकर चोर प्रसन्न हुआ और

मन ही मन कहने लगा—बहुत से लोग इस रास्ते से निकले पर इस सरीखा दयालु कोई नही था।

ऐसे दुःखी मनुष्य को देखकर तुम्हें उस पर करुणा उत्पन्न होगी या नही ? ऐसी दुःखमय अवस्था इस आत्मा ने न जाने कितनी बार भोगी होगी। इस प्रकार आज आत्मा जो करुणा दूसरे पर प्रकट कर रहा है सो न जाने कितनी बार स्वय उस करुणा का पात्र बन चुका है। ऐसी अवस्था में भी आज लोगो के हृदय से करुणा-भाव की कमी हो रही है। करुणा की कमी का खास कारण स्वार्थ भावना है। स्वार्थ भावना जब हृदय मे घर कर बैठती है तब करुणामूर्ति माता मे भी भेदभाव आ जाता है और उसमे से भी करुणा निकल जाती है। माता की भी जब ऐसी स्थिति हो सकती है तो स्वार्थ भावना के कारण अगर दूसरो में भी दु.खियो के प्रति करुणा न रहे तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ?

सेठ के मीठे बोल सुनकर चोर को बडी प्रसन्नता हुई। सेठ ने उस चोर से कहा—'मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकू तो कहो।' चोर बोला—'आपको और तो क्या कहू। हा, इस समय मैं बहुत प्यासा हू। पीने के लिए थोडा पानी दे दो।' सेठ ने कहा—बहुत अच्छा। मैं अभी पानी लाता हू। राजा की ओर से मुझे जो दण्ड मिलना होगा सो मिलेगा, लेकिन मैं पानी लाने जाऊ और इतने ही समय मे कदाचित् प्राण-पखेरू उड़ जाएं तो तुम्हे न जाने क्या गति मिलेगी। इस कारण तुम मेरा उपदेश सुनकर ध्यान मे रखो तो तुम्हारा कल्याण होगा।

चोर ने सेठ की बात मानना स्वीकार किया—सेठ ने उसे णमोक्कारमन्त्र सुनाया और कहा—मैं पानी लेकर आता हू, तब तक इस मन्त्र का जाप करते रहना । चोर ने पहले कभी यह मन्त्र नही सुना था और इस समय वह घोर सकट मे था । उसे णमोक्कारमन्त्र याद नही रहा । वह उसके स्थान पर इस प्रकार कहने लगा—

आनू तानू कछू न जानू, सेठ वचन परमानू ॥

उसने इस प्रकार णमोक्कारमन्त्र का जाप किया । यह स्तव नही तो स्तुति हुई ! चोर मर कर न जाने किस गति मे जाता लेकिन स्तुति के प्रभाव से वह देव हुआ । यह स्तुति का ही प्रताप है ।

७६—भविष्य की ओर

तपस्वी मुनिश्री रघुनाथ जी महाराज फक्कड साधु थे । वह एक बार जोधपुर मे थे, तब जोधपुर के सिघीजी ने उनकी प्रशसा सुनी और उनके दर्शन करने आये । रघुनाथजी महाराज ने सिघी जो से पूछा—आप कुछ धर्मध्यान करते है या नही ? सिघीजी ने उत्तर दिया—'महाराज ! पहले

बहुत धर्मध्यान किया है, उसके फलस्वरूप सिघी सरीखे उत्तम कुल मे जन्म पाया है, पैर मे सोने का कडा पहिनने को मिला है, जागीर मिली है, हवेली है और अच्छे कुल की कन्याए भी प्राप्त हुई है । ऐसी स्थिति मे पहले किये पुण्य का फल भोगे या अब नया करने बैठें ?'

तपस्वीजी ने उत्तर दिया—सिघीजी, यह सब तो ठीक है कि आपने पहले जो धर्मध्यान किया है, उसका फल आप भोग रहे है मगर यदि भविष्य के लिए धर्मध्यान न किया और मृत्यु के पश्चात् कुत्ते का जन्म धारण करना पडा तो आपको उस हवेली मे कोन घुसने देगा ?

सिघीजी—महाराज ! ऐसी अवस्था मे तो हवेली मे कोई नही घुसने देगा ।

तपस्वीजी—इसलिए हम कहते है, भविष्य के लिए धर्म-ध्यान करो ।

मैं भी आपसे यही कहता हू कि आपको उत्तम मनुष्य-जन्म, उत्तम जेनधर्म, उत्तम धर्मक्षेत्र आदि का सुयोग मिला है । इस अनमोल अवसर का लाभ उठाकर आत्मकल्याण साधो । इसी मे कल्याण है । दूसरे आत्मकल्याण की साधना करे या न करें, उस पर ध्यान न देते हुए आप अपना कल्याण करने मे प्रयत्नशील रहे ।

७७-जाति भाई

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के मुखारविंद से मैने सुना है कि बीकानेर मे वैद मुहता हिंदूसिंहजी दीवान थे। वह स्थानकवासी जैन थे। बीकानेर में उनकी खूब प्रतिष्ठा थी और राज-दरबार मे भी बडी इज्जत थी। एक बार दीवान साहब भोजन करने बैठे ही थे कि घी की फेरी करने वाला एक वणिक् आया। उसने दीवान साहब से कहा—क्या आप घी खरीदेगे? हिंदूसिंहजी ने उसे देखकर अनुमान किया कि यह कोई महाजन ही है इस प्रकार अनुमान करके उसे अपने पास बुलाया और पूछा—'भाई कहा रहते हो?' घी बेचने वाले ने अपना गाव बतला दिया। दीवान ने कहा—उस गाव मे तो हमारा भाई भी रहता है। वहा वैद मुहता का घर हे न? दीवान का यह प्रश्न सुनकर घी विक्रेता कुछ लज्जित हुआ और कहने लगा—आप इतने बडे आदमी होकर भी हमे याद रखते है, यह बडे ही आनन्द की बात है। हिंदूसिंहजी समझ गये कि यह घी-विक्रेता भी वैद मुहता गोत्र का ही है। तब दीवान ने उससे कहा—'अच्छा भाई आओ, थोडा भोजन कर लो।' घी वाला उनके साथ भोजन करने मे सकोच करने लगा, पर उन्होने कहा—'अरे भाई, लजाने की क्या बात है? तुम तो मेरे भाई हो।' आखिर दोनो ने एक ही थाल मे भोजन किया और दीवान ने आग्रह करके उसे बढिया-बढिया भोजन जिमाया।

दीवान के इस कार्य से उसका महत्त्व घटा या बढ़ा?

सुना जाता है कि यहा (जामनगर मे) अपने सहधर्मी भाइयो के साथ भेदभाव रखा जाता है । सहधर्मी भाइयो मे भेद डालने वाले किसी भी विधान को स्वीकार करना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ? खेती करने वाले गरीब सहधर्मी भाइयो के साथ इस तरह का भेदभाव रखा जाता है परन्तु उनके द्वारा उत्पन्न किये अनाज के साथ कोई भेद-भाव नही किया जाता । गरीब भाइयो द्वारा उत्पन्न किया अनाज खाना छोड दो तो पता चलेगा कि उनके प्रति भेद-भाव रखने का क्या नतीजा होता है ! आज दूसरे लोग तो अस्पृश्यो को भी स्पृश्य बनाते जा रहे हैं और तुम अपने ही जाति भाइयो को दुरदुरा रहे हो । तुम उनके साथ ही परहेज करते हो । वह तो जैन हैं, तुम्हारी जाति के हैं और यहा आकर धर्मक्रिया भी करते हैं । परन्तु वह भी तुम्हारे साथ भोजन करने नही आ सकते । भला वे लोग इस प्रकार का अपमान कैसे सहन कर सकते हैं ? ऐसी स्थिति मे अपने सहधर्मी के लिए या अपने धर्म के लिए कष्ट सहन करना पडे तो सह लेना उचित है, किन्तु इस विधान को बदलना आवश्यक है ।

७८–संघ–संगति

सघ मे किस प्रकार की सगति होनी चाहिए, इस विषय मे एक उदाहरण लीजिए—

भारतवर्ष मे युधिष्ठिर धर्मात्मा के रूप मे प्रसिद्ध है। जैन और अजैन, सभी युधिष्ठिर को महापुरुष और धर्मात्मा मानते हैं। दूसरी ओर दुर्योधन पापात्मा था। उसने भीम को नदी मे पटक दिया था और पाडवो के घर मे आग सुलगा दी थी। फिर भी अपने पुण्यप्रताप से पाडव बच गये। दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुए मे हराकर पाडवो को जगल मे भेज दिया था। जगल मे वे अनेको कष्ट भुगत रहे थे। पांडव स्वय बलवान् थे और फिर श्रीकृष्ण जैसे उनके सहायक थे। पाडव चाहते तो दुर्योधन को परास्त कर देना उनके बाए हाथ का खेल था मगर युधिष्ठिर कहते थे—जो बात जीभ से कह दी है, उसका पालन जीव को जोखिम मे डालकर भी करना चाहिए। द्रौपदी इस विषय मे युधिष्ठिर को उपालम्भ देती और कहती—भीम और अर्जुन सरीखे बलवान् भाइयो को विपत्ति मे डालने वाले तुम्ही हो। तुमने उन्हे कैसा दीन बना दिया है। मैं राज-कन्या और राजपत्नी होकर भी जगली अन्न से उदरपूर्ति करती हू। इसके कारण भी तुम्ही हो।

पत्नी की ऐसी बाते सुनकर पुरुष का उग्र बन जाना स्वाभाविक है। परन्तु द्रौपदी की बातो के उत्तर मे युधिष्ठिर कहते हैं—'देवी! तुझ मे इतनी उग्रता क्यो जान पडती है? मुझे तो ऐसे कष्ट के समय भी सब भाई बडे सुन्दर जान पडते है और तू भी बहुत सुन्दर दिखाई देती है इस समय मैं भी ऐसा हू कि इन्द्र भी मेरी बराबरी नही कर सकता। तुम इसको खराब बतलाती हो परन्तु मैं पूछता हू कि यह समय खराब है या वह समय खराब था, जब वस्त्रहीन करने के लिए तुम्हारा चीर खीचा गया था?

द्रौपदी ने उत्तर दिया—वह समय तो बहुत ही खराब था। इस समय निश्चिन्त हो जीवनयापन कर रहे हैं मगर उस समय तो जीवित रहना भी कठिन हो गया था। उस समय का दु ख तो महाभयकर था।

युधिष्ठिर बोले—तो उस समय किसने तुम्हारी लाज रखी थी ? उस समय को नजर के सामने रखकर मैं विचार करता हू तो यह समय मुझे प्रिय लगता है। मुझे यह समय इसलिए खराब नही लगता क्योकि इस समय मे धर्म का पालन होता है। तुम वार-वार इस समय की निंदा करती हो, लेकिन जरा विचार करो कि किसी प्रकार का अपराध न करने पर भी, धर्म के पालन के लिए हम लोगो को इस समय सकट सहने पडते हैं। इससे वढकर दूसरा आनन्द और क्या हो सकता है ?

युधिष्ठिर और उनके भाई जगल मे कष्ट सहन कर रहे थे, फिर भी दुर्योधन की आंखो मे वे काटे की तरह खटकते थे। दुर्योधन ने विचार किया—इस समय पांडव असहाय हैं। मैं सेना लेजाकर उन्हे नष्ट कर डालूं तो सदा के लिए झगडा ही मिट जायेगा। इस प्रकार विचार कर दुर्योधन गोकुल देखने के वहाने सेना लेकर चला। उसकी इच्छा तो पाडवो को नष्ट करने की थी मगर वहाना उसने किया गोकुल देखने का।

पहले के राजा लोग भी गोकुल रखते थे और श्रावक भी गोकुल रखते थे। आनन्द श्रावक के वर्णन मे यह वर्णन कही नही देखा गया कि उसके यहां हाथी, घोडा या मोटरें

थी। इसके विपरीत गाये होने का वर्णन अवश्य देखा जाता है। इस प्रकार पहले के लोग गायो की खूब रक्षा करते थे मगर आज तो ऐसा जान पड़ता है मानो लोगो ने गो-पालन को हल्का काम समझ रखा है। लोग गायो की कत्ल की शिकायत करते है, मगर गहरा विचार करने पर मालूम होगा कि इसका प्रधान कारण यही है कि हिन्दुओ ने गायो का आदर करना छोड दिया है। लोगो को मोटर का पेट्रोल रखना सह्य हो जाता है मगर गाय का घास रखना सह्य नही है।

दुर्योधन के हृदय मे पांडवो को नष्ट करने की भावना थी परन्तु वह गोकुल का निरीक्षण करने के वहाने सेना के साथ निकाला। मार्ग मे दुर्योधन अपनी सेना के साथ गन्धर्व के वगीचे मे उतरा और इस कारण गन्धर्व तथा दुर्योधन के वीच लडाई हो गई। गन्धर्व वलवान् था। उसने सवको जीत लिया और दुर्योधन को जीवित पकड कर वाध लिया। दुर्योधन के एक दूत ने यह सव समाचार पाडवो और द्रौपदी के पास पहुचाए।

समाचार सुनकर भीम, अर्जुन और द्रौपदी ने कहा—वहुत अच्छा हुआ जो दुर्योधन पकड कर वाध लिया गया। उस दुष्ट ने जैसा किया, वैसा फल पाया। दुर्योधन दुष्ट विचार करके ही आ रहा था और उसने पाडवो को कष्ट भी वहुत दिया था। फिर भी दुर्योधन के कैद होने का समाचार सुनते ही युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि से कहने लगे—भाइयो! दुर्योधन के पकडे जाने से तुम प्रसन्न होते हो और इसे वहुत अच्छा समझते हो, मगर यह वात हम

लोगो को शोभा नही देती । हे अर्जुन ! अगर तुझे मुझ पर विश्वास है तो जो कहता हू, उसी के अनुसार तू कर।' अर्जुन बोले—'मुझे आपके ऊपर पूर्ण विश्वास है । अतएव आपका आदेश मुझे शिरोधार्य है । आप जो कहेगे, वही करूगा । तब युधिष्ठिर ने कहा—'जब कौरवो से अपना झगडा हो तो एक ओर सौ कौरव और दूसरी ओर हम पाडव रहे । दुर्योधन कैसा ही क्यों न हो, आखिर अपना भाई ही है । हममे पुरुषार्थ होने पर भी कोई हमारे भाई को कद कर रखे, यह कितना अनुचित है ? अतएव अगर तुममे पुरुषार्थ हो तो जाओ और दुर्योधन को गन्धर्व के बन्धन से मुक्त कर आओ ।

धर्मात्मा युधिष्ठिर ने विरासत मे भारतवर्ष को ऐसी हितबुद्धि की भेट दी है । मगर आजकल यह हितबुद्धि किस प्रकार भुला दी गई है और परिस्थिति कितनी विकट हो गई है, यह देखने की आवश्यकता है । कोई तीसरी शक्ति सबको दबा रही हो तो भले दबावे किन्तु हिन्दू-मुसलमान, वैष्णव अथवा जैन परस्पर मे शाति के साथ नही रह सकते । युधिष्ठिर कहते है—अपना भाई अपने ऊपर भले ही लाखो जुल्म करता हो, मगर यदि यह भाई किसी तीसरे द्वारा दबाया जाता हो या पीडित किया जाता हो तो उसे पीड़ा-मुक्त करना भाई का धर्म है ।

अर्जुन पहले कहता था—दुर्योधन गन्धर्व द्वारा कैद कर लिया गया, वह बहुत अच्छा हुआ । परन्तु युधिष्ठर की आज्ञा होते ही वह गन्धर्व के पास गया । उसने दुर्योधन को बन्धनमुक्त करने के लिए कहा । यह सुनकर गन्धर्व ने

अर्जुन से कहा—मित्र ! तुम यह क्या कह रहे हो ? तुम इतना भी विचार नही करते कि दुर्योधन बड़ा ही दुष्ट है और तुम सबको मारने के लिए जा रहा था । ऐसी स्थिति में मैंने उसे पकड कर कैद कर लिया है तो बुरा क्या किया है ? इसलिए तुम अपने घर जाओ और उसे छुडाने के प्रयत्न मे मत पड़ो । अर्जुन ने उत्तर दिया—दुर्योधन चाहे जैसा हो, आखिर तो हमारा भाई ही है । अतएव उसे बन्धनमुक्त करना ही पडेगा ।

अर्जुन तो भाई की रक्षा के लिए इस प्रकार कहता है, मगर आप लोग भाई-भाई कोर्ट में मुकद्मेबाजी तो नही करते ? कदाचित् कोई कहे कि हमारा भाई बहुत खराब है तो उससे यह कहा जा सकता है कि वह कितना ही खराब क्यो न हो, मगर दुर्योधन के समान खराब तो नही है ! जब युधिष्ठिर ने दुर्योधन के समान भाई के प्रति इतनी क्षमा और सहनशीलता का परिचय दिया तो तुम अपने भाई के प्रति इतनी क्षमा और सहनशीलता का परिचय नहीं दे सकते? मगर तुम मे भाई के प्रति इतनी क्षमा और सहनशीलता नही है और इसी कारण तुम भाई के खिलाफ न्यायालय मे मुकदमा दायर करते हो ! अर्जुन, भीम और द्रौपदी—तीनो दुर्योधन के बहुत खिलाफ थे, फिर भी उन्हे युधिष्ठिर के वचनो पर ऐसा दृढ विश्वास था तो तुम्हे भगवान् के वचनो पर कितना अधिक विश्वास होना चाहिए ! भगवान् कहते हैं—सिर काटने वाला वैरी भी मित्र ही है । वास्तव मे तो कोई किसी का सिर काट ही नही सकता, किन्तु आत्मा ही अपना शिरच्छेद कर सकती है । अतः आत्मा ही अपना असली वैरी है ।

अर्जुन ने गन्धर्व से कहा—भले ही तुम हमारे हित की बात कहते हो, मगर अपने भाई की बात के सामने मैं तुम्हारी बात नही मान सकता । मुझे अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर की बात शिरोधार्य करके दुर्योधन को तुम्हारे बन्धन से छुडाना है । अतः तुम उसे बन्धनमुक्त कर दो । अगर यो नही करना चाहते तो युद्ध करो । अगर तुमने हमारे हित के लिए ही उसे कैद कर रखा हो तो मेरा यही कहना है कि उसे छोड़ दो । मुझे उसकी करतूते नही देखनी हैं, मुझे अपने भाई की आज्ञा का पालन करना है । अतएव उसे छोड दो ।

आखिर अर्जुन दुर्योधन को छुडा लाया । युधिष्ठिर अर्जुन पर बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—'तू मेरा सच्चा भाई है ।' उन्होने द्रौपदी से कहा—देखो, इस जगल मे कैसा मगल है ! इस प्रकार युधिष्ठिर ने जगल मे और सकट के समय में धर्म का पालन किया था । मगर इस पर से आप अपने विषय मे विचार करो कि आप उपाश्रय में धर्म का पालन करने आते हैं या अपने अभिमान का पोषण करने आते है ? धर्म स्थान मे प्रवेश करते ही "निस्सही-निस्सही" कह कर अभिमान, क्रोध आदि का निषेध करना चाहिए । अगर इनका निषेध किये बिना ही धर्मस्थान मे आते हो तो कहना चाहिए कि आप अभी धर्मतत्त्व से दूर है ।

भीम ने युधिष्ठिर से कहा—'गन्धर्व द्वारा दुर्योधन के कैद होने से तो हमें प्रसन्नता हुई थी । आप न होते तो हम इसी पाप मे पडते रहते ।' भीम का यह कथन सुनकर

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—'यह तो ठीक है, मगर अर्जुन जैसा भाई न होता तो मेरी आज्ञा कौन मानता ?'

तुम भी छद्मस्थ हो। तुम्हारे अन्त:करण मे इस प्रकार का पाप आना सम्भव है। फिर भी आज्ञा शिरोधार्य करने का ध्यान तो तुम्हे भी रखना चाहिए। भगवान् की आज्ञा है कि सब को अपना मित्र समझो। अपने अपराध के लिए क्षमा मागो और दूसरो के अपराध क्षमा कर दो। इस आज्ञा का पालन करने मे ऐसी पॉलिसी का उपयोग नही करना चाहिए कि जिनके साथ लड़ाई-झगडा किया हो, उनसे तो क्षमा मागी नही और दूसरो से केवल व्यवहार के लिए क्षमा-याचना करो। सच्ची क्षमा मांगने का और क्षमा देने का यह सच्चा मार्ग नही है। शत्रु हो या मित्र, सब पर क्षमाभाव रखना ही महावीर भगवान् का महामार्ग है। भगवान् के इस महामार्ग पर चलोगे तो आपका कल्याण होगा। आज युधिष्ठिर तो रहे नही मगर उनकी कही बात रह गई है। इस बात को तुम ध्यान मे रखो और जीवन व्यवहार मे उतारो ॥

●

७९—अमर मरंता मैंने देखे !

एक सेठ का नाम ठनठनपाल था। नाम ठनठनपाल होने पर भी वह बहुत धनवान् था और उसकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा भी थी।

एक दिन इस मजाक से उसे बहुत बुरा लगा। वह उदास होकर बैठी थी कि उसी समय सेठ ठनठनपाल आ गये। अपनी पत्नी को उदास देखकर उन्होने पूछा—'आज उदास क्यो दिखाई देती हो ? सेठानी बोली—तुम्हारा यह नाम कैसा विचित्र है। तुम्हारे नाम के कारण पडोसिने हसी करती है। तुम अपना नाम बदल क्यो नही डालते ? ठन-ठनपाल ने कहा—मेरे नाम से सभी लेनदेन चल रहा है। अब नाम बदल लेना सरल बात नही है। नाम कैसे बदल सकता हू ? उसको पत्नी बोली—जैसे बने तैसे तुम्हे यह नाम तो बदलना ही पडेगा। नाम न बदला तो मैं अपने मायके चली जाऊगी। ठनठनपाल ने कहा—मायके जाना है तो अभी चली जा, मगर मै अपना नाम नही बदल सकता। तेरे जैसी हठीली स्त्री मायके चली जाए तो हर्ज भी क्या है?

ठनठनपाल की स्त्री रूठ कर मायके चली। वह नगर के द्वार पर पहुची तो लोग एक मुर्दे को उठाये वहा से निकले। सेठानी ने उनसे पूछा—'यह कौन मर गया है ?' लोगो ने उत्तर दिया—'अमरचन्द भाई का देहान्त हो गया है।' यह सुनकर सेठानी सोचने लगी—'अमरचन्द नाम होने पर भी मर गया।' उसके पैर वही भारी हो गये। फिर भी वह हिम्मत करके आगे बढी। कुछ आगे जाने पर उसे एक ग्वाला मिला। सेठानी ने उसका नाम पूछा तो उत्तर मिला—मेरा नाम धनपाल है। सेठानी सोचने लगी—यह धनपाल है या पशुपाल ? सोच-विचार में डूबी सेठानी थोड़ी और आगे बढी। वहा एक स्त्री छाणा (कडा) बीनती दिखाई दी। सेठानी ने उससे पूछा—बहिन, तुम्हारा नाम क्या है ?

उसने उत्तर दिया—लक्ष्मीबाई। यह नाम सुनकर सेठानी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी—नाम है लक्ष्मीबाई और बीनती फिरती है कडा ?

यह सब विचित्र घटनाए देखकर सेठानी का दिमाग ठिकाने आया। वह घर पर लौट आई। सेठ ने कहा—आज तो कुछ समझ आ गई दिखती है। मगर कल जैसा तूफान तो नही मचाओगी ? सेठानी बोली—अब मैं समझ गई हू। सेठ के पूछने पर वह बोली—

अमर मरता मैंने देखे, ढोर चरावे धनपाल।
लक्ष्मी छाणा बीनती, धन-धन ठनठनपाल॥

□

८०—ललितांग

किसी सेठ के ललिताग नामक पुत्र था। ललिताग अपने नाम के अनुसार सुन्दर और गुणवान् था। एक बार वह कही बाहर जा रहा था कि अपने महल मे से रानी ने उसे देखा। ललितांग को देखकर रानी सोचने लगी—'यह कुमार बड़ा ही ललित—सुन्दर है। ऐसे सुन्दर पुरुष के बिना नारी का जीवन निरर्थक है। किसी भी उपाय से इसे प्राप्त

प्राचीन काल में श्रीमन्त, श्रीमन्त होने पर भी अपना कोई काम छोड नही बैठते थे। आज जरा-सी लक्ष्मी प्राप्त होते ही लोग सब काम छोडछाड कर बैठे रहते है और ऐश करने मे ही अपनी श्रीमन्ताई समझते हैं।

ठनठनपाल सेठ की पत्नी सेठानी होने पर भी पानी भरना, आटा पीसना, कूटना आदि सब घरू काम-काज अपने हाथो करती थी। अपने हाथ से किया हुआ काम जितना अच्छा होता है, उतना अच्छा दूसरे के हाथ से करवाने पर नही होता। परन्तु आजकल बहुत-से लोग धर्म-ध्यान करने के बहाने हाथ से घर का काम करना छोड देते हैं। उन्हे यह विचार नही आता कि धर्मध्यान करने वाला व्यक्ति क्या कभी आलसी बन सकता है? जो कार्य अपने ही हाथ से भली-भाति हो सकता है, शास्त्रकार उसके त्याग करने का आदेश नही देते। तुम स्वयं जो काम करोगे, विवेकपूर्वक करोगे, दूसरे से ऐसे विवेक की आशा कैसे रखी जा सकती है? इस प्रकार अपने हाथ से विवेकपूर्वक किये गये काम मे एकात लाभ ही है। स्वय आलसी बनकर दूसरे से काम कराने मे विवेक नही रहता और परिणाम-स्वरूप हानि होती है।

आजकल बिजली द्वारा चलने वाली चक्कियां बहुत प्रचलित हो गई हैं और हाथ की चक्कियां बन्द होती जा रही हैं। क्या घर की चक्किया बन्द होने के कारण यह कहा जा सकता है कि आश्रव थोडा हो गया है? घर की चक्कियां बन्द करने से तुम निराश्रवी नहीं हुए हो परन्तु उलटे महापाप मे पड गये हो। घर की चक्की और बिजली

की चक्की का अन्तर देखोगे तो अवश्य मालूम हो जायेगा कि तुम किस महापाप मे पड गये हो । विचार करोगे तो हाथ की चक्की और बिजली की चक्की मे राई और पहाड जितना अन्तर प्रतीत होगा । बिजली से चलने वाली चक्की मे व्यवहार और निश्चय—दोनो की हानि हुई है और साथ ही साथ स्वास्थ्य को भी हानि हुई है और हो रही है । पुराने लोग मानते हैं कि डाकिनी लग जाती है और जिस पर उसकी नजर पड जाती है, उसका वह सत्व चूस लेती है । डाकिनी की यह बात तो गलत भी हो सकती है परन्तु बिजली से चलने वाली चक्की तो डाकिनी से भी बढकर है । वह अनाज का सत्व चूस लेती है, यह तो सभी जानते हैं । बिजली की चक्की मे पिसाया हुआ आटा कितना ज्यादा गरम होता है, यह देखने पर विदित होगा कि आटे का सत्व भस्म हो गया है ।

साराश यह है कि लोग अपने हाथ से काम न करके दूसरो से काम कराने में अपनी महत्ता मानते हैं । उन्हे इस बात का विचार ही नही कि अपने हाथ से और दूसरे के हाथ से काम करने कराने मे कितना ज्यादा अन्तर है ।

ठनठनपाल श्रीमान् था, फिर भी उसकी पत्नी पीसना कूटना आदि काम अपने हाथ ही से करती थी । किन्तु जब वह अपनी पडोसिनो से मिलती तो पडोसिने उसकी हसी करने के लिए कहती—'पधारो श्रीमती ठनठनपाल जी !' ठनठनपाल जी की पत्नी को यह मजाक रुचिकर नही होता था ।

एक दिन इस मजाक से उसे बहुत बुरा लगा । वह उदास होकर बैठी थी कि उसी समय सेठ ठनठनपाल आ गये । अपनी पत्नी को उदास देखकर उन्होने पूछा—'आज उदास क्यो दिखाई देती हो ? सेठानी बोली—तुम्हारा यह नाम कैसा विचित्र है ! तुम्हारे नाम के कारण पडोसिने हसी करती है । तुम अपना नाम बदल क्यों नही डालते ? ठन-ठनपाल ने कहा—मेरे नाम से सभी लेनदेन चल रहा है । अब नाम बदल लेना सरल बात नही है । नाम कैसे बदल सकता हू ? उसकी पत्नी बोली—जैसे बने तैसे तुम्हे यह नाम तो बदलना ही पडेगा । नाम न बदला तो मैं अपने मायके चली जाऊगी । ठनठनपाल ने कहा—मायके जाना है तो अभी चली जा, मगर मैं अपना नाम नही बदल सकता । तेरे जैसी हठीली स्त्री मायके चली जाए तो हर्ज भी क्या है?

ठनठनपाल की स्त्री रूठ कर मायके चली । वह नगर के द्वार पर पहुची तो लोग एक मुर्दे को उठाये वहा से निकले । सेठानी ने उनसे पूछा—'यह कौन मर गया है ?' लोगो ने उत्तर दिया—'अमरचन्द भाई का देहान्त हो गया है ।' यह सुनकर सेठानी सोचने लगी—'अमरचन्द नाम होने पर भी मर गया!' उसके पैर वही भारी हो गये । फिर भी वह हिम्मत करके आगे बढी । कुछ आगे जाने पर उसे एक ग्वाला मिला । सेठानी ने उसका नाम पूछा तो उत्तर मिला—मेरा नाम धनपाल है । सेठानी सोचने लगी—यह धनपाल है या पशुपाल ? सोच-विचार में डूबी सेठानी थोडी और आगे बढी । वहा एक स्त्री छाणा (कडा) बीनती दिखाई दी । सेठानी ने उससे पूछा—बहिन, तुम्हारा नाम क्या है ?

उसने उत्तर दिया—लक्ष्मीबाई । यह नाम सुनकर सेठानी को बडा आश्चर्य हुआ । वह सोचने लगी—नाम है लक्ष्मी-बाई और बीनती फिरती है कडा ?

यह सब विचित्र घटनाए देखकर सेठानी का दिमाग ठिकाने आया । वह घर पर लौट आई । सेठ ने कहा—आज तो कुछ समझ आ गई दिखती है । मगर कल जैसा तूफान तो नही मचाओगी ? सेठानी बोली—अब मैं समझ गई हू । सेठ के पूछने पर वह बोली—

अमर मरता मैंने देखे, ढोर चरावे धनपाल ।
लक्ष्मी छाणा बीनती, धन-धन ठनठनपाल ।।

□

८०—ललितांग

किसी सेठ के ललिताग नामक पुत्र था । ललिताग अपने नाम के अनुसार सुन्दर और गुणवान् था । एक बार वह कही बाहर जा रहा था कि अपने महल मे से रानी ने उसे देखा । ललिताग को देखकर रानी सोचने लगी—'यह कुमार बडा ही ललित-सुन्दर है । ऐसे सुन्दर पुरुष के बिना नारी का जीवन निरर्थक है । किसी भी उपाय से इसे प्राप्त

करना ही चाहिए।' इस प्रकार विचार कर रानी ने अपनी एक विश्वासपात्र दासी भेजी और उसे गुप्त मार्ग द्वारा महल मे बुलाया। रानी ने अपनी मादकतापूर्ण कामदृष्टि से ललिताग को मुग्ध कर लिया। रानी का सौदर्य देखकर ललिताग भी उस पर मोहित हो गया। वह इतना मुग्ध हुआ कि अपने घरबार का भी ख्याल उसे न रहा।

ललिताग को अपने कब्जे मे करके रानी ने उसके साथ विषयभोग करने की तैयारी की। इसी समय रानी को महल मे राजा के आगमन की सूचना मिली। यह सूचना मिलते ही रानी का मुह उतर गया। रानी की अचानक यह उदासी देखकर ललिताग ने पूछा—'अभी-अभी तो मेरे साथ तुम हस बोल रही थी और अब एकाएक उदास हो गई। इसका क्या कारण है?' रानी ने उत्तर दिया—'उदासी का कारण यह है कि राजा महल में आ रहा है। अब क्या करना चाहिये सो कुछ नही सूझता।' राजा के महल मे आने के समाचार सुनते ही ललिताग भय से कापने लगा। उसने दीनतापूर्वक रानी से कहा—'मुझे जल्दी कही न कही छिपाओ। राजा ने मुझे देख लिया तो शरीर के टुकड़े टुकडे करवा डालेगा। क्षत्रिय का और उसमे भी राजा का कोप बडा ही भयकर होता है।' रानी बोली—इस समय तुम्हे कहा छिपाऊ? ऐसी कोई जगह भी तो नही दिखती, जहा छिपा सकू। अलबत्ता, पाखाने मे छिपाने लायक थोडी जगह है। राजा पाखाने की तरफ नजर भी नही करेगा और जब वह चला जायगा तो मैं तुम्हे बाहर निकाल लूगी।

पाखाने मे रहने की इच्छा किसे होगी ? किसी को नही । तो फिर सुगन्ध मे रहने वाले ललितांग को पाखाने में रहना क्यो रुचिकर हुआ ? इसका एकमात्र कारण था भय । पाप में निर्भयता कहा ? ललितांग पापजन्य भय के कारण पाखाने मे छिपने के लिए विवश हो गया। रानी ने अपनी दासी से कहा—'इन्हे पाखाने मे छिपा आ ।' रानी की आज्ञा से दासी ने ललितांग के पैरो मे रस्सी बाधकर उसे उल्टा लटका दिया। जब ललितांग को पाखाने मे उलटा लटकाया गया होगा तो कौन जाने उसकी क्या दशा हुई होगी ।

राजा, रानी के महल मे आया और रानी के साथ कुछ खान-पान करके लौट गया । रानी को या तो ललितांग की कायरता को देखकर घृणा हुई या वह उसे भूल गई अथवा और कोई कारण हुआ, जिससे उसने पाखाने मे से ललितांग को नही निकाला। ललितांग को लटके-लटके बहुत समय व्यतीत हो गया ।

पानी का निकास उसी पाखाने मे होकर था । वर्षा होने के कारण पाखाने मे जो पानी पहुचा, उससे सूखा नल भी गीला हो गया और नीचे गिरने लगा । ललितांग उस मल से लिप्त हो गया । ऐसी मुसीबत मे फसा हुआ ललितांग आखिर डोरी टूटने से नीचे गिर पडा और बेहोश हो गया ।

मेहतरानी, जो राजा और ललितांग के भी घर काम करती थी, पाखाना साफ करने आई। जैसे ही वह पाखाना

साफ करने भीतर घुसी कि ललितांग नजर आया । उसे देखते ही वह पहचान गई । उसने सोचा—हमारे सेठ का कुमार यह ललितांग और यहा पाखाने में पडा है ! वह उलटे पाव सेठ के घर दौडी और सेठ से बोली—तुम जिसकी चिन्ता करते थे, वह ललिताग कुमार तो राजा के पाखाने मे पडा है ! सेठ सोचने लगा—ललिताग वहा किस प्रकार पहुचा होगा ! खैर, जो हुआ सो हुआ, मगर अभी तो उसे शीघ्र ही घर लाना उचित है । सेठ कुछ आदमियो को साथ ले वहां पहुचा और ललिताग को घर उठा लाया । उस समय ललिताग की स्थिति अत्यन्त नाजुक थी, पर यथोचित उपचार कराने से वह मरते-मरते बच गया । धीरे-धीरे स्वास्थ्य-लाभ करके उसने अपनी पूर्व-स्थिति प्राप्त कर ली ।

स्वस्थ होने के पश्चात् ललिताग घोडा गाडी मे बैठकर घूमने निकला । फिर रानी की दृष्टि ललिताग पर जा पडी । उसे देखते ही वह सोचने लगी—मैंने बहुत भूल की । यह पुरुष तो भोगने योग्य है । यह सोचकर रानी ने फिर अपनी दासी उसके पास भेजी और महल मे आने के लिये कहलाया । मगर ललिताग, जो महान् दु:ख एक बार भुगत चुका था, क्या दूसरी बार रानी के पास जाने को तैयार हो सकता था ? इस विषय मे तुम्हारी सलाह पूछी जाती तो तुम क्या सलाह देते ? नि:सन्देह प्रत्येक बुद्धिमान् पुरुष यही सलाह देगा कि जहा इतना भयकर कष्ट भोगना पडता है वहा हर्गिज नही जाना चाहिये ।

ललिताग कुमार को यह सलाह देने के लिए आप

तैयार हैं, मगर जरा अपने सम्बन्ध मे भी तो विचार कर देखो ! ललितांग को जो काम न करने की सलाह दे रहे हो, वही काम आप स्वय तो नही करते हैं ? आपने अनेको वार इस प्रकार के कष्ट भुगते हैं फिर भी आपकी दशा और दिशा नही बदली । क्या आप माता के पेट मे उलटे नही लटके ? क्या वहा मल-मूत्र नही है ? गर्भ मे आप अपनी माता के आहार मे से रसवाहिनी नाडी द्वारा थोडा-सा रस लेते थे । श्री भगवती सूत्र मे एक प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् ने फर्माया है कि गर्भ का बालक माता के ग्रहण किये हुए आहार मे से रसवाहिनी नाडी द्वारा थोड़ा आहार अर्थात् एक देश का आहार ग्रहण करता है । ऐसा कष्ट थोड़े-बहुत दिन नही, नौ महीने तक भोगा है । इतना ही नही, कभी-कभी तो बारह वर्ष या चौबीस वर्ष तक भी ऐसा कष्ट भोगना पडा है यह कष्ट क्या एक डोरी के सहारे लटकने के समान नही है ? गर्भ मे बालक भी एक नाड़ी के सहारे ही लटकता रहता है, फिर किसी पुण्य के प्रताप से या किसी साधन द्वारा उसका जन्म होता है । गर्भ से बाहर निकलते समय अगर सार-सम्भाल करने वाला कोई न हुआ तो कैसी विडम्बना होती है ? आज आप यह अभिमान करते हैं कि माता-पिता ने हमारे लिए क्या किया है? किन्तु तनिक अपनी गर्भावस्था या बाल्यावस्था के विषय में विचार करो कि उस समय तुम्हारी क्या हालात थी ? अगर माता-पिता ने उस समय आपको सम्भाला न होता तो कैसी दशा होती ?

माता-पिता के उपकार का विचार आने पर मुझे एक पुरानी कविता याद आ जाती है:—

डगमग पग टिकतो नही, खाई न सकतो खाज ।
उठी न सकतो आप थी, लेश हती नाहि लाज ।।
ते अवसर आणी दया, बालक ने मा–बाप ।
सुख आपे दुःख वेठीने, ते उपकार अमाप ।।
कोई करे एवा समै, बे घडी एक अरदास ।
आखी उमर थइ रहे, ते नर नो नर दास ।।

गर्भावस्था मे या बाल्यावस्था मे घडी-दो घड़ी सहायता करने वाले सहायक का उपकार मनुष्य जितना माने, उतना ही थोडा है तो फिर जिन माता–पिता ने ऐसे समय मे सब प्रकार की सहायता और सुविधा प्रदान की है उनका कितना अपरिमित उपकार है, इस बात का जरा विचार तो कीजिए ।

गर्भस्थान के कारागार से हम लोग बाहर निकले और माता-पिता की छत्रछाया तले सुखपूर्वक बढते–बढते इस स्थिति मे आये है । यह स्थिति पाकर हमारा कर्त्तव्य क्या है, इस बात का जरा गहराई से विचार करना चाहिए। हम जिस कैदखाने मे बन्द रह चुके हैं फिर उसी मे बन्द होना उचित है अथवा ऐसा मार्ग खोजना उचित है कि फिर कभी उसमे बन्द न होना पडे ?

८१-सुख में दुःख

धर्म के प्रति लोगो की अश्रद्धा क्यो उत्पन्न होती है? इसका सामान्यत कारण यह है कि लोग जिस साता-सुख मे फस जाते हैं, उन सुखो के पीछे रहे हुए विकारो को या दु खो को वह देखते नही और इसी कारण धर्म पर उनकी श्रद्धा नही जमती । अतएव सबसे पहले यह देखना चाहिए कि धर्म के द्वारा जो सुख–साता चाही जाती है, उसके पीछे सुख रहा हुआ है या दु ख ? सासारिक सुखो के पीछे क्या छिपा हुआ है, यह देखने से प्रतीत होता है कि वहा एकात दु ख ही दु ख है । इस प्रकार दु.ख की प्रतीति होने पर फल–स्वरूप धर्म पर श्रद्धा उत्पन्न होगी । यह बात विशेषतया स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण लीजिए, जिस से सब सरलतापूर्वक समझ सके ।

एक नगर में दो मित्र रहते थे । उनमे से एक मित्र धर्म पर श्रद्धा रखता था और सांसारिक सुखो को दु·खरूप मानता था । दूसरा मित्र संसार के भोगविलास को सुखरूप समझता था कि संसार मे एक भी ऐसी वस्तु नही, जो दु.खरहित हो । तब दूसरा मित्र पहले से कहता– भाई साहब ! संसार मे उत्तम भोजन पान, नाचरग और स्त्री–भोग मे जैसा सुख है, वैसा सुख और कही भी नही है । इस प्रकार दोनों एक-दूसरे की भूल बतलाया करते थे । अन्त मे एक बार पहले मित्र ने कहा—इसका निर्णय करने के लिए मैं एक उपाय बतलाता हू । आप राजा के पास

जाओ और उससे कहो—मैं आपको अमुक भेट देना चाहता हूं। आप वह भेट लेकर दो घडी के लिए पाखाने मे बैठ जाइए। क्या राजा तुम्हारी यह प्रार्थना स्वीकार करेगा ? दूसरे मित्र ने कहा—नही। तब पहले मित्र ने प्रश्न किया—'राजा तुम्हारी प्रार्थना क्यो स्वीकार नही करेगा ? क्या धन मे सुख नहीं है ?' दूसरे मित्र ने उत्तर दिया—'धन मे सुख है, फिर भी राजा ऐसी शर्त मन्जूर नही कर सकता । वह उल्टा मुझको मूर्ख बतलायेगा । वह कहेगा, कही इस भेंट के खातिर पाखाने मे जाया जाता है ! मै ऐसा करूगा तो दुनिया मुझे मूर्ख कहेगी ।

'राजा धन की भेट पाकर के भी जिस पाखाने मे बैठने के लिए तैयार नही होता, उसी मे बिठलाने का काम मैं सरलता से ही कर सकता हू ।' यह कहकर पहला मित्र स्वादिष्ट चूर्ण तैयार करके राजा के पास ले गया । राजा को उसने चूर्ण बतलाया । राजा ने चूर्ण चखा । देखा कि चूर्ण स्वादिष्ट है तो उसकी तबीयत खुश हो गई । स्वादिष्ट होने के साथ चूर्ण मे एक गुण यह भी था कि उसके खाने से दस्त जल्दी और साफ लगता था । स्वादिष्ट होने के कारण राजा ने चूर्ण चख तो लिया, मगर उसके खाने से थोड़ी ही देर बाद उसे शौच की हाजत हुई । राजा उठकर पाखाने जाने लगा । तब चूर्ण वाले मित्र ने कहा—'महाराज ! विराजिये, कहा पधारते है ? राजा बोला—पाखाने जाना है ।' उसने उत्तर दिया—'महाराज ! पाखाना कैसा दुर्गन्ध वाला स्थान है ! आप महाराज है । सुगन्धमय वातावरण मे रहने वाले है । फिर उस सड़ने - वाले पाखाने मे

क्यो पधारते हैं ?' राजा ने कहा—तू तो महामूर्ख मालूम होता है । दुर्गन्ध के बिना कही काम भी चलता है ? शरीर का ऊपरी भाग कैसा ही क्यो न हो, मगर उसके भीतर रक्त मांस आदि जो कुछ है, वह सब तो दुर्गन्ध वाला ही है । इसी दुर्गन्ध के आधार पर शरीर टिका हुआ है । यह सुनकर पहले मित्र ने कहा—ठीक है । जब आप पाखाने मे गये बिना रह ही नही सकते तो आपसे कुछ अधिक कहना बेकार ही है ।

पहले मित्र ने यह सब दूसरे मित्र को बतलाते हुए कहा—तुम हजारो रुपयो की भेट देने को तैयार थे, फिर भी आशा नही थी कि राजा पाखाने मे बैठने को तैयार होता लेकिन मैने पाखाने में न जाने के लिए राजा से प्रार्थना की, फिर भी राजा रुका नही । इसका क्या कारज है ? इसका एकमात्र कारण चूर्ण है । राजा ने चूर्ण न खाया होता तो इस समय वह पाखाने मे न गया होता । इस प्रकार ससार मे एक भी ऐसा पदार्थ नही है, जिसके पीछे दुःख न छिपा हो ।' पहले मित्र की इस युक्ति से दूसरा मित्र समझ गया कि जिसे वह सुख माने बैठा है, उस सुख के पीछे भी दु.ख रहा हुआ है ।

●

८२—विशाल दृष्टि

पहले के लोग आजकल के लोगो की भाति सकुचित विचार के नही थे । आज तो जाति के नाम पर निकम्मे बन्धन खडे किये गये हैं । प्राचीन काल में ऐसे बन्धन नही थे । उस समय तो वर कन्या की योग्यता और समानता देखी जाती थी । आज यह देखा जाता है कि वर के पास धन है या नही ?—अगर धन हो तो क्या साठ वर्ष का धनिक वृद्ध भी छोटी-सी कन्या के साथ विवाह करने को तैयार होता नही देखा जाता ? यह क्या कन्या के ऊपर अत्याचार-अन्याय नही है ? लोक-लज्जा के कारण या किसी अन्य कारण से तुम्हे इस विषय मे कुछ कहते संकोच होता होगा, लेकिन समाज का अन्न ग्रहण करने के कारण मुझे तो समाज के हित के लिए बोलना ही पडेगा ! इस-लिए मैं तुमसे कहता हूं—इस प्रकार के वृद्ध विवाह, अयोग्य विवाह, अनमेल विवाह आदि समाजनाशक विवाहो को प्रत्येक उचित उपाय से रोको । समाज मे इस प्रकार के जो अन्याय हो रहे है, उन्हे अगर तुम नही रोक सकते तो कम से कम इतना करो कि अपने आपको इन अन्यायो से जुदा रखो । अन्याय के इन कार्यों मे सहभागी मत बनो । अन्याय युक्त कार्यों से अपने आपको अलग न रख सकने वाला और पुद्‌गलो के लोभ पर विजय प्राप्त न करने वाला—पुद्‌गलो का लोभी मनुष्य अत्यन्त शिथिल है । ऐसा ढीला मनुष्य धर्म का पालन किस प्रकार कर सकता है ?

पालित श्रावक का विवाह अन्तर्देशीय (परदेशीय)

और अन्तर्जातीय (परजातीय) कन्या के साथ हुआ। कुछ समय पश्चात् अपनी उस नवविवाहिता पत्नी को लेकर समुद्रमार्ग से पालित अपने घर की ओर रवाना हुआ। पलित की वह पत्नी गर्भवती थी। उसने समुद्र के अन्दर जहाज में ही पुत्र का प्रसव का किया।

आज लोग कहते हैं कि आधुनिक जहाजो मे ही इस प्रकार की सुविधाएं होती है, मगर पुराने वर्णनो से प्रतीत होता है कि उस समय की जहाजो मे कितनी सुन्दर सुविधाएं होती थी। प्रसवकाल अत्यन्त कठिन होता है, लेकिन प्राचीन काल के लोग जहाज मे भी स्थिति को सम्भलने मे समर्थ होते थे।

पालित का पुत्र समुद्र मे जन्मा, इसलिए उसका नाम समुद्रपाल रखा गया। पालित अपनी पत्नी और पुत्र को लेकर घर पहुचा। पालित ने समुद्रपाल को बहत्तर कलाओ मे पण्डित बनाया।

वही सच्चे माता-पिता हैं, जो अपनी सन्तानो को कला-शिक्षण द्वारा शिक्षित और संस्कारी बनाते हैं। कहावत है—'काचा सूत वैसा पूत।' अर्थात् बालक कच्चे सूत के समान हैं। जैसा बनाना हो वैसा ही बना सकते हैं। आप वस्त्र पहनते है, किन्तु वस्त्र की जगह यदि सूत लपेट लें तो क्या ठीक कहलाएगा ? नही। इसी प्रकार बालक कच्चे सूत के समान हैं। जैसा चाहो, उन्हे वैसा ही बना लो। अगर आप बालक को जन्म देकर ही रह गये और उन्हें

संस्कारी नही बनाया तो वे कच्चे सूत की तरह ही निकम्मे रह जाएंगे।

प्राचील काल के लोग अपने बालक को बहत्तर कला के कोविद और शास्त्र में विशारद बनाते थे। ऐसा करके वह माता-पिता की हैसियत से अपना कर्त्तव्य पूरा करते थे। लेकिन आज कितने मा-बाप ऐसे हैं जो अपने कर्त्तव्य का पूरी तरह पालन करते हैं ? पहले के लोग अपनी सन्तान को, जीवन की आवश्यकताएं पूर्ण करने के लिए, बहत्तर कलाएं सिखलाते थे। मगर आज कितने लोग हैं जो अपने ही जीवन की आवश्यकताएं पूर्ण कर सकते है ? आज मोटर में बैठकर मटरगस्ती करने वाले तो हैं मगर ऐसे कितने हैं जो स्वय मोटर बना सकते हो या मोटर सुधार भी सकते हों ? जो मनुष्य स्वय किसी चीज का बनाना नही जानता, वह उसके लिए पराधीन है। आप भोजन करते है पर क्या भोजन बनाना भी जानते हैं ? अगर नही जानते तो क्या आप पराधीन नही हैं ? पहले बहत्तर कलाए सिखलाई जाती थी, उनमें अन्नकला भी थी। अन्नकला के अन्तर्गत यह भी सिखलाया जाता था कि अन्न किस प्रकार पकाना और खाना चाहिए ?

लोग कहते हैं कि जैन शास्त्र मे सिर्फ त्याग ही बतलाया है, लेकिन जैन शास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट दिखाई देगा कि जैन शास्त्र जीवन को दु.खी नही वरन् सुखी बनाने का राजमार्ग प्रदर्शित करता है। जैन शास्त्र बतलाता है कि जीवन किस प्रकार सास्कारिक और

सुखमय बनाया जा सकता है और किस प्रकार आत्मकल्याण-साधन किया जा सकता है ?

समुद्रपाल युवक हुआ। पालित ने योग्य कन्या के साथ उसका विवाह कराया। आज के लोग अपनी सन्तान का विवाह छुटपन में गुडिया-गुड्डा की भांति कर देते हैं। वृद्ध विवाह की अपेक्षा भी बाल-विवाह को मैं अधिक भयंकर समझता हूं। बाल-विवाह से देश, समाज और धर्म को अत्यन्त हानि पहुचती है। वह हानि कितनी और किस प्रकार पहुंचती है ! वह बतलाने का अभी समय नही है। किसी अन्य अवसर पर इस विषय मे मैं अपने विचार प्रकट करूंगा।

समुद्रपाल का विवाह रूपवती और सुशीला कन्या के साथ किया गया था। एक दिन समुद्रपाल अपने भवन के झरोखे मे बैठा था। वहा उसने देखा—

कालो मुख कियो चोर नो, फेरी नगर मझार।
समुद्रपाल तिन जोइने, लीनो सजम–भार।
जीवा चतुर सुजान, भज लो नी भगवान्,
मुक्ति रो मारग दोयलो, तज दो नी अभिमान।

समुद्रपाल ने झरोखे मे बैठे-बैठे देखा कि एक मनुष्य का मुंह काला करके उसे फासी पर चढने का पौशाक पहनाया गया है। उसके आगे बाजे बज रहे हैं और बहुत से लोग उसके साथ चल रहे है। फिर भी वह मनुष्य उदास है। वह दृश्य देखकर समुद्रपाल विचारने लगा—यह मनुष्य

उदास क्यो हैं ? और इसे इस प्रकार क्यों ले जाया जा रहा है ? तलाश करने पर मालूम हुआ कि उसने इन्द्रियो के वश होकर राज्य का अपराध किया है और राजा ने उसे फासी पर लटका देने का दण्ड दिया है। यह जानकर समुद्रपाल फिर विचार करने लगा—इन्द्रियो के वश होने के कारण यह पुरुष फासी पर लटकाया जा रहा है। वास्तव मे इन्द्रियो के भोग ऐसे ही है! इन्द्रियो के भोग, इन सासारिक पदार्थों ने ही मेरे इस भाई को फासी पर चढ़ाया है। इन पदार्थों की वदौलत कही मेरी भी यह दशा न हो जाय! अतएव मेरे लिये यही उचित है कि मैं पहले ही इन्द्रिय-भोग के सासारिक पदार्थों का परित्याग कर दू ।'

इस प्रकार विचार करते-करते समुद्रपाल वैराग्य के के रग मे रग गया। उसने सयम स्वीकार कर लिया। जब धर्म पर श्रद्धा उत्पन्न होती है तब सासारिक वस्तु का मूल स्वरूप खोजा जाता है और फलस्वरूप सासारिक पदार्थो के प्रति वैराग्य उत्पन्न हुए बिना नही रहता और जब वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, तब सयम स्वीकार करने मे भी देर नही लगती। सांसारिक पदार्थ मनुष्य को किस प्रकार ससार मे फसाते है और दु.ख देते है, यह बात समझने योग्य है।

□

८३-मेघ की नम्रता

सब जीव सद्गति पाने की ही अभिलाषा करते हैं, परन्तु इस अभिलाषा के साथ विनम्र बनने की इच्छा नहीं करते। यद्यपि विनम्रता धारण करने मे किसी का किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नही है, फिर भी आत्मा धर्म के समय अकड कर रहता है। आत्मा किस प्रकार अकडबाज बन जाता है, यह बात महावीर स्वामी ने शास्त्र मे बतलाई है।

ज्ञातासूत्र मे बतलाया गया है कि मेघकुमार ने भगवान् महावीर के निकट दीक्षा अगीकार की थी। वह सब से छोटे साधु थे, अत उन्हे सोने के लिये रात्रि मे सबके अन्त का स्थान मिला। मेघकुमार की शय्या अन्त मे होने के कारण रात्रि मे उनकी शय्या के पास से साधु बाहर आते-जाते तो उनके पैर की ठोकर मेघकुमार को लगती। उन्हें आराम से नीद नही आई। साधुओ की ठोकर लगने के कारण नीद न आने से वह सोचने लगे—'यह तो जान-बूझकर नरक की यातना भोगना है। यहा मेरी कोई कद्र ही नही करता। मैं जब राजकुमार था, तब यही साधु मेरी कद्र करते थे। जब मैं साधु हो गया हू तो कोई परवाह ही नही करता। उलटी उनकी ठोकरे खानी पड रही है। ऐसा साधुपन मुझसे नही पलने का। बस सुबह होते ही, यह साधुपना छोडकर मैं घर चल दूंगा। लेकिन चुपचाप चला जाना ठीक न होगा। जिनके निकट मैंने दीक्षा अगीकार की है, उन भगवान् की आज्ञा लेकर उन्हे यह उपकरण सौंपकर अपने घर का रास्ता लूगा।

मेघकुमार ने रात के समय यह विचार किया और सुवह होते ही वह भगवान् के पास पहुचा। भगवान् तो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे, उनसे क्या छुपा था ? वह पहले से ही सब जानते थे। उन्होने अपने पास आये मेघकुमार से कहा—मेघ ! रात्रि के समय साधुओ की ठोकरो के परीषह से घवरा कर तुमने साधुपन छोडने और घर जाने का विचार किया है ? इसलिए तुम मेरे पास आये हो ?'

मेघकुमार कुलीन था। वह मन ही मन कहने लगा— 'अच्छा ही हुआ कि मै भगवान् के पास चला आया। भगवान् के पास आये बिना ही, यदि चला गया होता तो वहुत बुरी बात होती। भगवान् तो घटघट की जानते है। मेरे कहने से पहले ही उन्होने मेरे मन की बात कह दी है।

इस प्रकार विचार करते हुए मेघकुमार ने भगवान् से कहा—'भगवन् ! आपका कथन सत्य है। मुझसे भूल हो गई है।'

भगवान् ने कहा—'मेघ ! आज तुम इतने से कष्ट से घबरा गया ! इससे पहले वाले भव में तुमने कैसे-कैसे कष्ट सहन किये है, इस बात पर विचार करो। इससे पहले भव मे तुम हाथी थे। हाथी के उस भव में दावानल से बचाने के लिये तुमने घास-फूस आदि हटा कर एक मण्डल तैयार किया था और जगल मे दावानल सुलगने पर जब बहुत से जीव अपने प्राण बचाने के उद्देश्य से तुम्हारे बनाये मण्डल में आने लगे, तब तुमने प्राणियो पर करुणा करके

उन्हे स्थान दिया था । इतना ही नही, खुजली आने पर जब तुमने अपना एक पैर ऊपर उठाया तो एक खरगोश तुम्हारे पैर से खाली हुई जगह मे आ बैठा । उस खरगोश पर दयाभाव लाकर तुमने ढाई दिन तक अपना पैर ऊपर उठाये रखा था । इस नम्रता और करुणा की बदौलत ही तुम्हे यह मनुष्य-भव प्राप्त हुआ है । हाथी के भव मे तो तुमने इतनी नम्रता और करुणा धारण की और इस भव मे साधारण से कष्ट सहन न कर सकने के कारण साधुपन छोड़ने को तैयार हो गया ! पहले के कष्टो की तुलना मे यह कष्ट तो बहुत साधारण है ! तिस पर पहले हाथी थे और अब मनुष्य हो । ऐसी स्थिति मे विचार करके तो देखो कि तुम्हे कितनी सहिष्णुता रखनी चाहिए ।

हे मेघ ! हाथी की पर्याय मे जीवो पर करुणा रखने और नम्रता धारण करने से इस भव मे तुम राजा श्रेणिक के पुत्र और मेरे शिष्य हो सके हो । हाथी के भव मे इतनी अधिक सहनशीलता धारण की थी तो क्या इस भव में थोडी-सी सहिष्णुता भी नही रख सकते? साधुओ की ठोकर लगने से ही साधुपन छोडने के लिये तैयार हो गये हो ! क्या साधुपन त्याग देने से तुम सुखी बन जाओगे ? मेघ ! तुम इन सब बातो पर विचार करो और साधुपन त्यागने का विचार त्याग दो ।'

भगवान् के वचन सुनकर मेघकुमार प्रभावित हुआ । उसने यहां तक निश्चय कर लिया कि सयम-पालन के लिये आवश्यक आखो के सिवाय मेरा सारा शरीर साधुओ की सेवा के लिये समर्पित है । इतनी नम्रता धारण करने से

मेघकुमार आयुक्षय होने पर विजय नामक विमान मे उत्पन्न हुआ । वहा से पुन मनुष्य जन्म धारण कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होगा ।

८४–गाढी श्रद्धा

तेगवहादुर की कथा औरगजेव के जमाने की है । औरगजेव बडा ही मदान्ध बादशाह था । वह किसी भी उपाय से लोगो को मुसलमान बनाना चाहता था । एक दिन कुछ लोगो ने उसे मुसलमान बनाने का उपाय सुझाया । वह उपाय यह था कि अगर लोगो को कष्ट झेलने पडे तो वे घबराकर मुसलमान बन जाएंगे । अब प्रश्न हुआ कि कौनसा कष्ट पडने पर लोग मुसलमान बन सकेगे ? इस प्रश्न के समाधान मे उसे सूझा—दुष्काल के समान और कोई कष्ट नही है । अगर दुष्काल का कष्ट पडे तो लोग जल्दी मुसलमान बन सकते है । इस विचार के साथ ही उसने सोचा—मगर दुष्काल पडना तो कुदरत के हाथ की बात है । मुझ से यह किस प्रकार हो सकता है ?

मुस्लिम धर्म यह नही कहता कि किसी को बलात्कार से मुसलमान बनाया जाय या किसी पर अत्याचार किया जाय, मगर मनुष्य जब धर्मान्ध बन जाता है तो उसमे

वास्तविक धर्माधर्म के या योग्यायोग्य के विचार करने की शक्ति नही रहती । राजा का धर्म तो यह है कि किसी सकट के समय प्रजा की सहायता करे, मगर औरगजेब तो धर्मान्धता के कारण उल्टा दुष्काल बुलाने का विचार कर रहा है ।

औरगजेब सोचने लगा—अगर दुष्काल पड जाय और लोगो को अन्न न मिले तो वे जल्दी मुसलमान हो जायेंगे । लेकिन कुदरत का कोप हुए बिना दुष्काल कैसे पड सकता है ! ऐसी दशा मे मैं अपना विचार अमल मे कैसे लाऊ ? विचार करते-करते आखिर वह कहने लगा—मैं बादशाह हू । क्या बादशाह के जोर से मै अकाल पैदा नही कर सकता? इस प्रकार सोचकर बादशाह ने करीब दो लाख सैनिक काश्मीर मे भेजे और वहा के धान्य से लहराते हुए खेतो पर पहरा बिठला दिया । किसान धान्य काटने आते तो उनसे कहा जाता—मुसलमान बनना मजूर हो तो धान्य काट सकते हो, वर्ना अपने घर बैठो । इस प्रकार अन्न कष्ट के कारण कितने ही किसान मुसलमान बन गये । जब बादशाह को यह वृत्तान्त विदित हुआ तो वह अपनी करतूत की सफलता का अनुभव करके बहुत प्रसन्न हुआ । साथ ही उसने अन्य प्रान्तों मे भी यह उपाय आजमाने का निश्चय किया । दूसरा नम्बर पजाब का आया ।

पजाब में बादशाह ने यही तरीका अख्तियार किया । लोग त्राहि-त्राहि पुकारने लगे । इस दुर्दशा के समय क्या करना चाहिये, यह विचार करने के लिये बहुत से लोग तेगबहादुर के पास आये और कहने लगे—'बादशाह ने सारे

प्रान्त मे यह जुल्म आरम्भ कर दिया है । अब क्या करना उचित है ?' गुरु तेगवहादुर ने कहा—'तुम लोग बादशाह के पास यह सन्देश भेज दो कि हमारा गुरु तेगवहादुर मुसलमान बन जायेगा तो हम सब भी मुसलमान हो जाएगे। कदाचित् वह मुसलमान न बने तो हम भी नही बनेगे । आप तेगवहादुर को पकड कर उनसे पहले निवट लीजिए ।'

तेगबहादुर की बात सुनकर लोग कहने लगे—यह सन्देश भेजने से तो आपके ऊपर आपदा आ पडेगी । मगर बहादुर तेगवहादुर ने कहा—'सिर पर आपत्ति आ पडे या प्राण चले जाए तो भी परवाह नही । कष्ट सहन किये विना धर्म की रक्षा कैसे हो सकती है ?

अन्तत. लोगो ने उपर्युक्त सन्देश बादशाह के पास भेज दिया । बादशाह ने तेगवहादुर को बुलावा भेजा । वह जाने को तैयार हुए। उनके शिष्यो ने कहा—'आप हमे यही छोडकर कसे जा सकते हैं ? वादशाह आपके प्राण ले लेगा ।' तेगवहादुर ने उत्तर दिया-यह तो मैं भी जानता हू। लेकिन मेरे प्राण देने से औरो की रक्षा होती है । अगर मैं अपने प्राण बचाता हू तो दूसरो की रक्षा नही हो सकती । ऐसी स्थिति मे अपने प्राण देना ही मेरे लिए उचित है । मेरे बलिदान से दूसरो की रक्षा होगी, यही नही वरन् धर्मरक्षा के लिये प्राणार्पण करने की भावना भी जनता मे जाग उठेगी ।

इस प्रकार अपने शिष्यो को समझा बुझाकर गुरु तेगवहादुर औरगजेव मे मिलने गये । औरगजेव ने उन्हे

मुसलमान बनने के लिए बहुत समझाया और प्रलोभन दिये। मगर तेगबहादुर ने बादशाह को यही उत्तर दिया—'आपको अपना धर्म प्यारा है और मुझे अपना धर्म प्यारा है। धर्म-पालन के विषय मे किसी प्रकार का दबाव नही होना चाहिए। आप अपना धर्म पाले, मै अपना धर्म पालूं। अगर आपको अपने धर्म के प्रति इतना आग्रह है तो क्या मुझे अपने धर्म पर दृढ नही रहना चाहिए ?'

बादशाह बोला—'तुम्हारा धर्म झूठा है। अगर उसमे कुछ सच्चाई है तो दिखलाओ कोई चमत्कार !

तेगबहादुर ने कहा—चमत्कार बतलाना जादूगरो का काम है। परमात्मा का सच्चा भक्त चमत्कार दिखलाता नही फिरता। तेगबहादुर—'प्रकृति की प्रत्येक वस्तु मे चमत्कार भरा है। उस चमत्कार को देखो।'

बादशाह कहने लगा—अगर तुम मुसलमान धर्म स्वीकार नही करना चाहते तो मृत्यु का आलिंगन करने के अतिरिक्त तुम्हारे लिए दूसरा कोई मार्ग नही है।

तेगबहादुर—'मरने के लिये तो मैं तैयार ही हू। धर्म के लिए प्राण देने से अधिक प्रसन्नता की और क्या बात हो सकती है ?'

बादशाह ने हुक्म दिया—'तेगबहादुर को बाजार के बीचों-बीच ले जाओ और वहा इसका सिर काट डालो।' सिर काटने के पश्चात् तेगबहादुर के गले मे एक चिट्ठी पाई गई। उसमे लिखा था—सिर तो दिया, मगर सिखा

नही दी । अर्थात् प्राणो का उपसर्ग कर दिया किन्तु हिन्दू धर्म का त्याग नही किया ।

इस उदाहरण को सामने रखकर आप अपने विषय मे विचार कीजिए कि आपने सत्यधर्म की रक्षा के लिये क्या दिया है ? पहले के लोग धर्म रक्षा के लिये प्राण भी अर्पण कर देते थे, लेकिन धर्म नही जाने देते थे । आप मे कोई ऐसा तो नही है, जो थोडे से पैसों के लिये ही धर्म का त्याग कर देते हो ? जिस मनुष्य मे से नीति चली जाती है, उसमे धर्म भी नही रहता ।

औरगजेव ने सोचा तो यह था कि तेगवहादुर को मरवा डालने से लोग जल्दी मुसलमान वन जाएगे लेकिन उसका विचार भ्रमपूर्ण ही सिद्ध हुआ । तेगवहादुर के वलि-दान ने लोगो मे एक प्रकार की धार्मिक वीरता उत्पन्न की । लोगो मे धर्म के लिये मर मिटने की दृढता देख कर अन्त मे औरगजेव को वलात् मुसलमान बनाने का विचार छोड देना पडा ।

इस उदाहरण को उपस्थित करने का आशय यह है कि धर्म के लिए सभी कुछ त्याग किया जा सकता है । आजकल अनेक लोग तुच्छ-सी वात के लिए भी धर्म का त्याग करने मे या धर्म की सौगन्ध खाने मे सकोच नही करते । धर्म सौगन्ध खाने की चीज नही है । धर्म का सम्वन्ध प्राणो के साथ है ! प्राण जैसे प्यारा लगता है, उसी प्रकार धर्म प्यारा लगना चाहिए । धर्म जव प्राणो के समान प्रिय लगे तव समझना चाहिए कि हम मे धर्मश्रद्धा मौजूद है ।

८५-सुशीला बहू

किसी नगर के बाहर एक झोपडी मे एक सुशील और भक्त श्रावक रहता था।

यो तो भक्त और श्रावक का अर्थ एक ही है, पर यहा दोनो कहने का मतलब यह है कि आजकल श्रावक कहलाने वाले तो बहुत हैं पर सच्चे श्रावक कम हैं। भक्त श्रावक कहने का अर्थ यह है कि वह सच्चा श्रावक था।

वह श्रावक बहुत गरीब था। बाजरे की रोटी और छाछ पर अपना निर्वाह करता था। पर हृदय का इतना उदार था कि द्वार पर आये किसी अतिथि को भूखा नहीं जाने देता था। उसकी झोपडी मे अक्सर सत्सग हुआ करता था। आत्मजागृति करने वाली बातो के सिवाय दूसरी बाते नही हुआ करती थी। वह सदा भगवान् के ध्यान मे मस्त रहता।

उसकी स्त्री दो वर्ष की एक कन्या को छोड़ मरी थी। वह भी बड़ी सुशील थी। सत्सगति मे उसका मन भी खूब लगता था। जब उसकी माता गर्भवती रही होगी, तब उसकी सन्तान पर कितना अच्छा असर पड़ा होगा।

ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, कन्या बड़ी होती गई। परन्तु भक्त को किसी प्रकार की चिन्ता नही थी। वह कभी फिक्र नही करता था कि कन्या का विवाह किस जगह करना

चाहिये या किसके साथ करना चाहिये ? वह तो अपनी भक्ति मे ही मगन था । उसे परमात्मा पर पूरा विश्वास था । वह मानता था—प्रकृति जो खेल करेगी, वह अच्छा ही होगा । अगर यह कन्या ब्रह्मचारिणी रह जायेगी तो भी क्या हर्ज है ?

धीरे-धीरे कन्या सोलह वर्ष की हो गई । आज आपके यहां ऐसी बात हो जाय तो आप घबरा उठेंगे । आपके पड़ौसी के यहां हो जाय तो आप टीका-टिप्पणी करने से नही चूकेंगे । पर उस भक्त को तनिक भी चिन्ता नही थी । कन्या भी अपनी झौपडी मे आये साधु-सन्तो की यथोचित सेवा शुश्रूषा करती और धर्म–चर्चा से नाना विषयो में कौशल प्राप्त कर रही थी ।

आप सोचते होगे—वह अपनी चित्तवृत्तियो को किस प्रकार दबाती होगी ? मैं कहता हूं—जो नीच माता-पिता अपनी विषय-वासना को नही जीतते, वे ही ऐसी शंकाए उठाते हैं । अगर उनका चित्त निर्मल हो तो ऐसी शका ही उत्पन्न न हो । सन्तान को पवित्र वातावरण मे रखा जाय तो उसमे विकारमयी भावना उत्पन्न नही होती ।

उस कन्या का यौवन दिन प्रतिदिन खिलने लगा । वह एक तेजमूर्ति देवकन्या–सी मालूम पड़ती थो ।

एक दिन उस नगर का नगर–सेठ हवा खाने के लिए उस ओर जा पहुंचा । कन्या किसी अतिथि का सत्कार कर रही थी । अचानक कन्या पर उसकी दृष्टि पड़ गई । उसके

रूप और यौवन को देखकर उसका हृदय खिल उठा। उसने सोचा—मेरा लडका कुंआरा है। उसके साथ इसका विवाह हो सके तो कितना अच्छा !

सेठ अपने घर गया। अपने इष्ट मित्रो से सलाह ली। मगर सभी ने कन्या के पिता की गरीबी का चित्र खीचकर कहा—वाह ! ऐसे फकीर के साथ आपका सम्बन्ध क्या शोभा देगा? विवाह सम्बन्ध तो बराबरी वाले के साथ ही शोभा देता है। वह क्या आपकी बराबरी का है ? कहाँ झौंपड़ी मे रहने वाला वह फकीर और कहा सतमंजिले महलो मे रहने वाले आप नगरसेठ ! ससार में आपके लड़के के लिये बहुत कन्याएं मौजूद है।

फिर सेठ ने अपनी पत्नी से सलाह ली। उसने भी यही कहा। इस प्रकार सब का विरोध होने पर भी सेठ का विचार न बदला। वह कन्या को देख जो चुका था ! उसने निश्चय किया—कुछ भी हो, उस कन्या को तो घर मे लाऊगा ही ! ऐसी कन्या फिर नही मिलने की। सेठ के इस निश्चय के आगे किसी की नही चली। सब चुप हो रहे।

सेठ ने अपने पुरोहित को भेज कर उस श्रावक को सगाई के लिये कहला भेजा। श्रावक ने कहा—मेरी जैसी स्थिति है, आप जानते ही है। मेरे पास छिपाने को नहीं है। कुंकुम-कन्या हाजिर है। सेठजी चाहे तो ले जाएं।

सम्बन्ध पक्का हो गया। निश्चित समय पर बारात पहुंची। श्रावक की झौंपडी देखकर बराती हसने लगे और

आपस मे भाति-भाति की बाते करने लगे। किसी ने कहा—देखो न, इस सेठ की बुद्धि पर धूल पड़ गई है !

दूसरा बोला—तभी उमदा समधी खोजा !

तीसरा—अरे भाई, सेठ ने समधी की तरफ ध्यान नहीं दिया, उसने कन्या की ही ओर देखा है ।

चौथा—क्या ऐसी दूसरी कन्या दुनियां में कही थी ही नही ? बहुत-सी कन्याएं है । पर सोचा होगा—बराबरी वाले के घर विवाह करेगे तो खर्च ज्यादा करना पड़ेगा। यो थोडे मे ही काम चल जाएगा।

इस प्रकार जितने मुंह उतनी ही बाते होने लगी । लग्न का मुहूर्त्त आया । कन्या का हाथ पति के हाथ में दिया गया । इसे हथलेवा कहते है । हथलेवा के समय कुछ दान देने की प्रथा है । पर श्रावक तो बेचारा गरीब था । वह क्या देता ? उसने अपनी कन्या से कहा बेटी, मेरे पास देने को कोई भौतिक वस्तु नही है । मगर मैं जो देना चाहता हू वह उससे भी अधिक मूल्यवान् वस्तुएं हैं । मैं तुझे तीन दासियां देता हूं—सादगी, नरमाई और भलमनसाहत । मैं तुझे लज्जा का वस्त्र देता हूं । सुन्दर कपड़े पहनने वाली भी निर्लज्जता के कारण बदनाम होती है । और गहने देता हू तुझे ज्ञान के ! दूसरे पिता अपनी लडकी को कानो में सोने के आभूषण देते हैं । मेरे पास वह भी नही हैं । लेकिन उन आभूषणों से बाहरी शोभा बढ़ती है । मैं जो देना चाहता हू, उससे तेरे कानो की ही नही, आत्मा की भी शोभा बढ़ेगी । वह आभूषण यह शिक्षा है कि तू

ऐसे ही शब्द सुनना जिससे परमात्मा प्रसन्न हो। कभी ऐसी जगह न जाना जहां खोटे शब्द सुनने को मिलें। हाथ का जेवर दान हैं। घर पर कोई दीन-दुखिया आवे तो यथा-योग्य दान सत्कार करके उसे सन्तुष्ट करना। दूसरी स्त्रिया हृदय पर हार आदि पहनती है, तू भगवान् की भक्ति और पति के प्रति श्रद्धा अपने हृदय मे रखना। यही तेरे लिये सच्चा हार होगा।

कन्या के पिता से इस दान से वरराजा कुढ़ने लगे। मन ही मन कहा—पिताजी ने क्या सोचकर यहां पटक दिया! दुनियां मे कही कोई दूसरी कन्या ही नहीं थी? ससुर साहब देते तो कुछ है नही, ऊपर से देने की शेखी बघार रहे हैं।

विवाह हो गया और वधू ससुराल पहुंची। ससुराल वाले करोड़पति थे। पिता के घर घास-फूस की छोटी-सी झोपडी थी और यहां लम्बे चौड़े महल खड़े थे। मगर उसे झोपडी और महल मे जैसे कोई अन्तर नही दिखाई दिया। वह जैसी झोपडी मे सुखी, वैसी इस महल में भी थी। महल मे आने पर उसकी मनोवृत्तियो मे कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ। किसी धनी की कन्या होती तो यहां आकर लटको-छटकों मे ही सारा दिन गंवा देती, पर सुशीला ऐसा नही करती थी। वह अपने पति के मनोरंजन के लिए कुछ शृंगार करती थी पर उसमे भी सादगी होती थी। उसकी मनोवृत्ति में तो सादगी ही भरी थी। नम्रता उसमे थी ही। कभी किसी के सामने घमण्ड नही करती थी। सास, ससुर और पति के सामने ही नम्र रहने मे तो विशेषता ही क्या,

वह नौकरों-चाकरों के साथ भी नम्रता का ही व्यवहार करती थी। वह घर का काम-काज बड़ी स्फूर्ति और सफाई के साथ करती थी।

उसके सास-ससुर लोभी तो थे ही उन्होने दो-तीन दासियों को हटा दिया। वहू के काम-काज को देखकर और पैसे की बचत होती देख, वे और ज्यादा प्रसन्न हुए। सास पहले पुत्रवधू को देखकर कुढती थी और सोचती थी कि किसी धनवान् की लडकी आती तो लाखो दहेज लाती। पर अब वह भी अपनी सुशीला पुत्रवधू की प्रशंसा करने लगी। धीरे-धीरे पुत्रवधू ने सबका हृदय जीत लिया। सेठानी ने तिजोरियो की चाबियां भी अब पुत्रवधू को दिला दी।

पुत्रवधू ने कहा—चावियो का गुच्छा आपके पास ही रहने दीजिए। मैं लेकर क्या करूंगी? मै आपकी सेवा मे हाजिर ही हू। जो आज्ञा देगी, वजाऊंगी। लेकिन चावियों की जिम्मेवारी मुझे न दीजिए।

सास ने प्रेम से कहा—नहीं बेटी, तू होशियार है। अब मुझे चाबियां रखने की आवश्यकता नहीं है। तू जाने तेरा घर जाने। पर हां, एक बात कहे देती हू—चाबियां तो सौपती हूं, मगर किसी को दान मत देना। किसी को कुछ भी दे दिया तो मुझ-सी बुरी नही है। हा अपनी बराबरी का कोई अतिथि आ जाए तो उसका सत्कार करने को मैं मना नही करती। उसके लिए ऐसी तैयारी करना कि वह देख कर दंग रह जाए।

पुत्रवधू—माताजी, यह जिम्मेवारी मुझ पर न डालिए। मैं अभी बच्ची हूं ।

सास—नही, अब तू बच्ची नही है। फिर मेरे देखते-देखते गृहस्थी को सभाल भी लेना है !

पुत्रवधू चुप रही । चाबियां उसने अपने पास रहने दी पर सोचने लगी—इस महल की अपेक्षा तो वह झौपड़ी ही अच्छी थी, जहां अतिथियो—अभ्यागतो की कुछ न कुछ सेवा करती थी। पर यहा 'भज कल्दारं भज कल्दार' के सिवाय और कोई बात नही है ! यहां भगवान् का स्मरण तो भूल कर भी नही किया जाता। और वह प्रार्थना करती—प्रभो ! वह दिन कब आएगा कि मेरे सास-ससुर तेरा स्मरण करने मे चित्त लगाने लगेंगे। इनके घर मे किसी प्रकार की कमी नही है, फिर भी अतिथि—अभ्यागत सदा निराश होकर लौट जाते है । प्रभो ! इनके हृदय मे सेवा की मन्दाकिनी का निर्मल स्रोत कब बहेगा? कब इस द्वार पर आकर दीन—दु खी लोग शान्ति और सान्त्वना पाएंगे ?

मित्रो ! प्रार्थना मे बड़ा बल है । आराधना करने पर कठिन काम भी सरल हो जाता है ।

एक दिन हवेली के नीचे के कमरे मे बैठी हुई पुत्रवधू प्रभु का स्मरण कर रही थी इतने मे एक साधु आया। पुत्रवधू को देखकर उसने अन्न की याचना की । पुत्रवधू ने उसी वक्त उठकर उसे पकवान् की भिक्षा दे दी ।

वह साधु हवेली की छटा देख कर वहुत प्रसन्न हो

रहा था। पुत्रवधू ने साधु की यह अवस्था देखकर कहा—साधुजी, आपका एक गया।

साधु ने उत्तर दिया—वहिन, तेरे दोनो गए।

तव पुत्रवधू ने झट से कहा—अव आपके तीनों गए।

सास पास के कमरे मे सो रही थी। उसने साधु को भिक्षा देते देख लिया और पिछला संवाद भी सुन लिया। वह चौक पड़ी—मेरे घर में यह साधुड़ा! हाय, इस वहू ने तो मेरे घर को मटियामेट कर दिया! नही मालूम था कि यह ऐसी कुलांगार है। यह साधुओं के साथ गुप्त भाषा मे वातें करती है, इसका पता तो मुझे आज ही लगा। मैंने पहले ही कहा था कि इसे घर में मत लाओ पर मेरी सुने कौन? खैर, इस सत्यानाशिनी को मजा चखाऊंगी।

वहू को नही मालूम था कि सास ने भिक्षा देते देखा है। उसे सास की कुशंका का भी पता नही था। साधु के चले जाने पर वहू को सास की आज्ञा का स्मरण आया—किसी भी साधु-सन्त या भिखारी को कुछ भी न देना। वह पश्चात्ताप करने लगी। उसने सोचा—आज मैंने सास की आज्ञा का उल्लघन कर दिया। वह उचित नहीं किया। मुझे सास के पास जाकर अपने अपराध के लिये क्षमा माग लेनी चाहिये।

पुत्रवधू ज्यो ही सास के कमरे मे घुसी कि सास का विकराल रूप देख कर समझ गई कि इन्होने मुझे देते देख लिया है। चलो, अच्छा हुआ। और वह वोली—माताजी!

मगर सास क्रोध से कांपती हुई चिल्लाई—बस, चुप रह, चण्डालिन ! मत पैर रख मेरे कमरे में !

पुत्रवधू ने सोचा—चलो, आज्ञा के उल्लंघन के अपराध का प्रायश्चित्त हो चुका । वह कुछ न बोली और लौट गई ।

सास का क्रोध शान्त नही हुआ । उसने नौकर को भेजकर सेठ को बुलवाया और कहला दिया—अभी के अभी आए ।

सेठजी आये । पूछा—अभी क्यों बुलवाया है ?

सेठानी—बुलवाया इसलिए है कि तुम्हारे घर का सत्यानाश हो रहा है ।

सेठ—कैसे ?

सेठानी—साधुजी को घर में ले आए इसलिए । पहले ही कहा था कि इसके साथ मेरे बेटे का ब्याह मत करो । मगर मेरी बात नही मानी । आज वह साधुड़े के साथ गुप्त बातें कर रही थी । मैंने अपनी आंखों से देखा और कानो से सुना है ।

सेठ—हां, ऐसी हालत है ? किसी ने देख तो नहीं लिया ?

सेठानी—देखना फिर बाकी रहा ? मैं खुद देख रही थी ।

सेठ—जरा धीरे-धीरे बोलो । लोग सुनेंगे तो कुल को कलक लगेगा । बड़ी बदनामी होगी !

अब क्या करना चाहिये ? उसे पीहर भेज दें ?

सेठानी—'साठी और बुद्धि नाठी' वाली बात कर रहे हो ! लोग नही जानते होगे तो जान जाएंगे । लोग पीहर भेजने का कारण पूछेंगे तो क्या जवाब दिया जाएगा ?

सेठ—तो तुम्हारी क्या राय है ?

सेठानी—अगर सुख चाहते हो और इज्जत बचाना चाहते हो तो उसे परलोक भेज दो । इसके सिवाय और रास्ता नही दीखता । न रहेगा बास न बजेगी बासुरी ! बेटे के लिये बहुओ की कमी नहीं है ।

सेठ के मन मे बात जच गई । वह बोला—उपाय तो ठीक है, मगर युक्ति से काम करना होगा ।

सेठानी—आज का आज ही होना चाहिए ।

सेठ—तो इस विषय में लड़के की भी सलाह ले लेनी चाहिये । उसकी सलाह बिना काम नही चलेगा ।

सेठानी—ठीक है । उसे समझाकर कह देना—लडकियों की कमी नहीं है । अनेक धनवानों की कन्याएं मिल जाएंगी।

सेठजी ने लड़के को बुलाया । सेठ ने कहा—गोविन्द, मैंने तुझे आज एक सलाह लेने के लिये बुलाया है ।

गोविन्द—पिताजी, मुझसे और सलाह !

सेठ—हा !

गोविन्द—मैं किस योग्य हूं, जो आपको सलाह दूंगा!

सेठ—आज तेरी सलाह की जरूरत है ।

गोविन्द—पिताजी, आपको सलाह देने योग्य तो मैं हू नही, आज्ञा उठा सकता हू ।

गोविन्द का जब विवाह हुआ था, उस समय उसकी प्रकृति कुछ और तरह की थी । परन्तु पत्नी के ससर्ग से अब उसमें काफी सरलता आ गई थी । नम्रता और सच्चाई उसके खास गुण हो गये थे । इसी कारण उसने पिता के सामने ऐसी नम्रता प्रकट की ।

सेठ ने कहा—अच्छा गोविन्द, तुम्हे अपना अपराध स्वीकार है या नही ?

गोविन्द—पिताजी, मेरा अपराध ? मुझे तो अपना अपराध याद नही आ रहा है ।

सेठ—तेरा नही तो तेरी पत्नी का अपराध । वह तेरा आधा अंग है । उसका अपराध तेरा ही अपराध है ।

गोविन्द—उससे क्या अपराध हुआ पिताजी ?

सेठ—पहले यह बता कि वह तुझे कैसी लगती है ?

गोविन्द सरल और सच्चा था । उसने कह दिया—मुझे तो वह सत्य की मूर्ति और दया का अवतार मालूम होती है ।

सेठ—डूब गई नौका ! बेटा, धूर्त लोग ऐसा ही दिखावा करते है । वे बोलते तो ऐसे मीठे हैं कि मानो मिश्री घोलते हो, पर भीतर ही भीतर छुरिया चलाते है । दूसरों की आंखो मे धूल झोंकना ही उनका काम होता है ।

गोविन्द चक्कर मे पड गया ।

सेठ ने सारी घटना सुनाई और कहा—मैं तो पहले ही जानता था कि यह ऐसी है पर उस समय मुझे मालूम नही था कि सचमुच ही ऐसी है !

गोविन्द अपने पिता की इस बात का कुछ साफ मतलब नही समझ सका। वह इधर पिता की बातों को और उधर पत्नी के व्यवहारो को तोलने लगा। उसका हृदय कह रहा था कि मेरी पत्नी कदापि ऐसी नही हो सकती। मगर हृदय बलवान् न होने के कारण वह पिता की बात का उत्तर नहीं दे सकता था।

सेठ—अच्छा, मेरी आज्ञा मानोगे ?

गोविन्द—आपकी आज्ञा के सामने मुझे अपना जीवन भी तुच्छ दीखता है। जैसे आप कहेगे, वही करूंगा।

सेठ—तो कहना यही है कि उसे परलोक पहुचाना चाहिए।

पिता का यह कठोर निर्णय सुनते ही गोविन्द के शरीर को जैसे बिजली का करंट छू गया मगर वह बोला कुछ नही।

सेठ ने फिर कहा - देखो, अपने शहर के बाहर वाले बगीचे में उसे अपने साथ ले जाना और क्रीड़ा करते-करते वहा के अन्धे कुंए मे धक्का दे देना। जब वह कुंए मे गिर जाए तो तू चिल्ला-चिल्ला कर रोना। इतने मे बाग के लोग आ जाएंगे और हम भी पहुच जाएंगे। सब मिल कर रोएगे। लोग समझेंगे, वह अपने आप पड़ गई है। इस तरह बदनामी भी न होगी और काम भी बन जाएगा।

पिता की योजना गोविन्द के गले तो नही उतरी, फिर भी वह उसका विरोध नही कर सका, बल्कि उससे सहमत भी हो गया ।

उधर गाड़ी तैयार होकर दरवाजे पर आ खडी हुई । गोविन्द ने भीतर जाकर अपनी पत्नी से कहा - आज बाग मे चलने की इच्छा है । जल्दी तैयार हो जाओ ।

लड़की का स्वभाव सीधा और हृदय स्वच्छ था । उसे किसी प्रकार की आशंका न थी । वह झट कपड़े-लत्ते बदल कर तैयार हो गई ।

पति-पत्नी दोनों गाड़ी में बैठे । गाड़ी सरपट भागने लगी और थोडी ही देर मे बगीचे मे जा पहुची । गाड़ी से उतर कर दोनो इधर-उधर टहलते-टहलते कुंए के पास जाकर खड़े हो गये ।

चारो ओर घनी सी झाड़ियां थीं और जगह डरावनी मालूम होती थी । गोविन्द कुंए की पाल पर खड़ा था । उसके दिल में भयानक उथल-पुथल मची थी, फिर भी ऊपर से वह कभी हसता और गम्भीर हो जाता था । जब कभी पत्नी की हत्या करने का विचार मन मे आता तो उसका रंग बदल जाता था । मुंह पर स्याही सी पुत जाती थी । मगर भोली पत्नी का उस ओर तनिक भी ध्यान न था । अचानक उसने कहा—नाथ ! यह जगह कितनी भयानक जान पडती है ? पर आप मेरे साथ हैं इसलिए तनिक भी भय का संचार नही होता । मैंने सीता और दमयन्ती की कथाओ मे सुना था, वे अपने पति के साथ वनो मे घूमती थी । उन वनो में सिंह आदि हिंसक पशु रहते थे किन्तु

उन्हे अपने पति के साथ होने से कुछ भी भय नही था। मुझे भी इस डरावनी जगह आपके होने से भय नही लग रहा है।

गोविन्द गहरे विचार मे डूब गया। जिस स्त्री को दोषी समझ कर मैं मार डालने के लिए यहां लाया हूं, वह पतिभक्ति की ऐसी बातें करती हैं? उसका मुझ पर अगाध विश्वास है! कैसे मानू कि यह दोषी है? पर माता भी तो झूठ नही बोलती। मुझे इसे मारना तो है ही पर साव-धान तो कर ही देना चाहिये। वह बोला—सावधान! तुम कहती हो कि भय नही है, परन्तु मै समझता हूं कि तुम भय के भंवर में चक्कर काट रही हो! निर्भय नही हो।

भोली पत्नी! उसे पता नही था कि पति के इस कथन मे क्या मर्म छिपा है। वह फिर सहज भाव से कहने लगी—स्वामिन् आप मेरे पास खड़े है, फिर मुझे भय कैसा? आपके पास रहते मैं भय से नही डरती। हां यमराज आकर भले मुझे मार सकता है। पर यदि आप खडे हों और वह मुझे मारने आवे तो उस समय मैं उसका स्वागत ही करूंगी क्योकि वह मुझे सामीप्य से हटा तन्मय करने वाला होगा। [अर्थात् अभी तक मैं आपके पास हूं, किन्तु मरने के बाद आपमे तल्लीन करने वाला वही है। हंसते चेहरे मैं आपके सामने मर गई कि आपमे लीन हो गई।

गोविन्द के चित्त मे बडी हलचल शुरु हो गई। क्या दुराचारिणी स्त्री इस प्रकार की बाते कह सकती है? मुझे विश्वास नही होता। कितनी सुन्दर ज्ञान की बातें कह रही

है ? ऐसी स्त्री को क्या मैं अपने हाथों मार डालूं ? नहीं, मुझसे यह नहीं होगा । फिर भी परीक्षा तो कर देखनी चाहिए ।

गोविन्द बोला—अच्छा, एक बात पूछता हूं । सच-सच बताओगी न ?

स्त्री—सच-सच ! मैं असत्य बोलना सीखी ही नहीं हूं, फिर असत्य कैसे कहूंगी ? मेरे पिताजी ने कहा हैं—सदा सत्य बोलना । पतिव्रत धर्म का पालन करना । पति स्त्री के लिए परमेश्वर के समान है । पति से निष्कपट व्यवहार रखना । कभी छल नही करना । पति की प्रसन्नता से मुक्ति मिलती है और पति की अप्रसन्नता मे नरक है । फिर क्या मैं आपके सामने असत्य बोलूंगी ?

पत्नी की बातें सुनकर पति का हृदय हिल उठा । उसने पूछा—क्या तुम्हारे पिता ने यह बात कही है ?

पत्नी—जी हां । एक दिन की बात है । मेरे पिता एक मुनि के पास सत्संग करने जाते थे । मैं भी उनके साथ जाया करती थी । उस समय मैं बहुत छोटी थी, पर समझने लगी थी । प्रश्न छिड़ने पर पिताजी ने कहा—भगवन्! पुरुष के लिए मुक्ति के भिन्न-भिन्न रास्ते बतलाये गये हैं, पर यह बतलाने की कृपा कीजिए कि इस (मेरी ओर इशारा करके) बालिका को मुक्ति कैसे मिलेगी ? पुरुष तो कठोर साधना करके मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं, स्त्री जाति कठिन तपस्या नही कर सकती । इसलिए इसके वास्ते सरल मार्ग बतलाइए । तब मुनि बोले—स्त्री के लिए मुक्ति का प्रारम्भिक

सरल मार्ग पति की सेवा करना ही है । मेरे पिताजी ने कहा—महाराज, इसमें तो पुरुष की स्वार्थ की मात्रा दिखाई देती है । मुनि बोले—नही । पिताजी ने फिर कहा—गुरुदेव, यह तो ससार सम्बन्धी बात है ? आप तो कल्याण की बात कहिए । मुनि बोले—भैया ! मैंने स्त्री जाति की मुक्ति का सरल से सरल उपाय बतलाया है । मैं जानता हूं कि यह बाल-ब्रह्मचारिणी तो रह नही सकेगी, अतएव पति-परायण होना ही इसके लिए सबसे अच्छा मार्ग है ।

घर लौटने पर मैंने पिताजी से इस विषय में और स्पष्ट पूछा । वे बोले—बिटिया ! पुरुष भिन्न-भिन्न मार्ग से चित्त की वृत्ति को रोकने के लिए क्रियायें करते है पर स्त्रियां वैसा नही कर सकती । योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग कहलाता है । इस-लिए स्त्री को अपनी चित्त वृत्तियो को रोकने के लिए पति में मन को लगा देना चाहिए । अर्थात् पत्नी कुछ भी काम करे, वह पति की प्रसन्नता के लिए होना चाहिए । विषय-वासना की गन्दी भावनाओ का वहां गुजर नही होना चाहिए ।

बहुत से लोग मूर्ति में परमात्मा की भावना करके परमात्मा में चित्त लगाने की कोशिश करते हैं, उसी प्रकार तू अपने पति में परमात्मा की मूर्ति विराजमान है, ऐसा समझकर निष्कपट भाव से सेवा करना ।

मुनि रोटी खाते हैं संयम निर्वाह के लिए, पेट भरने के लिए नही । इसी प्रकार पतिव्रता स्त्री को हर एक काम अपने व्रत के निर्वाह के लिए ही करना चाहिए । इसमें पक्षपात की बात नही है ।

स्त्रियो में दो विशेषताएं हुआ करती हैं—एक आकर्षण शक्ति और दूसरा प्रेम । इनके द्वारा पत्नी पति को अपनी ओर झुका लेती है और इतना झुका लेती है कि उसे पागल बना देती है । यह प्रेम गन्दा नही, पारमार्थिक होता है । स्त्री चाहे तो पति को गन्दे प्रेम में भी पटक सकती है, पर वह उसकी नीच भावना ही कही जाएगी । सीता ने राम को अपने प्रेम मे कैसा बना लिया था ? जब सीता का हरण कर लिया गया तब राम पागल-से हो गए और वृक्षो तथा वेलो से भी सीता का पता पूछने लगे । यह सीता के सच्चे प्रेम का प्रताप था ।'

गोविन्द ने अपनी पत्नी की महत्ता अब समझी । इतने दिनो में कभी इस प्रकार की बाते करने का उसे अवसर नही मिला था । आज उसकी गम्भीर ज्ञान से भरी बातें सुनी तो अवाक् रह गया ! उसे अपनी पत्नी की निर्दोषता मे लेश मात्र भी सन्देह नही रहा ।

फिर भी गोविन्द ने पूछा—आज प्रातःकाल तुम्हारी उस साधु के साथ क्या बातें हुई थी ?'

गोविन्द का प्रश्न सुनते ही उसकी पत्नी ने सारा रहस्य समझ लिया । उसे मालूम हो गया कि मेरे पति भय की जो बात कह रहे हैं, उसका आधार निराधार शका है! उसकी आखो से आंसू बहने लगे । थोड़ी देर बाद ही उसने कहा—नाथ, मै अब समझी । अपने प्राणो के मोह से प्रेरित होकर नही, बल्कि सत्य की प्रतिष्ठा के लिए ही मैं आपके प्रश्न का उतर दे रही हूं । प्रात.काल एक साधु आया था ।

उसने गृहस्थाश्रम का त्याग किया, कुटुम्ब-परिवार को छोड़ा, शरीर पर भस्म रमाई, परन्तु उसका देहाध्यास नहीं गया। आहार की याचना करने से ही प्रमाणित हो गया कि वह देह को भूल नही सका। अतएव उसे सावधान करने के लिए मैंने उसे ताना मारा था—तेरा एक गया अर्थात् निश्चय और व्यवहार मे से निश्चय भंग हो गया।

साधु मेरे कथन के रहस्य को समझ गया। उसने कहा—'तेरे दोनो गये।' इसका तात्पर्य मैंने यह समझा कि जो पूर्वजन्म मे किये पुण्य कर्म के फलस्वरूप उच्च कुल, नीरोगता, धन-सम्पत्ति आदि अनुकूल सामग्री प्राप्त कर लेते है किन्तु दया-दान आदि के प्रति द्वेष का भाव रखते हैं, प्राप्त सामग्री का सदुपयोग नही करते, वे अपने इस जीवन को और साथ ही आगामी जीवन को भी व्यर्थ बना लेते हैं। अर्थात् उनके दोनो भव बेकार हो जाते हैं। ऐसी चेतावनी देने के लिए ही साधु ने मुझसे कहा था कि तेरे दोनों गये।

'दोनो गये' का दूसरा तात्पर्य यह भी था कि मैं रजोगुण और तमोगुण से अतीत हो चुकी हू, किन्तु सतोगुण से अतीत नही हुई हूं। सतोगुण के प्रभाव से ही मैं सासजी की आज्ञा भंग करके साधु को दान देने मे प्रवृत्त हुई। सतोगुण के प्रताप से ही मैं सास-ससुर और पति की सेवा करने मे समर्थ हो सकती हू। अतएव वह मुझ में मौजूद है। साधु ने मुझे उपदेश दिया कि परमात्मदशा प्राप्त करने के लिए सतोगुण से भी अतीत होना चाहिए।

साधु का कथन सुनकर मैंने कहा—'तुम्हारे तीनों गये।'

इसका मर्म यह था कि तुमने मुझे आदर्श स्थिति का भान कराया है, अतएव तुम्हारे तीनों गुण अदृश्य हो जाएं। तुम त्रिगुणातीत अवस्था प्राप्त करो। मेरा यह आशीर्वाद सुन-कर साधु समझ गया और चुपचाप चला गया।

पत्नी का यह उत्तर सुनने से पहले ही गोविन्द को उसकी निर्दोषता समझ मे आ गई थी। उत्तर सुनने के बाद उसे पत्नी के प्रति आदर और अपने प्रति तिरस्कार का भाव उत्पन्न हुआ। गोविन्द ने उससे कहा—मेरे अपराध के लिए मुझे क्षमा करना।'

पत्नी—मेरे हृदय के देवता। ऐसा न कहो। आपने अपराध ही क्या किया है? मैंने सारी घटना का अनुमान कर लिया है। आप माता-पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए, अपने हृदय को चोट पहुंचा कर भी, कठोर कर्त्तव्य के लिए उद्यत हुए। यह तो मेरे लिए भी गौरव की बात है। मैंने जो स्पष्टीकरण किया है, वह इसलिए नहीं कि आप अपना कर्त्तव्य न पालें। यह आपके सन्तोष के लिए ही है। अब प्रसन्नतापूर्वक आप माता-पिता की आज्ञा का पालन कीजिए।

गोविन्द अपनी पत्नी की महत्ता को भलीभाति समझ चुका था। वह क्या अपनी पतिव्रता पत्नी को कुंए में धकेल सकता था। कदापि नही। उसने कहा—हृदयेश्वरी! मुझे चक्कर मे मत डालो। क्या मुझे अकेला छोड़कर स्वयं स्वर्ग सिधारना चाहती हो? मेरे परिवार मे तुम्हारी बडी आव-श्यकता है। गृहस्थाश्रम के सागर मे तुम हमारी नौका हो। बीच में छोड़ जाओगी तो हमारा कहा पता लगने वाला है?

आखिर दोनों सकुशल लौटकर घर पहुंचे। सेठ और सेठानी को जब असलियत का पता लगा तो दोनो पश्चात्ताप के आंसू बहाने लगे। अन्त मे सेठानी ने पुत्रवधू को गृहस्थी के समस्त अधिकार सौंप दिये। दान-पुण्य होने लगा। सेठ की सुनसान गृहस्थी में चहल-पहल हो गई।

सुशीला बहू किस प्रकार अपने परिवार का सुधार कर सकती हैं, यह बात इस उदाहरण से सहज ही समझी जा सकती है।

४२ : पतिव्रता का प्रभाव

सुभद्रा एक जैन बालिका थी। उसका विवाह किसी अजैन के साथ हुआ था। माता-पिता को पहले मालूम नही था कि वर जैन नही है। विवाह होने के बाद पता चला। पहले मालूम हो जाता तो शायद उसके साथ सुभद्रा का विवाह न करते परन्तु सुभद्रा की कसौटी होनी थी, इस कारण वह विवाह हो गया।

कसौटी के बिना धर्मवीर की परीक्षा नही होती। धर्मवीर कसौटी से डरते भी नही हैं। वे अपनी धर्मवीरता की परीक्षा देने को सदैव प्रस्तुत रहते हैं।

सुभद्रा अपने धर्म पर दृढ थी। वह अपनी ससुराल मे अर्हन्त भगवान् का नाम लेती तब पति आदि उसे रोकते। सुभद्रा नम्रता से कहती—आप लोग मुझे क्यो रोकते है ? इस मत्र ने आपका क्या बिगाडा है ? आप मुझे डाट-डपट बतलाते हैं, फटकारते हैं ! मैं सब इस मत्र के प्रताप से सहन कर रही हू। यह मत्र मेरा जीवनधन है। आप इसके जाप के लिये मना न किया करे तो अच्छा है।

परन्तु सुभद्रा के घर वालो ने इसके विनम्र कथन पर कुछ भी ध्यान नही दिया। वे हर वक्त कुछ न कुछ खट-पट किया ही करते थे। जब जो मन मे आता, वे कह देते थे।

जब एक दिन सुभद्रा के घर साधुजी गोचरी के लिये आये । उनकी आंख मे फूस पड गया था । आख से पानी झर रहा था। पूर्ण भक्तों को भक्ति के आवेश मे लोक-व्यवहार का खयाल नही रहता । सुभद्रा पूर्ण भक्त थी । साधुजी की आंख मे कुछ गिरा जानकर वह उनके पास गई और उसने अपनी जीभ से फूस निकाल डाला । फूस निकालते समय सुभद्रा के ललाट की सिन्दूर की टीकी साधु के ललाट पर लग गई थी ।

साधुजी या सुभद्रा को इस बात का कोई खयाल नहीं था । साधुजी गोचरी लेकर रवाना हुए । लोगो ने साधु के ललाट पर टीकी देखी । सब जगह बात फैल गई कि सुभद्रा ने साधु को विचलित कर दिया है । सब कहने लगे—सुभद्रा महादुष्टा, व्यभिचारिणी और धूर्ता है । वह धर्म का केवल ढोग करती है ।

सुभद्रा के सास-ससुर, देवर-जेठ और पति आदि ने भी यह बात सुनी । वे भी सुभद्रा को कलकिनी समझने लगे ।

पर सुभद्रा का अन्तःकरण स्वच्छ था । उसे अपनी सचाई पर विश्वास था । वह समझती थी कि लोग कुछ भी कहे, सत्य तो सत्य ही रहेगा । असली बार छिपी नही रह सकती । फिर मुझे घबराने की क्या आवश्यकता है ।

उसी दिन से सुभद्रा तेला करके पौषध मे वैठ गई । तपस्या मे अजब शक्ति होती है । सच्चे दिल से तपस्या

करने वालो को जल्दी फल मिल जाता है। दो दिन यो ही बीत गये। तीसरे दिन दैवी शक्ति के प्रभाव से नगर के चारो फाटक बद हो गये। उन्हे खोलने के अनेक-अनेक प्रयत्न किये गये, पर सब व्यर्थ सिद्ध हुए। दैवी शक्ति के द्वारा बन्द किये हुए किवाड़ मानवीय प्रयत्नो से भला किस प्रकार खुल सकते थे ?

आकाशवाणी हुई कि जो स्त्री मन, वचन और तन से पतिव्रता होगी, उसके हाथ से किवाड खुलेंगे। आकाशवाणी मे यह भी सुना गया कि पहले उसकी परीक्षा कच्चे धागे मे, चालनी बाधकर उसमे पानी निकालने से होगी। जो इस परीक्षा मे उत्तीर्ण होगी, वही सच्ची पतिव्रता समझी जायगी।

यह वाणी सब नगर-निवासियो ने सुनी। राजा ने सब से पहले अपनी रानियो से ही कहा—तुम लोग पर्दे में रहा करती हो, कही आती-जाती भी नही हो। तुम्ही खोल कर देखो न ?

रानियो ने उत्तर दिया—शरीर से तो हम पतिव्रता ही हैं, परन्तु मन और वचन से नही कह सकती। आप हमे कसौटी पर चढा कर क्यो फजीहत कराते हैं ?

नगर की अन्य बड़ी-बडी सेठानियो आदि से भी इसी प्रकार का उत्तर मिला।

अब सुभद्रा से न रह गया। वह अपना पौषव

समाप्त करके सास के पास आई और बोली—आप आज्ञा दें तो मैं जाकर फाटक खोलने का प्रयत्न करू ।

सास—घर मे बैठी रहो तो भी गनीमत है । तेरा पतिव्रता धर्म तो जगजाहिर हो चुका है । सब तेरे गुणो को जानते है । अब कुछ कसर रह गई हो तो वहा जाकर पूरी करले ।

सुभद्रा—मुझे लोग कलकिनी तो कहते ही हैं । कलकिनी को और क्या कलक होगा ? फिर और भी तो बहुत सी स्त्रियां जा चुकी हैं । उनमे एक मैं सही । लेकिन सासजी, विश्वास रखिए, आपका उपहास न होगा । लोग चाहते हैं, सो कहते है । उनकी जीभ पकड़ने कौन जाय ? मगर मैं विश्वास दिलाती हूं कि आपका नाम बदनाम नही होगा ।

सास—रहने भी दे, अपनी शेखी ! नगर मे इज्जत के साथ रहने भी देगी या इज्जत पर पोत फेर कर ही मानेगी ? तू कलकिनी मेरे घर मे न जाने कहा से आई है ? नगर भर मे अपवाद फैला दिया ।

सुभद्रा ने बहुत-बहुत अनुरोध किया, अनेक निहोरे किये, पर सास ने एक न मानी । उसने अनेक वचन-बाण छोडे । फिर भी सुभद्रा का विश्वास अटल था । जब सास न मानी तो उसने घर के द्वार पर आकर कहा—मैं नगर के फाटक खोलने जाना चाहती हू, पर मेरी सास मुझे आज्ञा

नही देती । अगर आप लोग किसी प्रकार आज्ञा दिलादे तो अच्छा हो ।

लोग हसने लगे । फिर सुभद्रा के बहुत विश्वास दिलाने पर लोगो ने आग्रह करके आज्ञा दिलवा दी ।

सुभद्रा कुंए पर गई । हजारो आदमी इकट्ठे हो गये । उसने कच्चे धागे मे चालनी बाधी और सर-सर कुए मे छोड दी । लोगो के आश्चर्य का पार नही रहा । राजा भी वहा मौजूद था । लोग आपस मे ही कहते—देखो, कच्चा धागा टूट भी नही रहा है ! उत्तर आता—टूटे कैसे ? इसका दिल टूटा हो तो धागा टूटे ! लोगो ने सुभद्रा के विषय में मिथ्या अपवाद फैला रखा है । अगर यह सच्ची पतिव्रता न होती तो क्या यह अनूठा काम कर सकती थी ।

थोडी ही देर मे पानी से भरी चालनी ऊपर आने लगी । प्रशसक आनन्द से नाच उठे । निन्दको का मुख काला स्याह पड़ गया । मध्यस्थ लोग कहने लगे—कितने विस्मय की बात है कि चालनी मे से एक भी बूंद नहीं टपक रहा है ! दूसरे ने कहा—इसी को कहते हैं शील की महिमा ! बेचारी को लोगो ने वृथा बदनाम कर रखा है ।

अब तो राजा से लेकर रंक तक के मुंह से सुभद्रा की प्रशसा के शब्द निकलने लगे । सुभद्रा आगे-आगे चली । उसके पीछे राजा और राजा के पीछे हजारो की भीड चल पडी । फाटक पर पहुचते ही सुभद्रा ने किवाड़ो पर जल छिडका । चट-चट ध्वनि करके फाटक उसी समय खुल गये!

सुभद्रा के ऊपर धन्य-धन्य की वर्षा होने लगी। घर वालो ने यह समाचार सुना तो उन्हे बड़ा हर्ष हुआ। वे अपनी मूर्खता को धिक्कारने लगे। सुभद्रा को आशीर्वाद दिये गये। सब ने उससे क्षमायाचना की।

तपस्या और शील की लोकोत्तर महिमा का वर्णन नही हो सकता।

४३ : धन का प्रभाव

ईशु के पास एक आदमी आया। उसने कहा—आपने स्वर्ग का द्वार खोल दिया है। मैं भी स्वर्ग में जाना चाहता हूं।

ईशु ने कहा—तू जाना चाहता है ?

आदमी—हां।

ईशु—जाना चाहता है ?

आदमी—जी हां।

ईशु—जरा सोच ले। जाना चाहता है ?

आदमी—खूब सोच लिया है।

ईशु—सोच लिया है तो अपने घर की तिजोरियो की चाबियां मुझे देदे।

आदमी–ऐसा तो नही कर सकता।

ईशु—तो तू स्वर्ग मे नही जा सकता। कदाचित् सुई के छेद मे से ऊट का निकल जाना सभव हो जाय, पर कंजूस धनवानो का स्वर्ग मे प्रवेश होना संभव नही है।

मित्रो! आपने मनुष्य-जन्म पाया है। इसे व्यर्थ मत खोओ। आपके पास धन है। उसे परोपकार मे लगा सकते हो। धन आपके साथ जाने वाला नही है। धन के मोह में मत पड़ो। मोह मे पडे तो मोक्ष मिलना असम्भव होगा। काम-क्रोध आदि विकारो को जीतो, तभी आप महावीर के सच्चे शिष्य कहला सकोगे।

४४ : भोग-रोग

(सीताजी की तेजस्विता)

रावण सीता को हरण करके लका मे ले आया। उसने सीता को मनाने की लाख-लाख चेष्टाए की, पटरानी

बना देने का प्रलोभन दिया, परन्तु परम-पतिव्रता सीता टस से मस न हुई। रावण के सभी प्रयत्न असफल हुए। तब उसने अपनी रानी मदोदरी से कहा—तुम जाओ और बहु-मूल्य वस्त्राभूषण ले जाकर सीता को मनाओ।

मन्दोदरी यह आदेश सुन कर सन्नाटे में आ गई। उसके विवेक का प्रदीप बुझा नही था। वह धर्म को पह-चानती थी। वह मन ही मन सोचने लगी—पतिदेव यह क्या कह रहे हैं? क्या मै सती स्त्री के सतीत्व को भंग करने के लिये दूती बनूं? यह तो बहुत बुरी बात है, परन्तु पतिव्रता को पति की आज्ञा भी तो माननी चाहिए। हाय! मैं धर्म सकट में पड गई! एक ओर कुआ और दूसरी ओर खाई है! सती को सतीत्व से डिगाना धर्म का अपराध है और पति की आज्ञा का उल्लघन करना धर्म और नीति के विरुद्ध है। प्रभो! मुझे क्या करना चाहिए? कुछ भी नहीं सूझ पड़ता। सोचते-सोचते मदोन्दरी का मुंह कुम्हला गया।

मगर यह स्थिति बहुत दिनो तक नही रही। एका-एक मन्दोदरी का मुख कमल की भाति खिल उठा। वह प्रभु को धन्यवाद देने लगी—प्रभो! आपने खूब रास्ता दिखलाया। मैं सीता देवी के दर्शन करना चाहती थी। यों जाती तो पति को सन्देह होता। वे सोचते—मन्दोदरी ही उन्हे सिखा आई होगी, इसी कारण सीता काबू में नही आ रही है। मगर उनके कहने पर मुझे अच्छा अवसर मिला है। सती सीता मेरे कहने पर कदापि नही डिग सकती,

मगर मैं उनके दर्शन करके अपने नेत्रो को सफल कर लूगी। उससे कुछ न कुछ सीखकर ही आऊगी। देखू, उसका सत्य कैसा है?

आखिर मन्दोदरी वढिया से बढिया सुन्दर हीरो से जड़े आभूषण, वस्त्र, तेल, इत्र और ऊचे दर्जे के पकवानो से थाल भर कर सीता की तरफ चली। सीता के पास पहुच कर वह लाई हुई उन उत्तम वस्तुओ की प्रदर्शनी जमा कर वैठ गई। वह वोली—बहिन, इतनी क्यो शर्माती हो? खूब उदासी लाई हो! देखो, यह सब वस्तुएं तुम्हारे लिए ही है। उठो, देखो-देखो! क्यो अपने सुन्दर शरीर को चिन्ता की आग मे जला रही हो? सारी लका तुम्हारी ही है। मैं तुम्हारी दासी बन कर रहूगी। चिन्ता त्यागो और मेरे साथ अन्त:पुर मे चलो।

सीता ने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई। आंख खोलते ही चन्द्रमा का सा प्रकाश निकला। उस प्रकाश के सामने मन्दोदरी की सारी चकाचौध फीकी पड़ गई। उसका मुख-कमल कुम्हला गया।

अहा! पतिव्रता का कैसा अपूर्व तेज है! उसकी ज्योति कितनी जाज्वल्यमान और प्रखर है!

मन्दोदरी ने वहुत अनुनय-विनय की, पर क्या सीता उन वस्तुओ को छू भी सकती थी? नही, क्योकि वे वस्त्राभूषण राक्षस के थे। राक्षस के वस्त्र लेने मे वह अपना अपमान, धर्म का अपमान, कुल का अपमान और अपने

सर्वस्व का अपमान समझती थी। उन वस्त्रो को सीता ग्रहण कर लेती तो अपने धर्म से भ्रष्ट हो जाती। क्या आप इस निष्कर्ष को सही समझते हैं ?

अगर आप के खयाल से यह बात सत्य है तो आप अपने सम्बन्ध मे भी निर्णय कीजिए। भारत माता के पुत्रो और पुत्रियो! तुमने राक्षस के—मीलो के वस्त्र पहने हैं। पर क्या आपको पता है, इन वस्त्रों की बदौलत कितनी माताओं का शील लुट गया है ? कितनी अपने धर्म से गिर गई हैं। कितनी माया के चक्कर मे फस गई हैं ? कितने भाई चरित्र से भ्रष्ट हुए, कितने धर्म से विमुख हो गये और कितने देशद्रोही बने ? जरा विचार कीजिए, भारत माता का इन वस्त्रो से कितना अपमान हुआ है ?

जिस डोरी से निरपराध साधु को फासी दी जाय, क्या आवश्यकता पड़ने पर उस डोरी को आप कन्दोरा बनाकर पहनना पसन्द करेंगे ? नही। याद रखिए, इन वस्त्रों से लाखो को फांसी लग चुकी है, फिर भी आप इन राक्षसी अशुद्ध वस्त्रो को न त्यागेंगे ?

हा, तो मन्दोदरी की बात सुन कर सीता ने कहा—वाह ! मैं तो समझती थी कि घर मे तुम्हारा पति अकेला ही बिगड़ा हुआ है, पर तुम भी उसी की जोड की निकली। ऐसी पटरानी की क्या तारीफ की जाय !

मन्दोदरी—बस बस, रहने दो बहिन ! इतनी बातें क्यो बनाती हो ? ऐसा ही था तो मेरे पति के साथ समुद्र पार क्यो आई ?

सीता—तुम अभी तक नही समझी तो अब समझ लो। मेरी और मेरे राम की प्यारी प्रजा पर विकट संकट आया हुआ है। गरीबो को, सन्तों को और साधुओ को घोर दुःख हो रहा है। अनेक निरपराध कैद मे पड़े सड़ रहे है। कई स्त्रियो की लज्जा का हरण हो रहा है। इन सब का कारण तुम्हारा पति है। तेरे जैसी सती-साध्वी के पवित्र हाथो में ऐसे अधर्मी के सौभाग्य-चिह्न स्वरूप चूड़ियां नही सोहती। मैं इन्हीं को फोड़ने के लिये, चूर-चूर करने के लिये यहां आई हू।

मन्दोदरी सीता के सच्चे किन्तु हृदयवेधी वचनों को सुनकर चुप-चाप अपनी प्रदर्शनी समेट कर चलती बनी।

भोग दुनिया मे पापो का प्रसार करने वाले है। भोग-रोग बढाने वाले हैं। भोगो में आसक्त व्यक्ति, समाज और राष्ट्र धूल मे मिल जाता है।

४५ : प्रीति-भोजन

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के दूत बनकर दुर्योधन के पास गये। दुर्योधन बडा ही कूटनीतिज्ञ था। उसने कूटनीति के दावपेंच चलाकर भीष्म, द्रोण आदि महापुरुषों को अपनी

ओर मिला लिया था। जब दुर्योधन को पता चला कि श्रीकृष्ण आ रहे हैं तो उसने सारे हस्तिनापुर को ऐसा सजाया, जैसे पहले कभी नही सजाया था। उसकी तमाम तैयारियां बिलकुल निराले ढंग की थी। दुर्योधन ऐसी-ऐसी चालाकियो से ही शक्तिशाली व्यक्तियो को अपने पक्ष मे खीच लेता था। श्रीकृष्ण को भी अपनी ओर मिलाने के आशय से वह कृष्णजी के सामने गया मगर श्रीकृष्ण जी भी कोई कच्चे खिलाड़ी नही थे। वे दुर्योधन के जाल मे फंसने वाले नहीं थे। उन्होंने दुर्योधन की चालाकी समझ ली। नगर की सजावट देखकर उन्हे विस्मय तो अवश्य हुआ, मगर उसका उनके गंभीर हृदय पर कोई प्रभाव नही पडा।

श्रीकृष्ण सजे-सजाये महल मे पहुचाये गये। वहां रत्न-जडित सिहासन था। दुर्योधन ने उस पर विराजने के लिये अनुरोध किया। तब श्रीकृष्ण बोले—पहले काम की बात करो। जिस काम के लिये मैं आया हूं, पहले उसी के सम्बन्ध मे चर्चा होनी चाहिए।

दुर्योधन ने कहा—इतनी जल्दी क्या है? अभी आप आए हैं, पहले तनिक विश्राम कर लीजिए। फिर बातें होती रहेंगी।

कृष्ण—मेरा नियम है—प्रथम काम, फिर भोजन—विश्राम।

दुर्योधन—यह तो उलटा क्रम है?

कृष्ण–तुम्हारे लिए जो उलटा है, मेरे लिये वही सुलटा है।

मित्रो ! कृष्ण के कथन मे क्या तत्त्व है ? इसे आप नही समझे होगे। श्रीकृष्ण महान् नीतिज्ञ थे। जानते थे कि दुर्योधन के भोजन मे बुरी भावनाएं घुसी हुई हैं। मैं इसका भोजन करूंगा तो मेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाएगी। दुर्योधन के अन्न ने भीष्म आदि की बुद्धि बदल डाली थी, यह बात उन्होने स्वय स्वीकार की है। अस्तु।

दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से कहा—फरमाइए, आपका क्या काम है ?

कृष्ण—मैं युधिष्ठिर का दूत बनकर आया हूं। तुम्हारे लिए उचित है कि उनका राज्य उन्हे लौटा दो। तुमने बारह वर्ष के वनवास के लिए कहा था। वह उन्होने पूरा कर लिया है। अब राज्य पर तुम्हारा कोई अधिकार नही है। किन्तु अगर इतना नही कर सकते तो पांच गांव ही उन्हे दे दो।

दुर्योधन—इस विषय मे पीछे सलाह करेगे। पहले भोजन कर लीजिये।

कृष्ण—पीछे सलाह क्या करोगे, दगा दोगे। आड़ी-टेढ़ी बातें बनाने से कोई लाभ नही। दुर्योधन, मैं तुम्हारे यहा भोजन नहीं कर सकता।

कृष्णजी ने उद्धव से कहा—उद्धव चलो। विदुर के घर जाकर भोजन करेंगे और वही ठहरेगे।

उद्धव ने लोगो को जतलाने के लिए कहा—नाथ, वहां क्यो ? विदुर की झोपड़ी टूटी-फूटी है। वहां भोजन साधारण होगा। महाराज, यह सुन्दर महल और उत्तम भोजन त्याग कर वहा क्यो चलते हैं ?

कृष्ण—उद्धव, तुम समझते नही। यहा के उत्तम भोजन मे युद्ध भावना का विप मिला हुआ है। मैं ऐसा भोजन पसन्द नही करता। मुझे यह महल भी अच्छा नहीं लगता। मैं विदुर की झोंपडी को इस महल से श्रेष्ठ समझता हू।

कृष्णजी विदुर के घर चले गये। उस समय विदुरजी कही वाहर गये हुए थे। विदुर की पत्नी ने कृष्ण के समान अतिथि को अनायास अपनी झोपडी मे आया देखा तो उसने अपना धन्य भाग्य समझा। वह भावना मे मस्त हो गई। कृष्णजी भोजन करने बैठे तो उन्हे केले के छिलके-छिलके परोसती और आप केला खाती जाती। भक्ति और' प्रीति मे वह बेभान हो रही थी। उसे खयाल ही न रहा कि वह क्या खिला रही है और स्वय क्या खा रही है ?

इसी समय विदुरजी बाहर से आ पहुचे। उन्होने यह अनूठा अतिथि-सत्कार देखकर कहा—पगली, यह क्या कर रही है ! यह सुनकर विदुरपत्नी को होश आया।

कृष्णजी बोले—विदुरजी, आपने भोजन का सारा मजा किरकिरा कर दिया ! केले के उन छिलको मे प्रीति का अनूठा ही रस था ।

मित्रो ! अप्रीति के पकवानो मे भी वह रस नही है, जो प्रेम के छिलको मे है ।

५६ : गांधीजी

रवीन्द्रनाथ एक बार अमेरिका गये । अमेरिका-वासियो ने उनसे कहा—भारत के गांधीजी की हम बहुत प्रशंसा सुनते हैं । आपके साथ उनका सन्निकट परिचय होगा । कृपया गाधी जी के सम्बन्ध मे आप अपने विचार प्रकट कोजिए ।

रवीन्द्रनाथ ने कहा—गाधीजी को मैने देखा क्यों नही है ? मेरा उनके साथ घनिष्ठ परिचय भी है । पर कठिनाई यह है कि जिस रूप मे मैंने गाधी जी को देखा है, उसका वर्णन नही किया जा सकता । गाधी जी की महत्ता उनके शरीर के कारण नही है । शारीरिक दृष्टि से वे बहुत ह्रस्व हैं, फिर भी वे महान् हैं । भूतवादियों के

मत से सारी करामात भूतो की है । इस दृष्टि से जिसका भारी-भरकम शरीर हो, वही महान् होना चाहिए और जिसका शरीर दुर्बल हो वह तुच्छ होना चाहिए । मगर गाधी जी इस भूतवाद के सशरीर साक्षात् खडन हैं। शरीर से दुबले-पतले होने पर भी उनमे तीन बाते ऐसी हैं, जिनके कारण उनकी महत्ता है । पहली बात उनमे निर्भयता है । मैं कवि–सम्राट् कहलाता हू पर कोई छुरा लेकर मुझे मारने आवे तो अपने बचाव के लिए मैं प्रयत्न करूंगा और भाग जाऊगा । मेरा हृदय भय से कांप उठेगा । मगर गाधी जी को मारने के लिए अगर कोई छुरा लेकर जायेगा तो उसे देखकर वे लेश मात्र भी भयभीत न होगे । यही नही, वरन् हसेंगे, मुस्कराएगे और पहले से भी अधिक प्रसन्न होगे । उनकी दूसरी महत्ता है—सत्य के प्रति दृढता । अगर सम्पूर्ण अमेरीका का विपुल वैभव उनके चरणो पर चढा दिया जाय और बदले में सत्य का परित्याग कर असत्य आचरण करने के लिए कहा जाय तो वे उस वैभव को लात मार देगे । वे सत्य का त्याग नही करेंगे ।

गाधी जी अमेरिका की अतुल धनराशि को सत्य के लिए ठुकरा सकते है, पर आप लोगो मे कोई ऐसा तो नही है जो आठ आने के लिए साठ बार असत्य का आचरण कर सकता हो ? भीलो के विषय मे कहा जाता है कि शपथ दिलाने पर वे मरने से बचने के लिए भी झूठ नही बोलते । फिर आप कुलीन और धर्मात्मा कहला कर भी अगर तुच्छ बात के लिए असत्य का आचरण करे, तो कितना अनुचित है ? सत्य के प्रति गाधी जी की दृढता से

यह जाना जा सकता है कि जब आज भी इस प्रकार का सत्यनिष्ठ व्यक्ति हो सकता है तो अर्हन्तो के समय मे पूर्ण सत्य की प्रतिष्ठा हो तो इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है ? कामदेव श्रावक को गजब का भय दिखाया गया पर उसने सत्य का परित्याग नही किया। सीता अनेक प्रलोभनो के आगे भी सत्य की ही आराधना करती रही ! इन सब प्राचीन आख्यानो को गांधी जी की सत्यनिष्ठा देखते हुए कपोल-कल्पना या मिथ्या कैसे कहा जा सकता है ? गाधी जी की सत्यनिष्ठा को देखते हुए सहज ही यह विचार आता है कि इस गये गुजरे जमाने मे भी अगर सत्य के प्रति ऐसी दृढता दिखाने वाले पुरुष मौजूद हैं तो प्राचीन काल मे ऐसे सत्यनिष्ठ पुरुष क्यो न रहे होगे ?

कवि सम्राट् ने आगे कहा—गाधी जी मे प्रामाणिकता की भी प्रचुरता है। उनके जीवन व्यवहार मे कही अप्रामाणिकता का प्रवेश नही देखा जाता। आप चाहे जितनी सम्पत्ति उन्हे दीजिये, जिस कार्य के लिए आप देंगे, उसी में वे व्यय करेगे। एक पाई भी वे उसमें से अपने लिए व्यय न होने देंगे।

एक ओर इस समय भी गाधी जी इसी प्रकार की प्रामाणिकता रखते हैं, दूसरी ओर आजकल अप्रामाणिकता की पराकाष्ठा देखी जाती है। कई लोग अपने यहा जमा धर्मादा खाते की रकम मे से थोडा बहुत देकर नाम कमाते हैं और कुछ तो धर्मादे की सारी रकम ही हडप जाते है। ऐसे लोगो को गाधी जी की प्रामाणिकता से शिक्षा लेनी चाहिये।

गाधी जी की इन विशेषताओ को सुनकर अमेरिका के बड़े-बडे पादरियों तक ने उन्हे ससार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष स्वीकार किया। गाधी जी मे उल्लिखित विशेषताओ के अतिरिक्त और भी अनेक असाधारण गुण विद्यमान हैं। उन गुणो के सम्बन्ध मे वही व्यक्ति ठीक-ठीक बतला सकता है, जो गाधीजी के निकट परिचय में रहता है। फिर भी उनके सार्वजनिक जीवन से फलित होने वाले कुछ गुणो का सभी को परिचय मिलता है। उन अनुकरणीय गुणों मे से एक है—सेवाधर्म। गाधी जी के सेवाधर्म के विषय मे श्रीयुत् श्रीनिवास शास्त्री ने कहा है। शास्त्री जी राजनीति में नरम दली माने जाते थे। गाधी जी से उनका राजनैतिक मतभेद भी रहता था। शास्त्री जी ने सन् १९१४ मे यूरोप मे देखा कि गाधी जी भयकर कोढी और इसी प्रकार के अन्य रोगियो के शरीर पर भी अपने हाथो से पट्टी बाधते हैं। सहानुभूति से उनका हृदय द्रवित हो रहा है। प्रेम की प्राञ्जल ज्योति उनकी आखो मे चमक रही है। यह सब देखकर श्री निवास जी शास्त्री का हृदय गाधी जी के विषय मे सहसा पलट गया। मन ही मन गाधी जी जैसे सच्चे मानव-सेवक की अवज्ञा करने के अपराध के लिए उन्होने पश्चात्ताप किया।

गाधी जी की विशेषता को जान लेना मात्र ही आपके लिए पर्याप्त नही है। उनके जीवन की अपने जीवन के साथ तुलना भी कर देखो। गाधी जी अज्ञात-अपरिचित रोगियो की आत्मीय भाव से सेवा करते हैं, तब आप अपने घर के या सहधर्मी की भी सेवा करते हैं, या नही? किसी

दीन-दु:खी को देख कर आप लापरवाही से यह तो नही सोचते या कहते कि—हम क्या करें, इसने जैसा किया है वैसा ही भोगेगा ? इसके कर्म-फल-भोग मे हम हस्तक्षेप क्यो करे ? अगर आपके मुख से ऐसे शब्द निकलते हैं तो आप अपनी वाणी का दुरुपयोग ही नही करते बल्कि मानवता के प्रति घोर अपराध करते हैं। अगर हाथी के भव के मेघकुमार ने यही सोचा होता कि यह खरगोश अपने किये का फल भोग रहा है, तो क्या हाथी मेघकुमार का जीवन पा सकता था ? वास्तव में दु.खी को देखकर जिसके दिल मे दया का स्रोत बहने लगता है, उसके दु ख उसी स्रोत मे बह जाते है। जिसका अन्त करण करुणा की कल्लोलमाला से सकुल है, उसने अपना जीवन सार्थक बनाया है। सेवा, मानव-जीवन का बहुमूल्य लाभ है। सेवा की सीमा नही है। वहा पर स्व-पर का भेद नही है। अपनी सताने के समान ही प्रेमपूर्वक दूसरे की सन्तान की सेवा करना मनुष्य का पवित्र कर्त्तव्य है। शास्त्र सेवा भावना की शिक्षा देता है। शास्त्र की इस शिक्षा के होते हुए भी सेवा मे आपको कठिनाई प्रतीत होती है। गाधी जी जैसी महिमा यदि आपको मिले तो आप बड़ी प्रसन्नता के साथ उसे अपना लेने को तत्पर हो आएगे, पर गाधी जी जैसी सेवा करने का कार्य किसी और को सौप देने का प्रयत्न करेगे। गांधी जी की सेवा—भावना ने उनके विरोधियो को भी अपना प्रशसक बना लिया है। आज उनके विरोधी भी मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशसा करते है।

जैन शास्त्र मे क्षमा की बडी प्रशसा की गई है। साधु

के दस धर्मों मे क्षमा को पहला स्थान दिया गया है। साथ ही क्षमा का असली रूप क्या है और उसकी सीमा क्या है, यह बताने के लिए गजसुकुमार मुनि का आदर्श दृष्टान्त भी शास्त्रो मे लिखा है। गजसुकुमार की क्षमा चरम सीमा की क्षमा है।

गाधी जी की क्षमा के विषय मे एक बात सुनी जाती है। दक्षिण अफ्रीका मे गाधी जी ने सत्याग्रह सग्राम छेड़ा था। उस समय एक पठान को न मालूम क्यो यह सदेह हो गया कि उन्होने हमे तो सत्याग्रह मे झौक रखा है और आप स्वयं सरकार से मिल गये हैं। पठान इस संदेह के कारण गाधीजी पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उन्हे मार डालने तक के लिए सकल्प कर बैठा।

एक दिन पठान को गाधीजी मिल गये। पठान मौका देख ही रहा था, उसने उन्हे उठा कर गटर मे पटक दिया। गाधीजी चोट खाकर बेहोश हो गये। उनके मित्रो ने पता लगाकर उन्हे अस्पताल पहुंचाया। गाधी जी होश मे आये। उनके मित्रो ने कहा—आपको उस दुष्ट पठान ने बहुत कष्ट पहुचाया है। आपके ठीक होते ही उस पर मुकदमा चलाया जायेगा। गाधीजी की महत्ता उस समय देखने योग्य थी। उन्होने कहा—अपने भाई पर मुकदमा मैं नही चला सकता। उसे मुझ पर सदेह हुआ और इसी कारण उसने मेरे साथ यह व्यवहार किया है। ऐसे-प्रसग तो मेरी क्षमा की कसौटी है। मुझ मे कितनी क्षमा है, यह अब मालूम हो सकेगा। गन्ना खेत मे भी मीठा रहता है, घानी मे पेला जाता है तब भी मीठा रहता है, भट्टी पर चढाने पर भी मीठा रहता

है। वह अपनी मिठास कभी नही त्यागता है। मैं क्या गन्ने से भी बदतर हू, जो अपनी प्रकृति का परित्याग कर अपने ही एक भाई पर दावा करू ! चलो, उसके पास चलें और इस तरह कसौटी करने के कारण उसका आभार मानें।

गाधीजी उसके यहा गये। गांधीजी की बातें सुनकर उसका हृदय पलट गया। वह अपने कृत्य के लिए पश्चात्ताप करने लगा कि मैंने लोगों के कहने-सुनने से व्यर्थ ही एक सत्पुरुष को पीडा पहुचाई। पठान ने अन्त में गांधीजी के पैरो में पडकर क्षमा याचना की। गाधी जी ने अगर पठान पर मुकदमा दायर किया होता तो वे उसे कारागार मे भले ही भिजवा देते, पर उस पर विजय नही प्राप्त कर सकते थे। उस अवस्था में दोनो को वह रस कैसे मिलता।

गाधीजी की दया के विषय में भी एक घटना सुनी जाती है। जगत् के दूसरे लोग जिसे दुतकारते है, सच्चा दयालु उसे अपनी दया का प्रथम पात्र समझता है। आज ससार में बहुतेरे लोग है जो मु ह से दया-दया चिल्लाते हैं पर दया के लिए करते कुछ भी नही है। मगर गांधीजी ने दया के लिए क्या किया है, यह ध्यान देने योग्य है। गाधीजी गन्तूर गये थे। वहा वेश्याओं की एक सभा थी। वेश्याओ ने गाधी जी से मिलने का विचार किया। गाधीजी ने कहा—वे बहिनें हैं, प्रसन्नता के साथ मुझ से मिल सकती है। आखिर वे गाधोजी से मिलीं। गाधीजी ने उनके वस्त्र देख कर कहा—बहिनो ! तुम इस प्रकार के गन्दे वस्त्र न पहना करो। तब वेश्याओं ने कहा—आप इन वस्त्रों को गन्दा कहते है, पर हमारे पास दूसरे वस्त्र नही है।

वेश्याओ का यह कथन सुनकर गाधीजी ने कहा—नीच धन्धा करने पर भी अगर इन्हे पूरे और साफ-सुथरे वस्त्र नसीब नही होते तो मेरे दूसरे गरीब भाइयो की क्या स्थिति होगी ? यह सोच कर उन्होने अपने सब कपडे त्याग दिये । वे चादर और लगोटी लगा कर रहने लगे ।

दया का यह कैसा आदर्श उदाहरण है । आप तो दया की खातिर चर्बी के भी वस्त्र नही त्याग सकते ! अगर आप सच्चे अहिंसा—धर्म का पालन करें तो आपका भी कल्याण हो और दूसरो का भी । चर्बी लगे हुये वस्त्र की अपेक्षा खादी मे अधिक पैसे लगते जान पड़ेंगे, लेकिन यह देखना चाहिए कि खादी मे खर्च हुआ प्रत्येक पैसा हमारे देश के गरीव भाइयो के पास पहुचता हैं और मैनचेस्टर की मलमल मे व्यय हुआ रुपया विदेश चला जाता है । अग्रेज लोग अपने देश का कितना खयाल रखते हैं ! कहते हैं, बम्बई मे एक अग्रेज ने अपने नौकर से बूट की जोडी मगवाई । नौकर बाजार गया । उसने देखा—देशी बूट और विलायती बूट वनावट और मजबूती में समान हैं । फिर भी देशी कीमत मे सस्ते और विलायती महगे है । यह सोच कर वह देशी बूट ले आया । अग्रेज ने कहा—अरे यह इन्डियन बूट तू क्यो ले आया है ? नौकर ने जब देशी बूट लाने का कारण उसे समझाया, तब वह अग्रेज कहने लगा—विलायती बूट महगा है तो भी मुझे वही खरीदना है । वह पैसा मेरे देश मे रहेगा । अगर हम लोग इस प्रकार दूसरे देश को अपना पैसा देने लगेंगे, तो हम अपनी मातृभूमि के द्रोही हो जाएगे ।

गाधी जी की दया का एक और उदाहरण सुनिये। सुना है राजकोट के ठाकुर साहब लाखाजीराज गांधी जी के प्रति बहुत सद्भाव रखते थे। गांधी जी जब राजकोट आये, तो लाखाजीराज ने उन्हे मान-पत्र देने का विचार किया। मान-पत्र रखने के लिए उन्होने पैरिस से एक बढ़िया सन्दूक बनवा कर मगवाया। सदूक अत्यन्त सुन्दर था। पर जिसके हृदय मे पाप के प्रति गर्हा होती है, वह दूसरो के पाप को भी अपना पाप मानता है। बेटे की बीमारी के लिए बाप अपने भाग्य को कोसता है। बाप अपने बेटे को ही बेटा समझता है, पर जिसका हृदय अत्यन्त उदार होता है, जो 'वसुधैव कुटुम्बकम' की विशाल भावना का प्रतीक बन जाता है, वह इस बात का भलीभाति विचार करने लगता है कि मेरे असयम से किस-किस प्रकार का कष्ट होता है!

गाधी जी ने राजकोट मे ही शिक्षा पाई थी और वही पर साधुमार्गी जैन महात्मा बेचरजी स्वामी से मन्दिरा, मास और परस्त्री-सेवन का त्याग किया था। उन्होने जिन चीजो का त्याग किया, अनेक कष्ट उठाने पर भी फिर कभी उनका सेवन नही किया।

लाखाजीराज पेरिस से बनकर आये हुए सदूक मे मान-पत्र देने लगे। उस समय गाधीजी ने कहा—हमारे लाखो भाई रोटी के लिए तरस रहे हैं। इस अवस्था मे मुझे ऐसे सन्दूक मे मानपत्र देना क्या मेरा उपहास नही है? ऐसा कीमती सन्दूक रखने की जगह भी मेरे घर मे नही है। गाधी जी मे यह कैसा अपुरस्कार भाव है।

गांधी जी मे अनेक उत्तमोत्तम सद्गुण हैं। उनकी प्रामाणिकता की प्रशसा उनके विरोधी भी करते हैं। उनकी सादगी सराहनीय है। हृदय मे सच्ची दया तभी अकुरित होती है, जब श्रीमन्ताई का ढंग त्याग कर सादगी अपनाई जाती है। इसीलिए उन्होने श्रीमन्ताई त्याग कर फकीरी बाना धारण किया है। वे अगर चाहते तो श्रीमत बनकर ससार के सभी भोग-विलास भोग सकते थे। कहते हैं—गांधी जी के लड़के ने उन्हे पत्र लिखा था कि—'अब आप बड़े आदमी गिने जाते हैं, आप बेरिस्टर भी हैं और बुद्धिमान भी हैं। इसलिए अब आप ऐसा व्यवसाय सोचिए जिसमे हम लोग श्रीमंत बन सकें।' उसका अत्यन्त भावमय और धार्मिक उत्तर गाधी जी ने दिया था। उन्होने लिखा था—"मैं सुदामा और नरसी मेहता से ज्यादा गरीब बनने की भावना रखता हू। तुम बहुत धनवान् बनना चाहते हो और मैं बहुत गरीब बनना चाहता हू। ऐसी दशा मे तुम्हारा और मेरा मेल कैसे बैठेगा ?

आजकल बहुत से लोग श्रीमन्ताई के ढोग मे पड़कर गरीबो की ओर से आखें बन्द कर लेते हैं। उनके दिल मे दीन-दुखियो की सेवा-सहायता करने का विचार तक नही आता है। मगर उन्हे यह ध्यान रखना चाहिए कि समाज की यह विषमता एक दिन असह्य हो जायगी और तब भयकर क्राति होगी। उस क्राति मे गरीब-अमीर का भेद-भाव विनष्ट हो जायगा और एक नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होगा। बनेडा (मेवाड) मे पूज्य श्रीलाल जी महाराज ने कहा था कि—'गरीबों पर दया करो। उनकी

उपेक्षा न करो। नही तो बोलशेविज्म आ जायेगा ! उस समय आप श्रीमत लोगो को कष्ट मे पडना पडेगा। उस समय गरीब लोग अमीरो से कहेगे—'बताओ तुम्हारे पास यह धन कहा से आया है ? हम गरीबो की रोटियों को पैसे के रूप में जमा करके हमे तुमने भूखो मारा है। अब तुम अमीर और हम गरीब नही रह सकते। तुम्हे भी हमारे समान बनना पडेगा। हमारे समान परिश्रम करके खाना होगा। अब दूसरे के परिश्रम पर चैन की गुड्डी नही उड़ा सकते। बिना पर्याप्त परिश्रम किये किसी को भर-पेट खाने का क्या अधिकार है ?' इस प्रकार जिन गरीबो की आज उपेक्षा की जाती है, वही गरीब आपकी श्रीमताई नष्ट कर डालेंगे। अगर आप चाहते हैं कि बोलशेविज्म न आवे—क्योकि वह सिद्धान्त भी अनेक दोषो और त्रुटियों से भरा हुआ है—तो आपको गरीबो की सुधि लेनी चाहिए। अगर आप गरीबो की रक्षा करेगे, तो गरीब आपकी रक्षा में अपने प्राण तक निछावर कर देगे। इस सम्बन्ध मे आपको गाधी जी की जीवनी से शिक्षा लेनी चाहिए।

४७ : उपवास

गांधी जी ने अपने जीवन मे अनेक बार उपवास किये हैं। उन्होने उपवास की महिमा और शक्ति समझ ली थी।

एक बार उन्होने इक्कीस दिन का उपवास किया। सुनते हैं, किसी ने उनसे प्रार्थना की—आपका शरीर पहले से ही दुबला-पतला है। अब उपवास करके उसे अधिक सुखाना उचित नही है। आप कृपा कर उपवास छोड दे।

गाधी जी ने उत्तर दिया—फिर यो कहो कि जीना ही छोड दो। गाधी जी के उत्तर का स्पष्ट अर्थ यह है कि जीवन भोजन पर ही निर्भर नहीं है, किन्तु उपवास पर भी निर्भर है।

❀ ❀

एक बार किसी ने गाधीजी से प्रश्न किया—क्या आप महात्मा है ? गाधी जी ने कहा—लोग ऐसा कहते हैं, पर मुझे ऐसा नही जान पडता कि मैं महात्मा हू।

प्रश्नकर्त्ता—तो फिर आप महात्मा कहने वालो को रोकते क्यो नही हैं ?

गाधी जी—रोकने से तो ज्यादा-ज्यादा कहते हैं।

❀ ❀

एक दिन इग्लैण्ड मे उनसे पूछा गया—महात्मा किसे कहते हैं ?

गाधी जी—जो तुच्छ से तुच्छ हो, उसे महात्मा कहते हैं ?

△

उपेक्षा न करो । नही तो बोलशेविज्म आ जायेगा ! उस समय आप श्रीमत लोगो को कष्ट मे पडना पड़ेगा । उस समय गरीब लोग अमीरो से कहेगे—'बताओ तुम्हारे पास यह धन कहा से आया है ? हम गरीबो की रोटियो को पैसे के रूप में जमा करके हमे तुमने भूखो मारा है । अब तुम अमीर और हम गरीब नही रह सकते । तुम्हे भी हमारे समान बनना पड़ेगा । हमारे समान परिश्रम करके खाना होगा । अब दूसरे के परिश्रम पर चैन की गुड्डी नही उडा सकते । विना पर्याप्त परिश्रम किये किसी को भर-पेट खाने का क्या अधिकार है ?' इस प्रकार जिन गरीबो की आज उपेक्षा की जाती है, वही गरीब आपकी श्रीमताई नष्ट कर डालेगे । अगर आप चाहते हैं कि बोलशेविज्म न आवे—क्योकि वह सिद्धान्त भी अनेक दोषो और त्रुटियो से भरा हुआ है—तो आपको गरीबो की सुधि लेनी चाहिए । अगर आप गरीबो की रक्षा करेंगे, तो गरीब आपकी रक्षा में अपने प्राण तक निछावर कर देंगे । इस सम्बन्ध मे आपको गाधी जी की जीवनी से शिक्षा लेनी चाहिए ।

४७ : उपवास

गांधी जी ने अपने जीवन में अनेक बार उपवास किये हैं । उन्होने उपवास की महिमा और शक्ति समझ ली थी ।

एक बार उन्होने इक्कीस दिन का उपवास किया। सुनते हैं, किसी ने उनसे प्रार्थना की—आपका शरीर पहले से ही दुबला-पतला है। अब उपवास करके उसे अधिक सुखाना उचित नही है। आप कृपा कर उपवास छोड दे।

गाधी जी ने उत्तर दिया—फिर यो कहो कि जीना ही छोड दो। गाधी जी के उत्तर का स्पष्ट अर्थ यह है कि जीवन भोजन पर ही निर्भर नहीं है, किन्तु उपवास पर भी निर्भर है।

❀ ❀

एक बार किसी ने गाधीजी से प्रश्न किया—क्या आप महात्मा हैं? गाधी जी ने कहा—लोग ऐसा कहते हैं, पर मुझे ऐसा नही जान पडता कि मैं महात्मा हू।

प्रश्नकर्त्ता—तो फिर आप महात्मा कहने वालो को रोकते क्यो नही हैं?

गाधी जी—रोकने से तो ज्यादा-ज्यादा कहते हैं।

❀ ❀

एक दिन इग्लैण्ड मे उनसे पूछा गया—महात्मा किसे कहते हैं?

गाधी जी—जो तुच्छ से तुच्छ हो, उसे महात्मा कहते हैं?

△

४८ : वीर बालक

भारत के इतिहास में सिक्खों का इतिहास बडा जाज्वल्यमान है । सच्चे क्षात्रधर्म की झलक उनमे दिखाई देती हैं। माता के सामने उसके प्राण-प्यारे बच्चे के टुकडे-टुकडे कर दिये गये । मगर माता ने धर्म का परित्याग करना स्वीकार न किया। उन्हे भयंकर से भयंकर त्रास दिया गया, मगर उन्होने सभी कुछ हसते-हसते स्वीकार कर लिया। गुरु गोविन्दसिह के बच्चो को बादशाह भीत मे चिनता है, फिर भी वे धर्म त्यागने से इन्कार ही करते हैं । जब बडे भाई को बादशाह दीवार में चिनता है तो छोटा भाई खडा-खडा रोता है । उसे रोते देख बादशाह समझता है कि यह डर गया है । इसलिए धर्म छोड देगा । वह लडके को आश्वासन देकर कहता है—बच्चे, रोओ मत । तुम्हे नही चिनेगे । किन्तु वह कहता है–डर कर नही रोता—दीवार मे चिने जाने का मुझे खौफ नही है। मुझे अफसोस यह है कि मैं अपने भाई से पहले क्यो नही चिना गया ? मेरा भाई हसते-हसते धर्म के ऊपर बलिदान हो गया । उसका बलिदान मेरी आंखो ने देखा, पर मेरा बलिदान कौन देखेगा ? ऐसा सोचकर मुझे रोना आता है ।

ओह ! कितनी वीरता है ! कितनी धीरता है !

४१ : दृढ़ता

'सीता की अग्नि परीक्षा' पुस्तक मे लिखा है—एक बादशाह ने अपनी मूर्ति बनवाकर ढिढोरा पिटवा दिया कि सब लोग मेरी मूर्ति के सामने सिर झुकाए और इसे ईश्वर के तुल्य माने। बादशाह के हुक्म के अनुसार हजारो नर-नारी—जो बेचारे कायर थे—उस मूर्ति के सामने सिर झुकाते। परन्तु बादशाह के खास वजीर और सेनापति ने सिर नही झुकाया। यह बात बादशाह को मालूम हुई। उसने कहा- सब लोग मुझे सिर झुकाते हैं, पर मेरा ही नौकर मेरी मूर्ति के आगे सिर नही झुकाता ! यह बर्दाश्त नही किया जा सकता। उसे अभी मेरे सामने बुलाओ।

वजीर हाजिर हुआ। बादशाह ने क्रोध-भरे स्वर मे कहा- क्यो जी, तुम उस मूर्ति के सामने सिर क्यो नही झुकाते ?

वजीर—मैं उस मूर्ति के सामने सिर नही झुकाऊगा और न उसे ईश्वर मानूगा।

वजीर के ये शब्द सुनकर बादशाह के क्रोध का पारा बहुत ऊचा चढ गया। उसने वजीर को जला डालने की आज्ञा दे दी।

वजीर को अग्नि में प्रविष्ट किया गया, पर उसके कपडे का एक सूत भी न जला। बादशाह ने उसका आत्म-

विश्वास देखकर और आश्चर्यजनक घटना से चकित होकर अपना हठ छोड दिया ।

मित्रो ! आत्मविश्वासियो के उदाहरणों से इतिहास भरा पडा है । उन्हे पढे तो पता चलेगा कि कितने ही पुरुषों और नारियो ने नारकीय यातनाए सहन करना स्वीकार किया मगर अपना दृढ विश्वास न छोड़ा ।

५० : उदारता

आजकल के लोग अपने धन का सद्व्यय न करके विवाह शादी मे, वेश्या–नृत्य मे और फुलवाडी लुटाने में व्यय करते हैं । गरीबो को भी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए उनकी देखादेखी ऐसा करना पडता है । उन्हे नीति और सत्य के काम पसन्द नही आते । लेकिन बाजार जब मन्दा होता है आमदनी का द्वार बन्द हो जाता है, तब उनकी आखे खुलती है । उस समय इन खर्चो की बुराइया उनकी समझ मे आती हैं । ऐसे समय मे पहले वे परोपकार के कार्यों को बन्द करते हैं । जहा धन का विशेष और अनावश्यक व्यय होता है, वहां फिर भी व्यय करते रहते हैं । प्रकृति से भद्र मनुष्य परोपकार

का कार्य कडी से कड़ी और बडी से बड़ी मुसीबत आने पर बन्द नही करते । एक दन्तकथा प्रसिद्ध है:—

युद्ध के समय महाराणा प्रताप, जगल मे एक छोटे से खेमे में परिवार सहित रहते थे । नौकर अगर कोई रहा होगा तो केवल भील । बादशाह अकबर ने ऐसे समय राणा की शक्ति और धैर्य की परीक्षा करने का विचार किया । स्वयं अकबर फकीर का भेष वना कर उस जगल मे जा पहुचा । वह राणा के खेमे पर पहुचा । सूचना मिलने पर राणा प्रताप वाहर आये । फकीर ने कहा—राणा जी, आपका बड़ा नाम और प्रताप सुनकर आया हू । मैं चांदी के थाल मे मेवे की खिचडी खाना चाहता हू । खिलाओगे?

फकीर की याचना से राणा को मार्मिक व्यथा होने लगी । राणा ने सोचा—यहा जगली फल-फूल खाकर काम चलाया जा रहा है और फकीर चांदी की थाली मे मेवे की खिचडी मांग रहा है । यह कोई असाधारण घटना है । साधारण फकीर की यह माग नही हो सकती । मैं नाही करू तो कैसे ? और हा करके खिलाऊ कैसे ?

राणा ने फकीर को बैठने का आमन्त्रण दिया और आप खेमे मे गया । राणा का धैर्य जवाव दे रहा था । अतिथि का यथेष्ट सत्कार न कर सकते हुए जीवित रहने से तो मृत्यु हो जाना श्रेष्ठ है । इस प्रकार विचार कर उन्होने अपघात करना निश्चित कर लिया । पीछे के द्वार से निकल कर राणा जगल मे चले गये और सोचने लगे—

किस प्रकार मरना चाहिए ? सयोग से उस समय एक मनुष्य लदा हुआ बैल लेकर उनके समीप आया और कहने लगा—आप थोडी देर बैल को थामे रहे तो मैं शौच हो आऊ । राणा ने सोचा मुझे मरना तो है ही, अन्तिम समय मे इसका छोटा सा काम क्यो न कर दू ? राणा ने वैल पकड लिया । वैल का मालिक आखो से ओझल हो गया । वह गया सो सदा के लिए चला गया, फिर लौट कर न आया । राणा ने उसे आवाजे लगाईं, चिल्ला-चिल्ला कर पुकारा । प्रतिध्वनि के सिवाय और कही से कोई उत्तर न मिला ।

इधर राणा को खेमे मे न देख परिवार के लोग चिन्ता मे पड़ गये । कुछ लोग इधर-उधर खोजने निकले । राणा मिले, बैल को थामे हुए । उन्होने ऐसा करने का कारण पूछा । राणा ने सब वृत्तान्त कहा और बैल के स्वामी को खोज निकालने का आदेश दिया । अनुचर उसकी तलाश मे निकले । पैरो के निशान देखते वे आगे बढे तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न था । कुछ ही दूर जाकर पैरो के निशान गायब थे । जान पडता था—वह अचानक विलीन हो गया ।

लाचार राणा बैल लिए अपने खेमे पर आये । बैल पर लदी गौन उतार कर देखा तो उसमे एक ओर मेवा भरा था और दूसरी ओर चादी के थाल ।

राणा ने मेवे की खिचडी बनवाई और फकीर वेष-धारी बादशाह को इच्छा-भोजन कराया । बादशाह यह

देखकर हैरान रह गया—इस प्रकार सोचता हुआ बादशाह वहां से चल दिया ।

ऐसी ही एक कथा सुप्रसिद्ध युरोपियन वीर नैपोलियन बोनापार्ट के विषय मे प्रचलित है । कहते है, नैपोलियन के पास पैसे नही थे । उसे बड़ी लज्जा हुई और वह मरने का सङ्कल्प करके नदी की ओर चला । इसी बीच उसके एक मित्र ने आकर उसके हाथ मे रुपयो से भरी एक थैली दी और कहा—'जरा इसे लीजिए । मैं लघु शकाकर आता हू । थैली देकर वह मित्र ऐसा गायब हुआ कि फिर आया ही नही ।

इन कथाओ का तात्पर्य यह है कि उदार मनुष्य प्रकृति के सत्य के काम को नही बिगाड़ते और प्रकृति भी उनकी सहायता करती है ।

५१—दो बहिनें-सम्पत्ति और विपत्ति

राजा भोज अपनी सभा मे बैठा हुआ पण्डितों के साथ विनोद की बाते कर रहा था । उसके द्वार पर एक

पण्डित आया। वह पण्डित शरीर से दुर्बल था। उसके बाल रूखे थे। मस्तक पर लम्बी सी चोटी फहरा रही थी। द्वार पर आकर उसने पहरेदार से कहा—मै महाराज भोज से मिलना चाहता हूं।

पहरेदार ने व्यगपूर्वक कहा—महाराज को और काम ही क्या है। वह तो तुम जैसो से मिलने के लिए ही बैठ हैं न! दिन भर में तुम सरीखे सैकड़ो आते हैं। महाराज किस-किस से मिले?

पण्डित—तू आज नही मिलने देगा तो मैं कल या दो दिन बाद मिल लूगा। लेकिन ऐसा न हो कि तेरा कोई अहित हो जाय! तू जाकर राजा से कह दे कि आपके भाई आये हैं। यदि वह मुझे अपना भाई बतलाए तो तू मुझे ले चलना, नही तो मत ले चलना।

पहरेदार को यह बात पसद आई। उसने जाकर राजा से कहा—एक पुरुष द्वार पर खड़ा है। वह अपने को आपका भाई बतलाता है और आपसे मिलना चाहता है।

राजा भोज कुछ विचारने लगे। थोडी देर बाद, मानो कोई भूली बात याद आ गई हो, राजा ने कहा—हा, मेरा एक भाई है। वही आया होगा। तू जा और उसे लिवा ला।

सिपाही उलटे पैरों लौटा। उसने आगत पुरुष से कहा—आप भीतर पधारिये और मेरा अपराध क्षमा कीजिये। अनजान में मुझ से भूल हो गई।

पण्डित—कोई बात नहीं है ! यह तो तुम्हारा कर्त्तव्य ही है।

यह कह कर पण्डित द्वारपाल के साथ राजा के पास गया। पण्डित को देखते ही राजा ने खडे होकर उसका स्वागत किया। राजा के साथ सभासदो को भी उठना ही पड़ता है। वे मन ही मन कहने लगे—यह कौन आया है?

राजा ने उसे अपने साथ सिंहासन पर बिठलाया। सभासद सोचने लगें—चन्द्र के साथ राहू के समान यह सिंहासन पर कौन बैठ गया है ?

सिंहासन पर बैठकर राजा ने प्रश्न किया—कहो, मौसीजी सकुशल हैं ?

पण्डित—हा, अब तक तो सकुशल थी पर आपका दर्शन होते ही वह मर गई है।

राजा—मरना-जीना तो प्रकृति का अटल नियम है। वह किसी के वश की बात नही है। लेकिन उनका अन्तिम सस्कार अच्छी तरह करना।

पण्डित—मेरी दशा आप देख ही रहे हैं। मैं अपनी स्थिति के अनुसार अन्तिम सस्कार करूगा ही। पहनी हुई इस धोती मे से आधी फाड़कर उसके शव पर डाल दूंगा। इससे अधिक क्या कर सकता हू ?

राजा—नही जी, ऐसा क्यों ? अपनी मौसी के अन्तिम संस्कार के लिए मैं तुम्हे सहायता दूंगा ।

पण्डित—आप सहायता देंगे तो उसी के अनुसार क्रियाकर्म कर दूंगा ।

राजा ने भण्डारी को एक हजार मोहरे निकालकर दे देने की आज्ञा दी । भण्डारी यह आज्ञा सुनकर आश्चर्य में पड़ गया । राजा ने उससे कहा—मेरी मौसी का अन्तिम संस्कार करना है, इसलिए मेरे नाम लिखकर दे दो ।

राजा की आज्ञा के अनुसार भण्डारी ने हजार मोहरे गिना दी । ब्राह्मण पण्डित हजार मोहरें लेकर बाहर निकला । उसने पहरेदार को भी कुछ दिया । कई लोग राजसम्मान पाकर दूसरे का अहित करने मे ही अपना बड़प्पन मानते हैं लेकिन ब्राह्मण पण्डित ने पहरेदार का अहित नही किया बल्कि उसे कुछ देकर सन्तुष्ट कर दिया और अपने घर चला गया ।

ब्राह्मण के चले जाने के बाद एक सभासद ने साहस करके पूछा—आपके यह भाई कहां रहते है ? कौन-सी मौसी की बात अभी हो रही थी ? यह पहले तो कभी मिले ही नही ।

राजा—वह मेरा ही नही, तुम लोगो का भी भाई है । लेकिन तुम्हारी आखें फिरी हुई हैं । इसी कारण तुम उसे नही पहचान सके । पहले इस बात पर विचार करो

कि मैं किसका पुत्र हू ? तुम मुझे किसी और का पुत्र बताओगे लेकिन मैं सम्पत्ति का पुत्र हूं । और सम्पत्ति की वहिन है विपत्ति । यह जो अभी आया था, वह विपत्ति का पुत्र है । तुमने देखा ही है कि उसका शरीर कितना कृश था ! बाल कितने रूखे थे ! इससे ज्यादा विपत्ति और क्या हो सकती है । मैं सम्पत्ति-पुत्र हू और वह विपत्ति-पुत्र है । सम्पत्ति और विपत्ति बहिनें है । इस कारण वह मेरा भाई हुआ ।

५२—देवी माता

अद्वैताचार्य नामक एक महान् विद्वान् हो गये हैं । उनके पिता बगाल मे किसी राजा के गुरु थे । अद्वैताचार्य ने एक बार विचार किया—सिर पर कितनी ही बड़ी विपत्ति आ पड़े, फिर भी जो बात सत्य हो—सत्य प्रतीत हो, वही प्रकट करनी चाहिए ।

अद्वैताचार्य के पिता जिस राजा के गुरु थे, वह राजा शाक्त था । देवी का उपासक था । यह बात करीब १५वी या १६वी शताब्दी की है । उस समय देवीपूजा के नाम पर बहुत पशुवध होता था और ब्राह्मण पण्डित वेद के नाम पर उसका समर्थन करते थे ।

एक दिन अद्वैताचार्य देवी के मन्दिर मे गये तो राजा देवी का पूजन कर रहा था। अद्वैताचार्य देवी को नमस्कार किये बिना ही देवी के सामने बैठ गये। उनके इस व्यव-हार को देखकर राजा सोचने लगा—यह मेरे राजगुरु का पुत्र होकर भी देवी का इस प्रकार अपमान करता है! राजा से रहा नही गया। उसने अद्वैताचार्य से कहा—तेरी बुद्धि तो ठिकाने है न ?

अद्वैताचार्य—हां महाराज, बुद्धि ठिकाने ही है।

राजा—तो जरा अपने व्यवहार पर विचार कर।

अद्वैताचार्य—मेरी समझ मे कुछ नही आता। आप ही कहिए।

राजा—तू देवी माता को नमस्कार किये बिना कैसे बैठ गया ?

अद्वैताचार्य—यह देवी किसकी माता है, महाराज ?

राजा—देवी मेरी माता है, तेरी माता है और अखिल ससार की माता है।

अद्वैताचार्य—अगर देवी अखिल ससार की माता है तो अपने पशु-पुत्रों को खा क्यो जाती है ? देवीपूजा के नाम पर पशुओ की वलि क्यो चढाई जाती है ? अगर यह देवी सब की माता है तो इन पशुओ की रक्षा क्यों नहीं करती ? माता का कर्त्तव्य तो सन्तान की रक्षा करना है। कोई क्रूर से क्रूर माता भी अपने पुत्रो का भक्षण नही कर

सकती । अगर यह देवी अखिल ससार की माता होकर भी अपनी सन्तानो का नाश करती कराती है तो इसे माता कहा जाय या राक्षसी ?

अद्वैताचार्य को राजा कुछ भी उत्तर नही दे सका । वह चुप हो गया । पर अद्वैताचार्य के पिता ने, जो वहीं बैठे थे, कहा—पुत्र, जान पड़ता है तू भ्रष्ट हो गया है । माता के विषय मे ऐसे शब्द कही बोले जाते हैं । माता तो भोग मांगती है, अतएव उसे पशुओं की बलि दी जाती है ।

अद्वैताचार्य—अगर यह माता अपने पुत्रो का बलिदान मागती है तो मेरी माता मेरी बलि क्यो नही मागती ? आप शास्त्रो के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी सत्य बात प्रकट क्यो नही करते ?

अद्वैताचार्य की युक्तिसगत बात का कोई उत्तर नहीं था ।

सच है—आशा और तृष्णा के फेर मे पडकर लोग सत्य का आचरण करना तो दूर रहा, सत्य बात प्रकट भी नही कर सकते ।

५३—मदिरापान

कहा जाता है, बादशाह अकबर को शराब का शौक लगा। शराब पीने से उसमे खराबी आने लगी। वजीर ने सोचा—बादशाह की यह लत छुडानी चाहिए। लेकिन बडे की जिद को दूर करना भी बडा कठिन काम होता है। वजीर उपाय सोचने लगा।

एक दिन बादशाह नशा करके दरबार मे बैठा था। उसने किसी एलची से न कहने योग्य बात भी कह दी। इससे भी वजीर को खटका हो गया और वह बादशाह को शराब पीने की आदत छुडाने का प्रयत्न करने लगा।

मौका पाकर एक रोज वजीर उस कमरे मे घुस गया, जिसमे बादशाह की शराब रखी रहती थी। उसने एक बोतल उठा कर बगल मे छिपा ली और बादशाह के सामने से छिपता-छिपता चलने लगा। बादशाह ने वजीर को देख-कर कहा—बगल मे क्या छिपा रखा है, वजीर ?

वजीर डरते-डरते बोला—कुछ नही !

बादशाह—कुछ नही ? क्या 'कुछ नहीं' को बगल में छिपाने की जरूरत होती है ?

वजीर—कुत्ता है !

बादशाह—कुत्ता ? और बगल में ?

वजीर—मैं भूल गया हुजूर । घोड़ा है ।

बादशाह—कभी कुत्ता और कभी घोड़ा ! कभी कुछ नही । बात क्या है ? सच-सच कहो ।

वजीर—सच तो यह हाथी है ।

बादशाह—पागल हो गये है क्या ? कही बगल में भी हाथी दबाया जा सकता है ? सच क्यो नही कहता ?

वजीर—माफ कीजिए । कुछ भी नही है ।

बादशाह ने झुझलाकर दुपट्टा हटाया तो शराब की बोतल निकली । उसने कहा—बेवकूफ, यह क्यो नही कहता कि शराब की बोतल है ।

वजीर—यही तो मैं कह रहा था ।

बादशाह—तू तो कुत्ता, हाथी व घोडा और कुछ नही बतला रहा है !

वजीर—हुजूर, एक ही बात है । एक बोतल मे चार ग्लास शराब है । जब तक मनुष्य इसे नही पीता, तब तक यह कुछ नही है । इसी कारण मैंने कहा था कि यह कुछ नही है । जिसने एक ग्लास पी ली, वह कुत्ता बन जाता है । कुत्ते के आगे जो भी जाता है, उसी को वह भौंकने लगता है । वह नही देखता कि कौन आदरणीय है और कौन अनादरणीय है ? एक ग्लास पीने पर आदमी भी ऐसा ही बन जाता है । प्रमाण चाहिए तो आप अपनी कल की

बात याद कीजिए, जो आपने कल उसे कही थी । इसलिए यह शराब नही, कुत्ता है ।

बादशाह—ठीक यह घोड़ा कैसे है ?

वजीर—दूसरा ग्लास पीते ही आदमी घोडा बन जाता है । जैसे घोडा हीसता रहता है, घोड़ी को देखकर बेकाबू हो जाता है वही दशा आदमी की होती है । उसमे बुद्धि नही रहती । इसके अतिरिक्त जैसे घोड़ा सवारी दे सकता है, दूसरे पर सवारी कर नही सकता, इसी प्रकार मनुष्य शराब पीकर दूसरे के अधीन हो जाता है, दूसरे को अपने अधीन नही कर सकता ।

बादशाह—अच्छा, इसे हाथी क्यो कहा !

वजीर—तीसरा ग्लास पीने पर आदमी हाथी सरीखा मस्त हो जाता है । उसे पता नही चलता कि कौन उस पर सवारी कर रहा है ? वह कहा जा रहा है ? कितने अंकुश पड रहे हैं ?

बादशाह - तो फिर 'कुछ नही' क्यों कहा ?

वजीर—इस बोतल की शराब का चौथा प्याला पीने पर मनुष्य मुर्दा-सा हो जाता है । वह चाहे जहां बेभान, सज्ञाहीन होकर पड़ जाता है । इसलिये मैंने कहा—कुछ नही है । आप इसे चाहे शराब कहे, मगर मैं तो इसे कुत्ता, घोडा, हाथी और मुर्दा ही कहना ठीक समझता हूं ।

यह सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ । उसने उसी दिन से शराब पीना त्याग दिया ।

मित्रो ! बादशाह ने द्रव्य-मदिरा का ही त्याग किया, मगर आप भाव-मदिरा का भी त्याग करें। भाव-मदिरा, द्रव्य-मदिरा से अनन्तगुणी हानि करती है। वह भाव-मदिरा है—मोह ! मोह मे बडी ताकत है। इसके प्रभाव से अनन्त शक्ति का धनी आत्मा भी कीड़े-मकोडे और घास जैसी दशा को प्राप्त होता है।

५४--अनुकम्पा

मगध-सम्राट् श्रेणिक के पुत्र मेघकुमार अपने पूर्व-भव से हाथी की योनि मे थे। वह हाथी से मनुष्य कैसे हो गये ? और मनुष्य भी मामूली नही, राजकुमार ! राज-कुमार भी मगध के सम्राट् श्रेणिक के यहा !

यह सब अनुकम्पा का ही प्रताप था !

श्री ज्ञातासूत्र मे उनका वर्णन है। वह इस प्रकार है:—मेघकुमार ने दावानल के प्रकोप से बचने के लिए जगल मे चार कोस का एक मण्डल बनाया। चार कोस के इर्द-गिर्द जमीन मे एक तिनका भी नही रहने दिया। उसने

सोचा—जब यहा जलने योग्य कोई चीज ही न होगी तो आग किसमे लगेगी ?

जङ्गल मे आग लगी, तब हाथी अपने परिवार के साथ उस मण्डल मे आकर खडा हो गया । जगल के और-और पशु भी अपने प्राणो की रक्षा के लिए उस मण्डल मे आकर भरने लगे । हाथी चाहता तो दूसरे पशुओ को अपने मण्डल के बाहर निकाल सकता था । उसी ने लगातार कई वर्षों तक कडी मेहनत करके मण्डल तैयार किया था । दूसरो को उसमे घुसने का क्या अधिकार था ? मगर हाथी ने ऐसा नही सोचा । वह सोचने लगा—'जैसे मैं दुख से बचना चाहता हू, उसी तरह ये प्राणी भी बचना चाहते है । जैसे मुझे दुख अप्रिय है, वैसे ही इन्हें भी दुःख प्यारा नही लगता । जैसी मेरी आत्मा, वैसी ही इनकी भी है' इस प्रकार सोच कर उसने किसी को नही निकाला ।

हाथी ने तो अपने मण्डल मे से किसी को नही निकाला, सबको आने दिया, लेकिन क्या आप किसी गरीब को अपने यहा आश्रय देते है ? यह तो नही कहते कि निकल यहा से, क्या तेरे बाप का घर है ? जिसके हृदय मे अनुकम्पा होगी, वह ऐसा कदापि नही कहेगा ।

सारा मण्डल जीवो से भर गया । हाथी के पैरो के बीच जो जगह थी, वह भी खाली नही रही । सारा मडल ठसाठस भर गया था, कही तिल धरने को जगह नही थी । हाथी सन्तोष के साथ खडा था । इतने जीवो की प्राणरक्षा

हो रही है, इस विचार से उसका हृदय एक अनूठे ही हर्ष का अनुभव कर रहा था ।

प्रश्न हो सकता है कि प्रकृति से ही विरोधी जीव एक जगह कैसे रह सकते हैं ? इसका उत्तर यह है कि घोर विपत्ति के अवसर पर पारस्परिक वैर-विरोध विस्मृत हो जाता है । महाकवि कालिदास ने ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते कहा है:—

फणी मयूरस्य तले निषीदति ।

अर्थात्—नीचे की गरम जमीन और ऊपर से पड़ने वाली गरम सूर्य—किरणो से घबराया हुआ साप, मयूर के नीचे–छाया मे बैठ जाता है ।

उस मडल मे सभी प्रकार के जीव-वस्तु घुसे थे । हाथी के लिए केवल इतनी जगह थी कि वह अपने चार पैर रखकर खडा रहे । फिर भी वह सन्तुष्ट था । हाथी इस प्रकार खडा था कि उसके शरीर मे खुजली चली । उसने खुजली मिटाने के लिये ज्यो ही एक पैर ऊपर उठाया और जगह खाली हुई कि वहा एक खरगोश आकर बैठ गया ।

हाथी चाहता तो खरगोश को कुचल सकता था, या कम से कम क्रोध तो उसे आ ही सकता था । वह सोच सकता था कि मैंने चार कोस लम्बा-चौडा मडल बनाया और चार पैर रखने की भी जगह मुझे नही मिल रही है! मगर हाथी का अन्त.करण तो करुणा के रस मे डूबा था ।

वह एक पैर ऊंचा रखकर सिर्फ तीन ही पैरो के सहारे खड़ा हो गया। खरगोश की अनुकम्पा के लिए उसने स्वयं कष्ट झेला, मगर खरगोश को कष्ट नही दिया। शास्त्र में कहा है–

एय खु णाणिणो सार, जं न हिंसइ किंचण ।
अहिंसा समयं चेव, एतावन्तं वियाणिया ॥

इस कथन के अनुसार सब शास्त्रो का सार अनुकम्पा है। शास्त्र सुनकर भी जिनके हृदय मे अनुकम्पा नही आई, जो कम से कम अपने घर में भी अनुकम्पा का व्यवहार नही कर सकते, उन्होने शास्त्र क्या सुना ?

हाथी के हृदय मे नैसर्गिक अनुकम्पा भाव था। वह बीस पहर तक एक पैर ऊंचा उठाये खड़ा रहा। जब आग शान्त हो गई और मडल में से जीव निकल कर बाहर चले गये, तब हाथी ने अपना पैर नीचे रखने की चेष्टा की। मगर वह सफल नही हुआ। बीस पहर तक पैर ऊपर रहने के कारण वह अकड़ गया था, वह जमीन पर टिक न सका और हाथी गिर पड़ा। गिर पड़ने पर भी उसने अनुकम्पा के लिए कुछ भी पश्चात्ताप नही किया। उसे यह विचार नही आया कि खरगोश क्या मेरा सगा था कि मैंने उसे खड़ा रहने दिया और मुझे इतना कष्ट भोगना पडा ! मैंने उसे लतिया क्यो नही दिया ? उसने यह न सोचकर अपने कृत्य के लिये सन्तोष ही माना।

भगवान् महावीर ने मेघकुमार को बतलाया—मेघ, इसी अनुकम्पा के प्रताप से तेरा उद्धार हुआ है। जीवरक्षा

की बदौलत ही तू राजा श्रेणिक के घर जन्म लेकर सयम ग्रहण करने के लिये सौभाग्यशाली वन सका है ।

□

५५ : परार्थ राज्य

स्वार्थ के लिए राज्य करने मे और प्रजा की सेवा के लिए राज्य करने मे बडा अन्तर है । जो राजा, प्रजा की सेवा के लिए राज्य करता है, वह राज्यकोष को प्रजा का पैसा समझता है । वह उसमे से अपने लिए एक पैसा भी नही लेता ।

मुगलो से लड़ते-लड़ते राणा प्रताप की शक्ति क्षीण हो गई । न उनके पास धन रहा और न सेना रही । विवश और निराश होकर राणा मेवाड त्यागने का विचारने करने लगे । वे सोचते हैं—पिता ने केवल चित्तौड ही खोया था, मगर मैं सारा मेवाड़ ही खो बेठा हूं । मुझे अब इस भूमि पर रहने का अधिकार नही है । मैं अब इस योग्य भी नहीं रहा कि अपनी पत्नी की और बाल-बच्चो की भी रक्षा कर सकू ! चलू चित्तौड तथा सारे मेवाड़ को अन्तिम नमस्कार करके विदा होऊ ।

राणा प्रताप एक पहाड़ी पर चढकर मेवाड भूमि को अन्तिम नमस्कार करने को उद्यत होते हैं। इतने मे ही दूर से एक आदमी सिर पर गठरी लिए आता दिखाई देता है। राणा प्रताप उधर दृष्टि किये खडे रहते हैं। कुछ पास आने पर आदमी स्पष्ट दिखाई देता है—अहा! यह तो मेरा मत्री भामाशाह है? सोचा—सिर पर कुछ खाने-पीने की वस्तुए लाया होगा। मगर अव वह किस काम की? जिस भूमि को मैंने परतन्त्रता की बेड़ी पहना दी, जिसका मैं उद्धार नहीं कर सका, उसका नमक खाने का मुझे क्या अधिकार है?

इतने मे भामाशाह निकट आ पहुचे और गठरी उतार कर राणा के चरणो मे रख दी। राणा को झुककर प्रणाम किया, फिर गद्-गद् हृदय से कहा—कृपानाथ, यह तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए।

राणा—भामाशाह! स्वामी-भक्ति प्रशंसनीय है, मगर मे कलकित हू। मैं मेवाड़ माता की परतन्त्रता के वन्धन को नही काट सका। मै अव इस भूमि का नमक नही खा सकता।

भामाशाह—अन्नदाता! सूर्य के आगे वादली आ जाने से कुछ समय के लिए सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ जाता है पर वादली के हटने पर वह फिर सारे संसार मे अपने स्वाभाविक प्रखर तेज से चमकने लगता है।

इतना कह कर भामाशाह गठरी खोलता है और वह विशाल धनराशि देखकर प्रताप चकित रह जाते हैं।

राणा को चकित देखकर भामाशाह कहते है—महाराणा ! यह धन मेरा नही, आपका ही है । मैं किसी की गर्दन काटकर नही उडा लाया हू । इसे स्वीकार कीजिए और मेवाड़ के उद्धार का कार्य फिर आरम्भ कीजिए ।

महाराणा फिर मेवाड़ के उद्धार मे लग जाते है । वे एक पाई भी उसमे से अपने निज के लिए नही लेते ।

मित्रों ! इसे कहते हैं, परार्थ राज्य ! यह है शान्ति-रक्षा के लिए राज्य ।

देशसेवा की एक मात्र भावना से प्रेरित होकर अपने हाथ में शासन-सूत्र ग्रहण करने वाला मनुष्य धन्य है ! आज हमारे देश में ऐसे सेवको की कितनी आवश्यकता है!

५६—महान्-पुरुष

एक वजीर अपने घोडे पर सवार होकर जगल मे जा रहा था । रास्ते में किसी के कराहने की आवाज उसके कानो मे पड़ी । वजीर ने घोड़ा रोका और इधर-उधर नजर फेंकी मगर उसे कोई दिखाई नही दिया । फिर भी उसके